देश-दीपक

—:o:—

प्रस्तावना

—:o:—

प्यारे मित्रो-राष्ट्रीय-माला का प्रथमाङ्क 'जख्मी पञ्जाब' श्रीमानों के कर कमलों में स्थान पा चुका है द्वतीय अङ्क "देश-दीपक" पुस्तका-कार में आज आप लोगों की सेवा में उपस्थित होता है। आशा है कि पाठकों की अभि-रुचि के अनुसार आनन्द पद होकर आवश्यकता के एक अङ्ग को पूर्ण करने में सफल होगा-और विज्ञ संसार में आज जिन पवित्र पुस्तकों का अभाव है उन में यह देश दीपक एक उच्च कोटि के ग्रन्थ का कार्य सम्पादन करेगा।

सम्वत १९२१ ई० के शुभ वर्ष में भारत सन्तानने जिस मार्ग में पदार्पण किया है वह स्वतन्त्रता देवी के दर्शना-कांक्षियों की यात्रा का शुद्ध सरल, और पवित्र मार्ग है। इस शुभग यात्रा को समाप्त करने के लिये जिस सामग्री की आवश्यकता है वह स्वदेशी का प्रचार है।

धर्म्मशास्त्रानुसार किसी देव-पूजक को यह स्वत्व प्राप्त नहीं है कि वह अशुचि शरीर से किसी मन्दिर में प्रवेश करे। इसी प्रकार हम पवित्र शरीर और शुद्ध आत्मा के साथ ही उस मात्र मन्दिर में प्रविष्ठ होने के अधिकारी हैं जहां साक्षात स्वतन्त्रता और स्वराज्य की अतुलनीय छटा-धारी दिव्यस्वरूपा अरि मान मर्द्दिनी भक्त वत्सला

भगवती विराजमान है। अन्यथा नहीं-शरीर जलसे, और आत्मा सच्चे विचारों से शुद्ध होता है अतः पवित्र स्वदेशी खद्दर से शरीर को और विशुद्ध देश-भक्ति से हृदय को प्रक्षालन कर के ही उस मातृ-मन्दिर में उपस्थित होना परम कर्त्तव्य है।

जिस भांति किसी जाति के लिये स्वदेशी आशा, स्वदेशी शिक्षा, स्वदेशी भोजन, स्वदेशी भेष, और स्वदेशी भाषा ही स्वराज्य का मूल मन्त्र है उसी प्रकार विदेशी चौगान में भाग लेने के लिये, संसार में अपना अस्तित्व सुदृढ़ उज्वल और अस्थिर करने के लिये भी इसी मूल मन्त्र का आराधन परमावश्यक है। हम स्वदेशी से केवल स्वराज्य ही नहीं प्राप्त कर सकते वरन् इस कलियुग में सत्ययुग का सुन्दर और भव्य दृश्य दृष्टिगोचर कराने में समर्थ हो सकते हैं रामायण का पवित्र समय वापस ला सकते हैं आज हजारों, नहीं लाखों वर्ष के पीछे भारत को पुनः इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई है कि उस की सच्ची देवियां, मलिन, बलहीन, और निकम्मे फैशनेबुल बाबू उत्पन्न करने के स्थान में श्री भरत और लक्ष्मण जैसे वीर शिरोमणियों का प्रसव करें, नील, नल और हनुमान जैसे रनधीर योद्धा भीम और अभिमन्यु सरीखे उद्दण्ड वीर अपनी गोद से निकाल कर जाति के अर्पण करें, और भीष्म जैसे वेदज्ञ और विदुर समान नीतिज्ञ सन्तान पैदा करके भारत की रक्षा करने में समर्थ हों।

परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति का द्वार केवल एक यही है कि हमारा भोजन, भेष और भाषा स्वदेशी हो।

दोहा–भोजन अरु भाषा तथा होय स्वदेशी भेष।
फिर यह निश्चय जानिये है स्वधीन निज देश॥

१–भोजन–जैसा भोजन होगा, वैसेही विचार होंगे वैसेही बल बुद्धि, और वैसेही आचार होंगे–मान्स और राक्षसी भोजन खाने से बुद्धि भ्रष्ट रहती है यह राक्षसी भोजन काही प्रभाव था कि रावण और कुम्भकर्ण ने उन्नति के अतिरिक्त कभी और कुछ विचारने की चेष्टा तक न की–शुद्ध भोजन से ही विभीषण सदैव हरि–भक्त रहा–गाय घास खाकर दूध देती है परन्तु सिंह को मान्स खाकर पाशविक कृत्य और रक्त–पान करने के सिवाय और कुछ नहीं सूझता। मित्र हो अथवा शत्रु, वह भक्षण कर जाने के परे अन्य सलूक करना जानता ही नहीं। हमारे धर्म–ग्रन्थों में एक दृष्टान्त आया है कि एक भला–मनुष्य सरल–हृदय ब्राह्मण अपने एक सम्बन्धी ब्राह्मण के घर में अतिथि हुवा। रात्रि का समय था भोजन–पाक करने का समय न था गृह–स्वामी ने एक स्वर्ण–कार के घर से आया हुवा परोसा ही अतिथि को अर्पण किया–वह उसे खाकर सो रहा–कलियुगी स्वर्ण–कार जो आंख का काजल चुरा लेने की विद्या में पाराङ्गत होते हैं, उनके गृह का अन्न अपना प्रभाव दिखाये विना न रहा–और अतिथि की आत्मा कलुषित हो गई–वह गृह स्वामी का एक स्वर्ण–आभूषण चुरा कर मुंह अंधेरे ही नौ दो ग्यारह होगया। वन में जाकर अब शौच कर्मसे निवृत्त हुआ और रात के खाये हुये अन्न का विकार अन्दर से निकल गया–तब विचार हुवा कि,

हाय-मैंने बड़ा भारी अपराध किया, चोरी जैसा नीच कर्म करने पर उतारू हुवा-वह पश्चात्ताप करता हुवा गृह-स्वामी के पास आया और क्षमा प्रार्थी होकर आभूषण फेर दिया, इस दृष्टान्त से यह भाव प्रदर्शित किया गया है कि भोजन जैसा ही शुद्ध अथवा अशुद्ध होता है विचार भी वैसा ही शुद्ध अथवा अशुद्ध उत्पन्न होता है।

भाषा-का भी विचारों और व्यवहारों पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है जो शिक्षा हमको संस्कृत, हिंदी, या फ़ारसी भाषा से मिल सकती है वह अङ्गरेज़ी या फ्रान्सीसी भाषा से प्राप्त नहीं हो सक्ती।

अङ्गरेजी भाषा हमारे सामने "मिस्ट्रीज़ आफ लन्दन" और गन्दे नालों की लायब्रेरी उपस्थित करती है-और हमारी देशी भाषा रामायण, महाभारत और अनवार सहेली जैसी धार्मिक और शिक्षाप्रद पुस्तकों से हमारे पुस्तकालय की शोभा बढ़ती है। जो जाति अपनी स्वदेशी भाषा की प्रतिष्ठा करना नहीं जानती वह अपने पूर्व पुरुषों के इतिहास से अनभिज्ञ रह कर विदेशी आदर्श पर चलने के लिये बाध्य रहती है, और कभी भी गिरावट से निकल कर उन्नति के सोपान पर पदार्पण नही कर सक्ती। हमारी देश भाषा ही यह बातें बतला सक्ती है कि हमारे पूर्वज क्या थे, उन की कार्य्य कुशलता, सर्वज्ञता न्याय-पटुता, और सर्व प्रियता कहां तक बढ़ी चढ़ी थी उन की उन्नति का मर्म्म क्या था, विज्ञान शक्ति और धर्म्म दक्षता में वह कहां तक सम्पन्न थे, आज हमने अङ्गरेजी भाषा से यह तो ज्ञान लिया कि बीसवीं सताब्दीमें आश्चर्य जनक और

कौतूहलवर्द्धक, आविष्कार केवल यूरुप और अमरीका ने किये हैं परन्तु महाभारत और रामायण इत्यादि का पूर्ण अध्ययन न करने से यह न समझ सके कि हमारे पूर्वजों ने वायु-यान, बेतार के तार, मशीन-गन, इत्यादि अग्नि अस्त्रों का आविष्कार उस समय में किया है जब यूरुप की भाषा और सभ्यता अथवा यों कहो कि यूरुप का अस्तित्व भी नेस्तत्व के महासागर में पड़ा हुआ सड़ रहा था। जातीय भाषा ही हमारी जातीय-शिक्षा, जातीय सभ्यता, जातीय पौरुष से अविद्या रूपी अन्धकार का खटका उठाने वाली एक मात्र कुन्जी है।

छन्द ।

बिगड़ती प्रीति है जब भाव आदर का बिगड़ता है।
बिगड़ती स्वास्थ्य है जब भोज का सामा बिगड़ता है॥
बिगड़ता वन्श है जब चाल वन्शज की बिगड़ती है।
बिगड़ता देश है जब देश भाषा ही बिगड़ती है॥

(साधु)

भेष-का स्वदेशी होना हमारे अभ्युदय का तीसरा मर्म्म है जब पहिनने के कपड़ों के किसी भाग में मदिरा अथवा मूत्र का एक बून्द भी पड़ जाता है तो हम उसे अपवित्र समझ कर तुरन्त घृणा करने लगते हैं। अर्थात् हमारे हृदयोद्‌गारों और विचारों में एक प्रकार की तब्दीली उत्पन्न होजाती है हम उस कपड़े को पहिन कर कोई शुभ काम करना पसन्द नहीं करते। इससे प्रमाणित है कि भेष की शुद्धता या अशुद्धता के साथ हमारे मन और विचारों

का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है-विदेशी फैशन के बूट, कोट और पतलून पहिन कर हम सिगार पीले, खड़े होकर पेशाब करने, होटलों में मेज़ कुर्सी पर कांटा छुरी से खाने, क्लबों में नृत्य करने और बच्चों की भांति टेनिस खेलने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकते। स्वेच्छा-चारित और छोटों के प्रति घृणा करने के अतिरिक्त कुछ नहीं सीख सकते-और इसी फैशन के शौक में अन्धे होकर प्रति वर्ष साठि करोड़ रुपिया विदेशियों को सौंप देते हैं तथा अपने देश को दुष्काल की दया पर छोड़ देने का महा भयङ्कर पाप कर बैठते हैं. एक विदेशी बूट से हमको पालिश, ब्रुश, सामर, लेदर की आवश्यकता प्रकट होती है एक विदेशी वस्तु हमारी और बीस नूतन आवश्यकतायें उत्पन्न कर देती है हम घर का पैसा देकर ग़रीबी मोल लेते और उस बनते हैं। अतः देश भषा ही हमारी उन्नति का मर्म्म और जातीय-आयु का महा मन्त्र है। जिस की शिक्षा हम को स्वयं अङ्गरेजों से लेना चाहिये जो हिन्दुस्तान में रहते हुये भी एक "इण्डिया मेड़" पेन्सल तक मोल लेना पाप समझते हैं।

पाठक गण-आवश्यकता है कि भोजन, भाषा और भेष इस त्रिवर्ग को जातीय मन्त्र बनायें-और जातीय आन्दोलन में पूर्णतयः भाग लेकर पतित भारत को ऊपर उठायें। आज जब कि स्वराज्य का स्थान अत्यन्त निकट है हमारी चेष्टाओं और प्रार्थनाओं का मूल तत्व भोजन, भाषा और भेप ही होना चाहिये। हमने इस जातीय आवश्यकता को पूर्ण करने में भाग लेने का कार्य्य लेख-

बद्ध प्रकार पर छोड़ रक्खा है और पवित्र विचारों के अतिरिक्त कोई ऐसी सुन्दर और बहुमूल्य वस्तु पास नहीं जो जाति के भेंट कर सकूं अतः आज स्वदेशी का महात्म्य और विदेशी की बुराइयां पुस्तकाकार में भाइयों की सेवा में सादर समर्पित करता हूं।

यह बात सर्व सम्मति से प्रमाणित और मान्य हो चुकी है कि जिन उच्चे उद्गारों का दृश्य नाटक अङ्कित कर सकता है वह उपन्यास किम्बा इतिहास के भाग्य में लिखा नहीं है विचारों के अपार सागर को छोटी-सी पुस्तक रूपी कमण्डल में भर देने का महान कार्य्य नाटक से ही पूर्ण हो सकता है इस लिये अपने स्वदेशी विचारों को नाटक के रूप में लाना ही उचित समझ कर यथा साध्य देश सेवा में भाग लेने की चेष्टा की है अच्छाई या बुराई की जांच पड़ताल पुस्तक के पाठ से सम्बन्ध रखती है प्रशंसा पाने अथवा न पाने की इच्छा नहीं, कारण कर्त्तव्य पालन करना ही अपना ध्येय है न कि पाठकों की वाह २ से प्रसन्न होना। इति शम्।

स्वदेश दासः—

किशुनचन्द्र ज़ेबा।

हिन्दी संस्करण-भूमिका ।

—:o:—

विज्ञ पाठकगण !

आज यह एक तुच्छ भेंट उर्दू के "चिराग़ वतन" नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद "देश दीपक" लेकर आप हिन्दी प्रेमियों की सेवा में उपस्थित होता हूं, और आशा करता हूं सहर्ष स्वीकार करके मेरे उत्साह को बढ़ावेंगे ।

यद्यपि प्रत्यक्ष में उर्दू पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद करना कोई कठिन कार्य नहीं प्रतीत होता । परन्तु यदि किसी हिन्दी ग्रन्थ का ही, हिन्दी के ही दूसरे शब्दों में, उसके मूल भावों को रक्षित रखते हुए अनुवाद करना कठिन है तो यह काम भी सरल नहीं, परन्तु इस पर मैं कुछ कहना नहीं चाहता, इसकी विवेचना सहृदय पाठक ही करेंगे मुझे केवल इस "देश दीपक" की भाषा, कवित्व और भावों के विषय में सक्षेप रूप से कुछ कहना है और इसी कारण इस भूमिका की आवश्यकता हुई ।

भाषा-प्रकाशक की आज्ञानुसार भाषा को यथा साध्य दुरूहता दोष से बचाने का प्रयत्न किया गया है और पाठकों की अभिरुचि पर विशेष ध्यान दिया गया है फिर भी यदि कोई त्रुटि हो गई हो तो उसके लिये विज्ञ पाठक क्षमा प्रदान करेंगे । हां ! उस दृश्य में जहां अङ्गरेजों की बात चीत है, रोचकता वृद्धि और हास्य रस का समवेश

करने के लिये त, द, और ध अक्षरों के स्थान में ट और ड़ इत्यादि का प्रयोग मूल ग्रन्थ के विरुद्ध किया गया है।

कविता-इसको ज्यों की त्यों मूल ग्रन्थकार की ही रक्खी गई है परन्तु फिर भी यदा कदा कुछ संशोधन और मार्जन पर वाध्य होना पड़ा है और किसी २ को तो पूर्णतया नूतन रूप देना पड़ा है जिसके लिये ज़ेबा महाशय से सविनय क्षमा प्रार्थी हूं।

भाव-मूल ग्रन्थकार के भावों की पूर्णतया रक्षा करते हुये नूतन भावों के दर्शाने की भी चेष्टा यथा साध्य की गई है। अतः पाठकगण! यदि पूर्ण विवेचना करना चाहें तो मूल ग्रन्थ और अनुवाद को एक साथ पढ़ने का कष्ट कृपा करके उठायें। उसी समय इसका निर्णय हो सकेगा।

इतिशम्।

विनीतः—

हिन्दी का एक तुच्छ सेवक

* ओ३म् *

देश-दीपक ।

—○○—
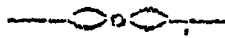
नाटक

प्रार्थना

गाना ।

तुम दाता-तारनहार-दुख दर्द निवारनहार ॥

भारत के कष्ट निवारो ।

दीन दुखियों को उबारो ॥

भार धरणी का उतारो ।

चरण बन्दौं बार बार-दाता तारन हार । तुम ॥

डगमगाये देश नैय्या ।

तुम ही हो समर्थ खेवैय्या ॥

आओ बंसुरी के बजैय्या ।

करो गीता का प्रचार-चरण बन्दौं बार बार ।

दाता तारन हार । तुम ॥
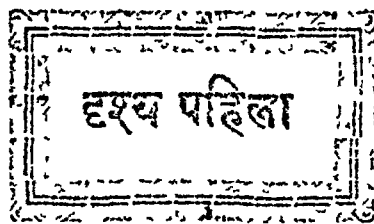
अङ्क दृश्य पहिला पहिला

[पृथ्वी के गोले को फिरते हुये दिखाई देना आवाज़ पर यूरुप की तरफ से गोले का फटना और शक्ति का प्रकट होना]

शक्ति—खाका खिंचा हुआ है यह मेरे ख्याल का।
चर्चा जहां में होता है मेरे कमाल का॥
बख्ते-रसा भी आज तो बेदार है मेरा।
इस वास्ते हर एक खरी-दार है मेरा॥

नई रोशनी की साईंस मेरा हथियार है, धन और बल पर मेरा पूरा अधिकार है। दिन और रात मेरे इशारे पर चलते हैं। मेरी ही प्रशन्नता से मानुषीय मष्तिष्क से नये नये आविष्कार होते है। राज, ताज, और खिराज सब मेरे ही आधार पर अवलम्बित हैं, मज़हब और धर्म्म के अन्ध विश्वासी मेरे उपासक न होने से पतित होकर पराधीनता की ज़ञ्जीर में जकड़े पड़े हैं।

यूरुप का आज मेरी बदौलत ही नाम है।
मेरे बगैर काम हर एक ना तमाम है॥
जर्मन ने मेरे बल से ही आलम हिला दिया।
इङ्गलैण्ड ने जहान में सिक्का बिठा दिया॥

[आवाज पर एशिया के हिस्से की तरफ से गोले का फटना और धर्म्म का प्रगट होना]

धर्म-माना कि बल से विश्व को तूने हिला दिया।
यूरुप का भी दिमाग़ अर्श पर चढ़ा दिया ॥
हिन्सा का पाठ सारे जगत को पढ़ा दिया।
कमज़ोर को है ख़ाक में तूने मिला दिया ॥
लेकिन नशा ग़ुरूर का ऐसा पिला दिया।
हर यक बशर को तूने रावन बना दिया ॥

शक्ति-इस अहंकार से ही मनुष्य स्वतन्त्रता का मूल्य जान सक्ता है अपनी गुरुता और अपने आपको पहिचान सक्ता है।

धर्म-हां और इसी अहंकार से ईश्वर को भूलकर अपने आपको ईश्वर मान सक्ता है।

शक्ति-ईश्वर क्या है ? बड़ाई, और ऐश्वर्य्य काही नाम ईश्वर है, नहीं तो आंखों से न देखा, कानों से न सुना, ईश्वर कायर और बुज़-दिलों को ढाढस देने का एक ढकोसला है।

दोहा—कादर मन करे एक सहारा।
दैव दैव आलसी पुकारा ॥

नहीं तो सृष्टि के प्रबन्ध को क़ायम रखने के लिये, उस से लाभ उठाने के लिये, पृथ्वी के पदार्थों का उचित भोग करने के लिये, मनुष्य को मेरी महान आवश्यकता है।

रही भरोसे पर ईशही के जो कौम वह आज गिर रही है।
गले में बन्धन है दासता का दुखों के हमले से घिर रही है ॥
रही है शक्ती की जो पुजारी वह कौम ऊपर चढ़ी हुई है।
हुनर में विद्या में ज़ोर-ज़र में वह आज सबसे बढ़ी हुई है ॥

धर्म-परन्तु जिस जाति में धर्म नहीं, ईश्वर की शर्म

नहीं, उसका वढ़ना न वढ़ना वरावर है धर्म विहीन मनुष्य निरा-पशु है धर्म विहीन जाति का ऐश्वर्य्य वालू की नींव पर वना हुआ गृह के समान है, जो देखने में आलीशान है परन्तु उसके शीघ्र नष्ट होने का गुमान है।

तालाव वह वृथा है जिस में कि जल नहीं।
शोभा विहीन जल है जिस में कमल नहीं॥
ज्यों जल विहीन मछली रहती अधीन है।
त्योंही वृथा वह नर है जो धर्म्म हीन है॥

शक्ति-परन्तु वह धर्म किस काम का जो कार्य क्षेत्र में युद्ध करने से रोकता है वह धर्म किस काम का जो केवल ईश्वर पर ही भरोसा करना सिखाता है जो हाथ पर हाथ रखकर वैठे रहने का उपदेश सुनाता है।

वह धर्म नहीं कमजोरी है वह धर्म्म नहीं वीमारी है।
आग़ाज़ तो है आराम उसका अंजाम मगर लाचारी है॥

धर्म्म-परन्तु वह वल और पराक्रम, वह आशा-मय जीवन, वह उन्नति-कामना, जिसमें धर्म का विचार नहीं, ईश्वरेच्छा के अनुसार नहीं।

जो मोती खाक पर है आज वह आकाश पर होता।
अगर वल ही वड़ा होता तो रावण ईश्वर होता॥

शक्ति—परन्तु, देश विजय करना, अपना जातीय वल वढ़ाने को कोष (खजाने) का भरना-राज्य को वढ़ाना अपनी जाति को सुखी और समृद्ध-शाली वनाना-क्या धर्म नहीं है।

धर्म्म-आधुनिक यन्त्रों (मशीनों) के दवाव (शिकंजे) से मानुषीय जीवन का सर्व नाश कर राज्य का

विस्तार करना भयङ्कर पाप है दूसरी जातियों का पेट फाड़ कर अपने जातीय धन का भण्डार भरना सरासर पाप है ईश्वरीय-सत्ता से स्वतन्त्र मनुष्य को नीच और गुलाम समझ कर पद-दलित करना महान नीचता है तथा किसी जीव को उसके जन्म-सिद्धि अधिकार से वञ्चित करके ग़रीब और मोहताज बनाना घोर अधर्म्म और अन्याय है ।

निष्काम कर्म्म ही करतव्य है यह कर्म नहीं तो कुछ भी नहीं
गर धर्म रहा तो सब कुछ है गर धर्म नहीं तो कुछ भी नहीं

शक्ति-जो साधु-धर्म जातियों को दासता की बेड़ी पहिनाता है। जो धर्म्म निर्धन, कायर और अकर्मण्य होना सिखाता है वह धर्म अन्धा धर्म है और उस पर श्रद्धा रखने वाला भी अन्धा, ग़लत रास्ते पर जाता है अपने बल, कौशल का डङ्का बजाना, समस्त सृष्टि पर अपना सिक्का बिठाना, प्रत्येक धर्म में उच्च धर्म माना गया है और इसी क्षात्र-धर्म पर आरूढ़ होकर राजा रामचन्द्र, राजा जनक और राजा युधिष्ठिर इत्यादि ने अपने राज्य का विस्तार किया है ।

छन्द-इस धर्म के पालन करने को संग्राम हुआ महभारत का।
परताप ने इसके बल से ही था नाम रखा इस भारत का॥
गर महज़ धर्म में रहता तो हथियार न उठता अर्जुन का।
मिट सक्ता नाम न दुनियां से उस वक्त सुयोधन दुर्जुन का॥

धर्म-तो भी महान शक्ति प्राप्त किये हुए, अपूर्व बल कौशल को रखते हुए, अर्जुन जैसे शान्त रण-धीर, प्रताप जैसे वीर और शिवाजी जैसे बल-वीर, ने सत्य धर्म को

कभी हाथ से जाने न दिया था। प्राणों पर आ बनने पर भी शक्ति के उपासक यूरूप की तरह अर्जुन इत्यादि ने कभी फरेब, दग़ा, धोखा और झूठ से काम न लिया था।

छन्द–त्यागा न सत्य धर्म को आराम के लिये।
छोड़ा न आन को कभी धन धाम के लिये॥

शक्ति–न छोड़ा था इसी लिये तो हरिश्चन्द्र ने वर्षों बनों की ख़ाक छानी थी।

छन्द–इसी लिये ही पाण्डवों पर आपदा आती रही।
सन्तती दशरथ की बन में ठोकरें खाती रही॥

धर्म्म–परन्तु, अन्त में उन्हीं की जय हुई थी और चारों युग प्रयन्त उन्हीं की जय ध्वनि गूंजती रहेगी।

दोहा–यह जब तक संसार का चलता है व्यवहार।
होती जायेगी सदा उन की जय जयकार॥

शक्ति–अब कलिकाल का नाम है, आज तो मेरे ही उपासकों के लिये धन, धाम और आराम है।

छन्द–उपासक हैं जो तेरे उन पै ही तक़दीर हंसती है।
है आठों पहर रोना और घर में फ़ाक़ा-मस्ती है॥
मगर मेरे उपासक को सदा अशरत परस्ती है।
सदा बरसात खुशियों की घटा बन २ बरसती है॥

धर्म्म–हां मैं जानता हूं कि तेरे रङ्गभवन शराब और कबाब से मामूर हैं तेरे भण्डार मशीनगनों, तोपों और कारतूसों से भरपूर हैं परन्तु सच्ची खुशी और परमानंद के सामान तेरे विलासभवन से कोसों दूर हैं।

छन्द–बदों का बद तो नेकों का सदा परिणाम अच्छा है।
जो है बदनाम उस से हर तरह गुम नाम अच्छा है॥

नतीजा जिसका अच्छा है वही हर काम अच्छा है।
तेरा आग़ाज़ अच्छा है मेरा अन्जाम अच्छा है॥

शक्ति-परन्तु आज बीसवीं सदी में समस्त जातियों के सङ्घर्षण के मैदान में, उच्च स्वार्थ और परमार्थ के सामान में, गृहस्थ की चार-दीवारी में, कलियुग की दुनियांदारी में, जहां भी मेरी उपासना नहीं होती वहां हमेशा बदनामी और शिकस्त है, दुनियां के उत्तम पदार्थों का भोग करने वाली तहज़ीब के कारखाने में मेरा ही बन्दोबस्त है।

छन्द-देखना हो गर मेरी तहज़ीब के सामान को।
देख लो इङ्गलैण्ड जर्मन फ्रान्स औ जापान को॥
जिस तरफ देखो उधरही आज उनका राजहै।
धर्म बेचारा तो इन देशों ही का मोहताज है॥

धर्म-परन्तु धर्म का परमानन्द जो एक सच्चे धार्मिक राष्ट्र को प्राप्त हो सका है वह इन में से किसी के पास नहीं, वहां धर्म का विचार कहां जहां ईश्वर का भी तराश नहीं, यूरुप आज मिट्टी के टुकड़ों के लिये धर्म और तहज़ीब का खून कर रहा है, यह शक्ति और विज्ञान (साइन्स) का प्रताप है कि परमात्मा के नाम पर मरने के बजाय धन और भूमि पर मर रहा है।

छन्द-तहज़ीब नहीं खुदगर्ज़ी है बलिदान स्वार्थ पर होतीहै।
मिट्टी के टुकड़ों पर उनकी तहज़ीब निछावर होती है॥

शक्ति-बक बक की आवश्यकता नहीं, प्रत्यक्ष परीक्षा करते हैं, देखो शक्ति के उपासक दुखी हैं या धर्म के पुजारी आनन्दित हैं, अभी निर्णय करा लेते हैं।

छन्द-जो मुझे भूले हैं उनके घर में कुल का काल है।
देख तेरे चाहने वालों का ऐसा हाल है ॥

(दृश्य का बदलना)

दीन और दुखित दशामें भारतमाता के दर्शन।

(भूखे भारतवासियों का विलाप)

एक भारतवासी-भूख,कुक भूक फाका मरती,तड़फती, हाय समस्त संसार को भोजन देने वाली भारत की पवित्र भूमिपर जन्म लेकर आज हम एक एक टुकड़ेको तर्से,पानी मांगे तो आकाश से आग के अङ्गारे बर्सें। याचक की आंख से आंख मिलाकर सदा सादर दान प्रदान करने वाले राजा हरिश्चन्द्र और राजा कर्ण की सन्तान आज मुट्ठी भर चनों के लिये लालायित हो रही है।

छन्द-होगये हैं इस क़दर लाचार टुकड़े के लिये।
खा रहे दर दर पै हैं धिक्कार टुकड़े केलिये॥

दूसरा भारतवासी-हाय आज तीन दिनसे अन्नका एक दाना पेट में नहीं गया. पैसा पास नहीं कि भोजन को कुछ मोल लूं. पैसा भी मिले तो सस्ता अन्न नहीं। कि थोड़े पैसों से भूख की ज्वाला को तृप्त करने का प्रयत्न करू।

छन्द-कभी सुनते हैं देता था यही भारत जमाने को।
मगर अब तो नहीं बच्चों को भी देता है खाने को॥
विदेशी तो इसीके अन्न से अब भी ऐश करते हैं।
मगर उत्पन्न जो करते हैं वही फ़ाक़ों से मरते है॥

तीसराभारतवासी-हाय ! जिस भारत में घी और दूध सेरों के भाव से बिकता था, जिस भारत में अन्न मनों

के तौल से मिलता था। आज उसी भारत में घी और अन्न का ऐसा काल, सृष्टि भर के अन्न दाता का यह हाल।

छन्द-देखिये भागों की खूबी देखिये किस्मत का फेर।
एक रुपये का हुआ है आज गल्ला तीन सेर॥
गल्ला गाली के लिये गायें कसाई के लिये।
रह गया घी और मक्खन अब दवाई के लिये॥

चौथा भारतवासी-हाय! जो हल चला कर, रक्तको पानी बना कर, कड़ी धूप और कठिन बरसात का प्रहार झेल कर, अन्न उत्पन्न करते हैं। जो समस्त वस्त्रों के आधार स्वरूप कपास से बनियों के भण्डार भरते हैं वही भूखे और नंगे मृत्यु का शिकार हो रहेहैं। उनके पसीने की कमाई के विदेशी हक़दार हो रहे हैं।

छन्द-देखो हम मरते हैं भूखे, सब ही चिल्लाते रहे।
पूरुप अमरीका के ताजिर, फिर भी मंगवाते रहे॥
दाना दाना लेगया गाली बिरादर लूट कर।
रह गये भारत के बच्चे अपनी छाती कूट कर॥

गान।

दिनों का फेर तो देखो हुआ अंधकार भारत में।
उठी चारों दिशाओं से है हाहाकार भारत में॥
जहां पर दूध बहता था वहां बिकने लगा पानी।
हुवा जब से है गैरों का यहां व्योपार भारत में॥
हजारों देश के बच्चों को खाना भी नहीं मिलता।
तबाही के नजर आते हैं अब आसार भारत में॥
कहां तक रोयें हम रोना भला अनमोल रत्नों का।

न छोड़े गैर ने दाने के भी अख्वार भारत में॥
लुटी दौलत गई वह तो, हुआ अब पेट पर हमला।
न होंगे क्या अभी भी भारती बेदार भारत में॥

भारत माता—

छन्द—न है कुछ दोष गैरों का न अपराधी विदेशी हैं।
यही गैरों में खूबी है वह अपने के हितैषी हैं॥
यह खुदगरजों का है अपराध जो बेदाद करते हैं।
जो महगा बेचकर गल्ले को अपनी जेब भरते हैं॥

न खाली आदर्श का दोष है न सरकार अंगरेजी का अपराध है यह तुम्हारे ही स्वार्थी और खुद-गरज़ भाई हैं जो भाइयों को भूखों मार कर अन्न के ढेर के ढेर लगाते हैं और उन्हें मंहगा बेचकर एक के दस बनाते हैं जब तक इस भूमि पर ऐसे स्वार्थी पुरुषों का अस्तित्व मौजूद है तब तक सुख और समृद्ध की आशा बे सूद है।

छन्द—जब तक स्वारथ की लीला है सन्मान न होगा जातीका
जब तक खुदगर्जी बाकी है कल्याण न होगा जातीका॥

शक्ति—(स्वागत धर्म से) देखा—यह है धर्म के प्रेमियों की दशा।

छन्द—यह छिपी बातें नहीं हैं आशाकारा देख लो।
देखना है और तो लो यह नज़रा देख लो॥

(पर्दा का बदलना)

(दुष्काल का भयङ्कर रूप धारण किये हुये बहुत से भारतवासियों पर अत्याचार करते हुये दिखाई देना)

भारत माता—हाय ! मेरे प्यारे बच्चों पर कानून की कठिनाइयां और गुलामी की मुसीबतें क्या कम थीं जो

ईश्वर ने इस महा विकराल दुष्काल को भेज कर दुखों में बेशी करदी ।

छन्द–मारशल ला का मेरे बच्चों पै सदमा कम न था।
भूल जायें जो खिलाफत का यह ऐसा ग़म न था॥
हाय! इतने पर ठिकाना अब कहां है माल का।
वार अब होने लगा है जान पर दुष्काल का॥

शक्ति–(स्वागत धर्म से) क्या है देख लिया, अच्छी तरह से देखलो, ध्यान से देखलो।

धर्म–(स्वागत) है, मैं यह क्या देखरहा हूं, मेरे प्यारों पर भगवान के हाते यह अनर्थ, यह अन्याय।

छन्द–कब तलक भगवन् यह दशा तुमसे देखा जायगा।
कब तलक दुष्काल भारतवर्ष को कलपायगा॥
हाय! यह भूमी ऋषि संतान का स्थान हो।
और इस दुष्काल के हाथो से यों वीरान हो॥

भारत माता–हाय! कहां जाऊं? किस के आगे सहायता के लिये हाथ फैलाऊं, दूसरे के द्वार से क्या मिलेगा, कुछ नहीं, जाऊ और अपने सपूत नेताओं को जगाऊं, कि वह उपदेश रूपीगदा लेकर स्वार्थका विनाश करें। और यूरूप की गुत्थियों को तोड़कर अपने दुखी भाइयों की रक्षा करें, अपका बाहर जाना बन्दहो और स्वदेशीका नाक्दबालदहो।

छन्द–अगर होजाय सारी कौम का बाना स्वदेशी का।
हरएक हिन्दी अगर होजाय दीवाना स्वदेशी का॥
अगर मैटर परस्ती का यहां से राज उठ जाये।
कभी दुष्काल भूले से न फिर इस देशमें आये॥

(प्रस्थान)

शक्ति-अपने उपासकों की दशा देखली, तो ले अब मैं तुझे अपनी लीला दिखाता हूं।

इन्द्र-खोल आंखें और मेरे भक्तों की भक्ती देखले।
अपनी शक्ती देखली, मेरी भी शक्ती देखले॥

पर्दा का गिरना)

अङ्क दृश्य दूसरा पहला
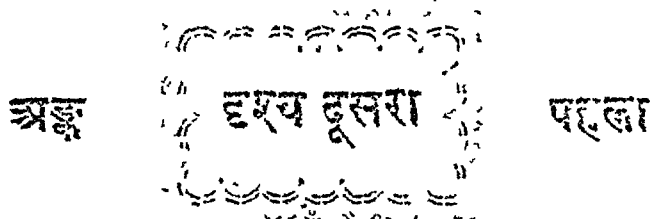
झाड़, फानूस, बिजली के पंखे, प्यालों और एशआराम के सनन्त सामानों से सजा हुआ सुन्दर विलास महल, यूरूपियन ताजिरों और सौदागरों का शराब पीते हुए दिखाई देना।

लीडरों का नाच और गाना।

घर से, दर से, हिचकी घरले, है पी है शराब।
यह स्काच की शराब-कैसी है आब, ताब॥
ओल्ड टाम वाइन, फ्रेन्च की है फाइन।
ड्रिंकिंग है सवाब, यह स्काच की शराब॥
ड्रिंक एण्ड वी मेरी, बाकी है सब अज़ाब।
यह स्काच की शराब॥

मिस्टरजान-ब्वाय (Boy)

खानसामां-यस, सर।

मिस्टर जान-वन पेग मोर।

खानसामां-माईलार्ड, आप सुबह से पी रहे हैं और अभी तक दर्जन से ज्यादह पेग पी चुके हैं यह देखिये आप का बिल है (कागज निकाल कर मेज पर रख देना)

मिस्टरजोन-(बिल को देख कर) ओनली थर्टी, सिर्फ तीस रूपी । ओ पाजी, क्या टुम मुझे कोई गरीब और मुफलिस हिन्डुस्टानी समझटा है, मेरी टबीयट को ऐश आराम से रोकने की कोशिश करटा है, कुछ परवा नहीं। जब टक इन्डिया फूल है, हमारी आमदनी और ऐय्याशी का सामान माकूल है, फिकर नहीं। लाखों बैंक में पड़े हैं करोड़ों कर्ज पर चढ़े हैं, इसी साल एक करोड़ नकद कांच के व्योपार मे कमाया है ।

छन्द-इण्डिया जब टक हमारी ट्रेड के आधीन है ।
टब टलक इंगलैण्ड ज़र औ ज़ोर में परबीन है ॥

मिस्टर मोनरो-डियर डार लिंग, मैं इस बार गेन पर मुबारिक बाड डेटा हूं टुम्हारी डुवा और गवर्नमेन्ट की इम्डाड से मैंने इस साल बीस करोड़ रूपी कपड़े के व्योपार में हिन्डुस्टान से कमाया ।

दोनों-हिप हिप हुर्रे ।

मिस्टर जोन-वन्स मोर हिप हिप हुर्रे ।

मुनरो-चिन्ह हैं सारे मुबारिक फाल में ।
स्वर्ण की चिड़िया फंसी है जाल में॥

मिस्टर चेज़-वाक़ई हिन्डुस्टान के लोग बड़े ही फूल हैं वह अपने मुल्क की बनी हुई चीजों से उटनी ही नफरट करटे हैं जिटनी कि हम अपने मुल्क की चीजों से मुहब्बट करटे हैं ।

छन्द-स्वदेशी पर यहां भारत में भी हम जान देते हैं।
वह ज्यादह दाम देते हैं विदेशी माल लेते हैं॥

मिस्टर जोन-तो क्या यह सोने की चिड़िया हम अपने जाल से निकलने देंगे-इङ्गलिस्तान के वजीरों को इण्डिया के लिये कुछ उपकार करने देंगे।

सब-नाट ऐट आल हर्गिज़ नहीं, हर्गिज़ नहीं।

छन्द-मण्डी न यह रही तो फिर ट्रेड क्या करेंगे।
भारत अगर न होगा तो भूख से मरेंगे॥

मिस्टर लेन-तो हमारी यह पालसी और भी सख्त होना चाहिये।

मिस्टर चेज़-कौन सी ?

मिस्टर लेन-यही कि कांच, मिट्टी, सीप और लोहे की चमकदार चीजें भेज कर हर साल इण्डिया का तमाम अनाज अपने आधीन कर लेना चाहिये, कहिये आप इस में क्या करेंगे।

मिस्टर चेज़-मैं खूबसूरत वाइन सप्लाई करूंगा जो परी बन कर उन्हें शीशे में उतारेगी, बिना तीर और तुफङ्ग के खुफ़िया जहर बन कर उन्हें मारेगी।

छन्द-मिटायेगी उन्हें दौलत से क्या, यह जिन्दगानी से।
जलेंगे अपने हाथों से लगेगी, आग पानी से॥

और तुम-

मिस्टर मुनरो-मैं मिट्टी के खिलौनों से उन्हें तमाशा दिखाऊंगा।

मिस्टर जोन-और मैं कांच के बरतनों से उनकी दौलत यहां लाऊंगा।

मिस्टर वाइट हार्स-और मैं अङ्गरेजी दवाइयों से उन के दिल दिमाग और रूह को विदेशी बनाऊंगा।

छन्द-वह जब इस तरह आके ताराज होंगे।
हमारे हमेशा ही मोहताज होंगे ॥
वह निज देश की उन्नती क्या करेंगे।
भुलायेंगे स्वाराज भूखे मरेंगे ॥

सब-हिप-हिप-हुर्रे।

मिस्टर ओल्ड-डियर! मैंने सुना है कि हमारी गवर्नमेंट के मिनिस्टर इण्डिया को होमरूल देना चाहते हैं।

मिस्टर लेग-वह हर्गिज ऐसा नहीं कर सकते हमारी मर्जी के खिलाफ़ वह ऐसा नहीं कर सकते। गौरन्मेन्ट का हमारी ही दौलत पर दार मदार है मुसीबत के वक्त लड़ाई के जमाने में हमारा ज़र ही हमेशा उनका मददगार रहा है।

छन्द-हमारे ज़र से ही यह महल औ सरकार खाने में।
यह रेल और तार बरकी सब हमारे कारखाने में ॥
वह गर हमको बनावेंगी तो हम बिगड़ी बनायेंगे।
मुसीबत में कड़े वक़्तों मे हम ही काम आयेंगे ॥

मिस्टर मुनरो-चलो! सब मिल कर मिनिस्टरों के पास चलें और उन्हें अच्छी तरह समझायें कि इण्डिया को स्वराज्य देने से यूरुप की तिजारत बरबाद हो जायेगी।

मिस्टर लेग-हां आवो! पहिले मिनिस्टरों का जाम सेहतनोश करो (शराब का दौर चलता है, सब नशे में चूर होकर नाचते और गाते है)

शक्ति-(स्वगत धर्म से) देख ले मेरे प्रेमियोंका आनन्द

जो स्वर्ग धर्म्म से प्राप्त हो सकता है वह बाहुबल से प्राप्त है ।

छन्द—देखते जो कुछ हो तुम वह शक्ति का परताप है ।
गुजरती है खूब अब तो धर्म है या पाप है ॥

धर्म्म—परन्तु धर्म्म विहीन यह आनन्द कब तक ?

छन्द—अधर्म्मी दुखी या सुधर्म्मी दुखी है ।
दिखाऊंगा मैं कौन सच्चा सुखी है ॥
दिखाऊंगा दोनो में किसको अभय है ।
है शक्ति की जय या धरम की विजय है ॥

(पर्दा गिरता है)

अङ्क पहिला

दृश्य तीसरा

स्थान रण छोर दास के महल का बाहरी बैठक ।

रण छोर दास और कंचन ।

रण छोर दास का प्रवेश ।

गान ।

विदेशी शौक ने यारो हमें मुफलिस बनाया है ।
गुलामों में हुई गिनती यहां तक तो गिराया है ॥
बने बाबू, लुटे लेकिन, विदेशी फैल-सूफी में ।
पसीने का कमाया धन विदेशी में लुटाया है ॥
नहीं हैं यह कलर, टाई, बने हैं, जिनपै हम लट्टू ।

पराये हाथ की रस्सी, गला अपना बंधाया है ॥
दिखा कर हमको हरियाली विदेशी ले गये सब कुछ।
फ़कत फाक़ों से मरने का हुनर हमको सिखाया है ॥
उतारा हमको शीशे में पिला कर फ्रेञ्च की मदिरा।
तेरे क़ुर्बान ऐ यूरुप हमें उल्लू बनाया है ॥
छुड़ाओ अब तो यारो अपने दामन को विदेशी से।
न इसके फन्द में आना यही धोखे की माया है ॥

भाषा-हा ! तेरा सत्यानाश हो विदेशी ने हमारे ऊपर ऐसा रंग जमाया है कि घर को बाहर को, गली बाज़ार को, द्वार और दीवार को, पुत्र और नार को, यहां तक कि समस्त भारत को विदेशी खच्चर बनाया। मेरी मूर्खता का क्या ठिकाना, सोना, पीना और खाना, सिर से पैर तक विदेशी बाना, आग सुलगाओ तो दियासलाई विदेशी भूख लगे तो मिठाई विदेशी, प्यास लगे तो सोडावाटर विदेशी, बदन ढांपो तो वस्त्र विदेशी, शाल है तो वह भी विदेशी, और बोल चाल है तो वह विदेशी, कहां तक कहूँ, विचार है तो वह भी विदेशी।

छन्द-यां तक तो घुसी आन के घर घर में विदेशी ।
एक एक के सौदा है भरा सिर में विदेशी ॥

यह चार सेर आटा और आठ छटांक घी, सब इसी विदेशी का प्रताप है जन जन दुखी और घर में विलाप है। बस ! आज से अपनी सन्तान के लिये, अपने कल्यान के लिये, धृति, धर्म्म, और धन के लिये, और सब से बढ़ कर देश के लिये, विदेशी पर स्वाहा पढ़ता हूं। आहा ! गाढ़ा धारण करने से आत्मा पवित्र हो गया। मस्तक शुद्ध हो

गया, और सर्वाङ्ग कुन्दन इव तेजमय होगया। परन्तु हा! बड़ा सङ्कट है। मैंने तो विदेशी के नाम पर तिलाञ्जुलि दे दी परन्तु वह (स्त्री) तो ऐसी हठीली है कि हज़ार कुछ समझाने पर भी अभी विदेशी का राग अलाप रही है। वही विदेशी सारी, वही गोटा और किनारी, वही साबुन, वही लवेण्डर, वही पफ़ और वही पाउडर की अग्नि का सेवन कर रही है। कहां तक उसकी आज्ञा पालन करूं मेरी बीस रुपये की तनख्वाह और बीबी का खर्च वाह वाह! हे सुमति प्रदाता परमेश! तू ही उसे सुमति प्रदान कर। हे गीतेश! (हाथ जोड़कर) तू ही उसे पवित्र सच्ची स्वदेश देवी और आदर्श भारत महिला बनाये लो वह तो आ गई!

(रण छोर की स्त्री कञ्चन का प्रवेश)

गान।

बारह बरस उमिरिया बारी।
जोवन में हूं मैं मतवारी॥
नई नवेली नारि निराली, पहनूं अंगिया रेशम वाली।
ओढ़ूं मैं पेरिस की जाली, हूँ कोमल फूलों की डाली॥
बारह बरस०॥
चूल्हा फोडूं खाऊं बिस्कुट, चौका दूर करूं मैं झटपट।
भाये ना यह घर का झंझट, नाजुक हाथ सहैं ना खटपट॥
मुरझाये गालों की लाली। बारह बरस०॥

रनछोर—वाह! तेरी ऐसी और हों दो चार, तो फिर भारत का बेड़ा हो पार। हत् तेरा सत्यानाश हो।

कंचन-क्यों जी ? तुम फिर खाली हाथ घर में आघुसे मैंने जो लाने को कहा था।

रनछोर-वह क्या प्यारी ?

कंचन-भूल गये इधर आओ तो जरा कान उमेठ कर याद करा दूं। (कान पकड़ कर उमेठना)।

रनछोर-मित्रो ! जिसका साग बिगड़ा उसका एक दिन बिगड़ा। जिसका अचार बिगड़ा उसका एक साल बिगड़ा और जिसका जोरू बिगड़ा उसका एक जन्म बिगड़ा अर र र प्यारी अब छोड़।

कंचन-क्यों अब याद शरीफ में आया ?

रनछोर-हां आया ! मेरी फूफू स्मरण आया, बुद्धि ठिकाने आ गई, समझ गये कि किससे पाला पड़ा।

कंचन-वह पफ़ वह पाउडर और वह लवेण्डर, कहां है जाओ ! जाकर अभी लाओ, नहीं तो मेरे घर से निकल जाओ।

रनछोर-हे परमात्मा ! (हाथ जोड़ कर) तू सब कुछ बना परन्तु किसी को बाबू कभी न बना। हाय हाय ! इस बाबूपने की ऐसी तैसी। सारा दिन दफ्तर में चक्की पीसना, अफ़सरों की झाड़ बौछाड़ सहना, दिन भर में खून और पानी एक करके दस आना की कमाई करना उस पर घर में आना तो बीबी के नाज़ उठाना, उठते लात और बैठते जूते खाना, यह है बाबुओं की औक़ात अब कीजिये बात।

छन्द-विधाता भलेही बना देना बाबू।
मगर भूल करके न बाबू बनाना॥

कञ्चन-और तूने उन्टिलमैनी छोड़कर यह क्या मुर्जियों का रूप बनाया है।

रनछोर-प्यारी यह हमारे सर्व मान्य पूज्य नेतावों की आज्ञा है कि स्वदेशी वस्त्रग्रहणकरो औरविदेशीका त्याग।

छन्द-नाकार बनायेगी तुम्हें चाल विदेशी ॥
भूले से खरीदो न कभी माल विदेशी ॥
सर्वस्व विदेशी हो तो उसको भी लुटा दो ॥
अच्छा तो यही है कि उसे आग दिखा दो ॥

कञ्चन-वाहजी वाह। आग लगा देने की एकही कही घर फूंक कर तमाशा देखना कहां की बुद्धिमानी है क्या इन सब चीजों में दाम नहीं लगा। मुफ्त में पड़ी मिली हैं।

रनछोर-प्यारी जब तक यह बलि-प्रदान न करेंगे चित्त से विदेशी का प्यार न जायेगा। आज समस्त विदेशी वस्तुओं का हवन करेंगे। और उसी अग्नि को साक्षी देकर प्रतिज्ञा-बद्ध होंगे कि फिर कभी इन अशुचि और विषैली वस्तुओं का स्पर्श तक न करेंगे। यदि ऐसा करेंगे तो यह होलिका दाह सदैव स्मरण रहेगा और प्रतिज्ञा भूलने से डरायेगा।

छन्द-विदेशी ने किया शामिल हमें खिदमत गुजारों में।
गुलामी का भरा है जहर इन कपड़ों के तारों में ॥

कञ्चन-तो क्या इन सुन्दर हलके और चमकीले कपड़ों को छोड़ कर मोटा-खुरखुरा और भारी खद्दर पहिन लूं।

रनछोर-इसी मोटे झोटे खद्दर और भारी गाढ़े को तो हमारे पूर्व्वजों ने मान दिया है। इसे तो श्रीराम जी और

श्रीकृष्ण जी ने पवित्र किया है यह मोटा है सही, परन्तु इसके तार तार में स्वतन्त्रता कूटकूट कर भरी है। विदेशी का माल खोटा और स्वदेशी का खरा है। स्वदेशी बाना हमको स्वतन्त्रता की झलक दिखाता है और विदेशी चाह हमको ग़रीबी और दासता के ग़र्क़ में गिराता है। यह केवल कपड़ा ही साठि करोड़ का विदेश से आता और हमारा पेट काट कर गुल छर्रे उड़ाता है यही नहीं वरन हम पर मार्शलला जैसे अत्याचार कराता है। हमारे लिये कड़े से कड़े क़ानून बनाता है।

छन्द-यह मोटा और गाढ़ा है मगर शुद्ध और पावन है।
बुज़ुर्गों की निशानी है य सुन्दर और सुहावन है॥

कञ्चन-अच्छा तो गाढ़ा पहिनने से क्या होगा।

रनछोर-हमारा साठि करोड़ रुपिया बच जायगा और इसकी चोट खाने से विदेशी व्योपारियों की बुद्धि अपने ठिकाने पर आजायगी।

छन्द-क़ौमियत का इसके हर यक रग में सोजो साज है।
इसके हर यक तार में स्योराज का यक राज़ है॥

कञ्चन-वाह। यह कुछ नहीं। दुनियां तो इसी अङ्गरेजी फैशन को पसन्द करती है।

रनछोर-यह तुम्हारी भूल है। यह युक्ति बे मूल है। देखो हृदय के नेत्र खोल कर देखो। विदेशी और स्वदेशी का मिलान कर देखो बुद्धि के काँटे में तोल कर, यह खद्दर का एक कुर्ता बर्षों काम आता है। और विदेशी लट्ठा एक ही धुलाई में फट कर लत्ता २ हो जाता है। यह क्रस्टी विदेशी टोपी जो न बर्सात में काम आती है, न गर्मी और

सर्दी से बचाती है एक ही महीने में मैली और बेकार हो जाती है परन्तु हमारी स्वदेशी मलमल (ढ़ाके की) की पगड़ी जो धूप में छतुरी और बरसात में बरसाती का काम देती है फट जाने पर भी ओढ़ने की चादर, पहिनने की धोती और हाथ मुंह पोछने का गमछा बन कर हमारे काम आती है, विदेशी कम्मल चार तह करने पर भी सर्दी को नहीं रोक सका परन्तु हमारी स्वदेशी रज़ाई पाले के जाड़े से भी हमको बचाती है। इवीं का बहु मूल्य शूज़, जिसके साथ पालिश का चमारपना लगा है। ६ महीने में मुंह बगार देता है परन्तु हमारा स्वदेशी जूता वर्षों तक चलता और फट जाने पर भी स्लीपर का काम देता है।

छन्द–बनी है शुद्धता से देखने में भी पियारी है।

स्वदेशी वस्तु में देखो झलकती पायदारी है॥

कञ्चन–वाह! अच्छी कही कहां वह जन्टिलमैनी फैशन और कहां यह लुच्चपन।

रनछोर–तो क्या तुम विदेशी फैशनवाले को जन्टिलमैन कहती हो।

कञ्चन—क्यों नहीं! और क्या इस टाट पहिनने वाले को।

रनछोर–नहीं प्यारी! जन्टिलमैन वह है जो सच्चा भला-मानुष है, भला मनुष्य वह है जिसको स्वदेश से प्रेम है, जिस के हृदय में देश की पीड़ा है। जो जातीय गौरव पर मर मिटने वाला, सर्वस्व न्योछावर करने वाला वीर पुरुष है। काना, लंगड़ा,-लूला और बीमार मनुष्य सच्चा जन्टिलमैन नहीं।

कञ्चन–काना, लंगड़ा, लूला और बीमार कैसे?

रनछोर–हां और क्या! यह जन्टिलमैन बाबू अन्धे नहीं तो बिना आवश्यकता ही चश्मा क्यों लगाते हैं। लंगड़े, लूले नहीं तो चार पग परभी (साइकिल) पैरगाड़ी पर क्यों जाते है। पशु नहीं तो मनुष्य की सङ्गति से घृणा क्यों करते, और कुत्ते से प्यार क्यों करते हैं।

कञ्चन–मैं तुम्हारी इन बातों में आने वाली नहीं।

रनछोर–यह बातें मेरी बातें नहीं, यह हमारे आदर्श नेताओं का उपदेश है, शास्त्र कारों का धर्मोपदेश है, आदर्श भारतीय देवियों का कर्म करो, कार्य क्षेत्र में उत्तीर्ण हो, चर्खा कातो। स्वदेशी गाढ़ा बना कर अपना, अपने बाल बच्चों का, अपने पति का तन ढांपकर उनको सच्चा स्वदेश भक्त बनावो, जाति का हाथ बटावो, जो जातीय धन विदेश को जा रहा है उसे रोक कर जातीय कोष को वर्द्धित करो।

छन्द–पहिले मातायें वीर बनें तो बालक भी रनधीर बनें।
मातायें सच्चा पारस हों तो बच्चे भी अक्सीर बनें॥

कंचन–यह बात, तो क्या बूढ़ी स्त्रियों का काम करूं? इन कोमल कोमल हाथों से चर्खा कातूं।

रनछोर–हे देवी! स्त्री जाति कोमल नहीं वरन हर प्रकार के बल, कौशल में महान कुशल है। श्री सीता जी को देखो, इसी कोमल हाथ से महाभारी और कठोर श्री शिवजी के धनुष को तिनुके के समान उठाकर रख दिया। राजस्थान के राजपूत महिलावों को देखो, जिन्हों ने इसी कोमल हाथ में कृपाण ग्रहण कर रणाङ्गण में कूद कर अरि

समूह को विच्छिन्न कर अपनी उज्ज्वल कीर्ति को चिरस्थायी बना गई।

कञ्चन-यह धर्मोपदेश अपनी मां-बहन को सुनाना, मैं शोक मनाने के लिये तुम्हारे घर नहीं आई हूं, घर को जलाओ चाहे उजाड़ो। तुम जानो और तुम्हारा घर, मुझे तो यदि मेरी मन भाती वस्तुयें न ला दोगे तो मैं अपना प्रबन्ध अपने आप कर लूंगी समझे!

रनछोर-क्या प्रबन्ध करोगी ?

कञ्चन-(जन्टिलमैनों) छैलाओं को रिझाऊंगी, मन की आश पुजाऊंगी। यदि कोई छबीला यार न मिला तो बाजार में बैठ जाऊंगी, लड्डू, पूरी उड़ाऊंगी।

(प्रस्थान)

रनछोर-हाय! जिस भारत में सती शिरोमणि सीता और सावित्री ने जन्म धारण कर इस का मुख उज्ज्वल किया, आज वही भारत ऐसी कुलटा स्त्रियों के प्रबल पाप से नष्ट और भृष्ट होने वाला है, क्या पवित्र वैदिक धर्म्म ऐसी ही दुष्ट नारियों के दुष्कर्मों से रसातल जाने वाला है, विदेशी सज धज के लिये निज गृह का त्याग, देवता स्वरूप निज पति का त्याग-हे भगवन्! आप क्या कर रहे हैं? अब बहुत हो चुका, अब सहा नहीं जाता। उठिये-आखें खोलिये-देखिये-यह आपका क्रीड़ास्थल भारत गारत हो रहा है। हाय! यह कुलटा अवश्य ऐसा ही काम करेगी। कोई ऐसा यत्न करूं कि यह सत्मार्ग पर आजाय। हाय! यह ऋषि सन्तान केवल बाहरी बनाव शृंगार के लिये कैसे कैसे पाप कर्म करने पर उतारू है।

गाना।

ये लीला कलियुगी देखो धरम सबने बिसारा है।
सती सावित्रियों ने लाज का पर्दा उतारा है॥
भले, बच्चे मरैं भूखे, पती भी आप बिक जाये।
विदेशी शौक पूरा हो यही उन को पियारा है॥
सहेंगी भूख फैशन के लिये और कष्ट झेलेंगी।
यहां तक औरतों ने अपने करतव को बिसारा है॥
अगर फैशन न छोड़ेंगी, प्रिया भारत की ललनायें।
तो मुश्किल इस गुलामी के भंवर से पार उतारा है॥
हमें बेकार कर डाला, विदेशी का बुरा होवे।
इसी के त्याग से अपने वतन को अब सुधारा है॥

(पर्दा का गिरना)

—:o:—

अङ्क पहिला दृश्य चौथा

स्थान प्राचीन समय का ऋषि आश्रम।

(कर्मवीर का सोते हुए दिखाई देना, धड़ाके के साथ फ्लाट का फटना। जालीदार पर्दे के भीतर बहुत से भारतीय भूखे और नङ्गों का दुष्काल की अग्नि में तपते हुए दिखाई देना। भयानक स्वप्न देखकर कर्मवीर का जागना)

कर्मवीर-(चौंक कर) ओह-कैसा करुणाजनक स्वप्न, आह ! मेरे भारतवासी भाई दुष्काल की अग्निमें जल रहे हैं हर तरफ दुःख और सन्ताप की लपटें प्रज्जवलित हो रही हैं, इधर दुखियों की हाहाकार है तो उधर दीन जनों की पुकार है, यहां सख्त कानून का शिकञ्जा है तो वहां ग़रीबी का पञ्जा है ।

छन्द-क्या प्रलै है देश में येवक्त आने के लिये ।
जो भी आफत है वह है हमको सताने के लिये ॥
कैसी तन पोशी-नहीं मिलता है खाने के लिये ।
दुख हमारे वास्ते और सुख जमाने के लिये ॥
अब नहीं इतना कलेजा दुख उठाने के लिये ।
क्या करूं तद्बीर आतों के बचाने के लिये ॥

भारत माता—

दोहा-पृथ्वी पर उपकार हित हुआ मनुज औतार ।
कौन करेगा आप बिन भारत का उद्धार ॥

कर्म्मवीर-कौन ? भारत माता, सर्व सुख दाता, जन्म प्रदाता ?

छन्द-तुम्हारा प्रेम ही दिल में मेरे विश्राम करता है ।
सर्व सुखदायिनी, सेवक तुम्हें परनाम करता है ॥

भारत माता-हे कर्मवीर ! उठो, और असहयोग का झण्डा लेकर आगे बढ़ो, इस धर्म युद्ध में विजय प्राप्त करो, देश में स्वदेशी का उद्धार करो, घर २ में चर्खे का प्रचार करो, यही सुफलता की कुंजी है, यही उत्तीर्णता का मर्म और यही राष्ट्र की पूंजी है जिस पर जाति का गर्व है ।

छन्द-तुम्हें आफतों से बचायेगा चर्खा ॥

विदेशी मिलों को ढहायेगा चर्खा ॥
य चक्कर में जब आप आयेगा चर्खा ॥
तो चक्कर में यूरुप को लायेगा चर्खा ॥
कि स्वोराज तुमको दिलायेगा चर्खा ॥

कर्मवीर–चर्खे में यह शक्ति, यह प्रताप, यह लाभ।

भारत माता–पुत्र! असहयोग भुजा है और चर्खा उस का अस्त्र है असहयोग की शक्ति का यही आधार है।

छन्द–चिन्ह है बाकी तुम्हारे पूर्वजों के नाम का ॥
बेजरर हथियार है यह देश के कल्यान का ॥
नाश कर देगा यह सारे पाप के सामान का।
यह नहीं चर्खा, सुदर्शनचक्र है भगवान का ॥
धर्म के रण में इसे लेकर अगर डट जाओगे।
जानिये निश्चय यही आखिर विजय तुम पाओगे ॥

कर्म्मवीर–तो हे माता! मैं स्वदेश बन्धु वर्गों को आप का यह पवित्र सन्देश अवश्य पहुंचाऊंगा उन्हें इस पवित्र धर्म्म युद्ध के लिये चलाऊंगा, मैं उनके आगे गिड़गिड़ा कर विदेशी के त्याग और स्वदेशी के ग्रहण करने की भिक्षा मागूंगा।

छन्द–तेरी खातिर को मैं, माता, घर २ अलख जगाऊंगा।
अपने प्यारे भ्राताओं को तेरा सन्देश सुनाऊंगा ॥
तन, मन, धन से जैसे होगा इससे लाभ उठाऊंगा।
महल, झोपड़ी के अन्दर चर्खे का रस्म चलाऊंगा ॥

भारत माता–यदि तुम चर्खे का दुर्ग बना कर सूत के गोले तैयार करोगे तो निश्चय है कि यूरुप के बड़े २ दुर्गों के कार्यालयों को ढहा दोगे, देश को उन्नति के शिखर पर पहुंचा दोगे।

छन्द-विदेशी फांस कटती है इसी विकराल आरे से।
वढ़ीं दुनिया में जब कौमें स्वदेशी के सहारे से॥

गाना।

अगर तुम मिल के सब भाई करो प्रचार खद्दर का।
तो देशी मण्डियों में हो सिरिफ व्योपार खद्दर का॥
बचा लो तुम करोडों हर बरस बाहर जो जाते हैं।
करो अपने लिये कपडा अगर तैयार खद्दर का॥
अभी क़िस्मत को रोयें कारखानों के लुटेरे वह।
नसीवा आज हो जाये अगर वेदार खद्दर का॥
तिजारत से न हो खाली खज़ाना कौम का हर्गिज़।
परस्पर मिल के भरलो तुम अगर भण्डार खद्दर का॥
तुम्हारे पूर्व्वजों ने इस को सीने से लगाया है।
पड़ा है किस मुदर्सी में करो उद्धार खद्दर का॥
दिनों में ही मिले स्वराज कहता है मेरा हिन्दो।
जो सच्चे जी से सब करलो अभी इकरार खद्दर का॥

कर्म्म वीर-माता! मैं तन से, मन से, धन से, आप की आज्ञा मानूंगा, यथा शक्ति गिरी हुई जाति को ऊपर उठाऊंगा। परन्तु आप के पवित्र असहयोग सन्देश पर आरूढ़ न होने वाले स्वार्थी और चापलूसों का डर है कि वह आपका सर्वस्व लुट जाने पर भी विदेशी सज धज को न छोडेंगे।

छन्द-इन्हीं लोगों के स्वारथ से वतन बर्बाद होता है।
इन्हीं लोगों के दुष्कर्मों से दिल नाशाद होता है।
इन्हों ने ज़र के लालच से हमें नीचा दिखाया है।
इन्ही लोगों के स्वारथ ने गरीबों को मिटाया है॥

भारत माता–परन्तु स्वारथ से ही नहीं, इनका मुंह केवल लोक निन्दा के धब्बे से ही काला है। वरन् यों कहो कि इन्हों ने अपना परलोक भी बिगाड़ डाला है हे कर्म्म वीर ! तुम इसका भय मत करो पाप की चट्टान कितनी ही कठिन क्यों न हो धर्म्म के प्रबल प्रवाह के सामने ठहर नहीं सकती ? जिस समय धर्म की वेगवती धारा प्रवाहित होती है तो उसके रोकने की सामर्थ संसार के किसी भी जड़ पदार्थ को नहीं है, देखो राम ने मर्य्यादा स्थापन करने में महा पराक्रमी रावण और उसके अनुयायियों की रञ्च मात्र भी परवाह न की। युधिष्ठिर ने अपना अधिकार प्राप्त करने में दुर्योधन और उसके मददगारों का लेश मात्र भय नहीं किया।

छन्द–हर देश में हर काल में ऐसे मनुज होते रहे।
आधार केवल स्वार्थ है ऐसे पुरुष होते रहे ॥
लेकिन विधाता दाहिने तो कुछ भी है परवा नहीं।
तदबीर सुधर्म पर कभी पापी का बस चलता नहीं ॥

कर्म्म वीर–हां सत्य है ! हमारा धर्म्म शास्त्र और इतिहास तो यही बतलाता है कि:–

छन्द–इब्तिदा से विघ्न होते हैं रहे शुभ काम में।
कामियाबी ही नजर आई मगर अंजाम में ॥
परखने की है मुसीबत माल यह खोटा नहीं।
सत्य जिनके पास है उनको कभी टोटा नहीं ॥

भारत माता–हां यही बात है तुम्हारा कहना सर्वथा सत्य है देखो मारीच और सुबाहु ने विश्वामित्र के यज्ञ

में लाख २ विघ्न डाले परन्तु अन्त में जय किसकी हुई ?

कर्म्मवीर-धर्म्म की ।

भारत माता-तो स्मरण रहे कि:-

छन्द-बिगड़ते रहें चाहे सामान सारे ।
चलें चाहे सिर पै मुसीबत के आरे ॥
अगर काम शुभ है इरादा है पक्का ।
तो निश्चय यहाँ, सिद्धि कारज तुम्हारे ॥

(भारत माता का आशीर्वाद देना)

(पर्दा का गिरना)

अंक पहिला दृश्य पांचवां
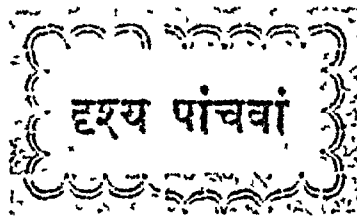
स्थान मन्दिर का एक भाग ।

(कर्म्मवीर का मन्दिर से पूजा करके तिलक
लगाये लोट हाथ में लिये बाहर आना
उधर से ईमानदार का आना ।
दोनों की भेंट ।

ईमानदार-महात्मा जी को आदाब अरज़ !

(मिलाने को हाथ आगे बढ़ाता है)

कर्म्मवीर-(पीछे हट कर) राम ! राम ! मैं अभी २ स्नान करके आया हूँ अभी मात्र मन्दिर में जाकर दर्शन और पूजन करना है । आप से हाथ मिला कर शरीर

अशुद्ध हो जायगा, अपवित्र हाथों से माता की पूजा न हो सकेगी इस लिये क्षमा कीजिये !

ईमानदार-(क्रोधित होकर) ओह इतने बड़े लीडर और यह तन्ग दिली ! जनाब आप ही के शास्त्रकारों ने कहा है कि जो आदमियों की असलियत को पहिचानता है, जो तमाम चीजों को एक में जोड़ने की तर्कीब जानता है वही सच्चा पण्डित है ।

छन्द-चाहिये हर एक से साहब मुहब्बत आप को ।
धर्म्म सिखलाता नहीं छोटों से नफ़रत आपको ॥
जो दुई सिखलाये वह मज़हब भला किस कामका ।
वह अडम्बर है निरा मज़हब है खाली नाम का ॥

कर्म्मवीर-(आप ही आप) धर्म्म और पण्डित की व्याख्या तो ठीक कही (प्रगट) परन्तु हमारे धर्म्म में तो छुवा छूत का भेद हमेशा से चला आता है ।

ईमान्दार-क्या हम लोग इन्सान नहीं ? क्या हम लोग स्नान नहीं करते ? इस लिये आप हमसे परहेज़ करते हैं ।

कर्म्मवीर-नहीं ।

ईमानदार-क्या हम ईमान पर कायम नहीं ? इस लिये ।

कर्म्मवीर-नहीं ।

ईमानदार-क्या हमारी पौशाक और बदन ग़लीज़ है ? इस लिये ।

कर्म्मवीर-नहीं ।

ईमान्दार-(चकित होकर) तो फिर क्या वजह ?

कर्म्मवीर-मित्र ! हिन्दू और मुसलमान दो नहीं । एक

ही वृक्ष के दो फल, एक ही तालाब के दो कमल वैसे ही एक ही ब्रह्म के सृष्टि स्वरूप हैं ।

छन्द–आंख हैं हिन्दू अगर तो मुसल्मान प्रकाश है ।
हैं तुम्हें हमसे उम्मीदें हम को तुमसे आश है ॥
फूल हैं हिन्दू मुसल्मां फूल की सौवास है ।
हैं मुसल्मां जिस्म हिन्दू उसके अन्दर श्वांस है ॥

ईमानदार–बेशक ! वह आंख हैं तो यह बीनाई है वह मेंहदी के पत्ता हैं तो वह रङ्ग हिनाई है । दोनों आपस में छोटे बड़े भाई हैं और सय्यासी मकसद के लिये दोनों के एक होने की सख्त जरूरत है, जो इस जरूरत को नहीं देखता वह फ़जूल लीडरी का दम भरता है खाली शोहरत के लिये मरता है ।

छन्द–दोनों का एक मकसद वाहिद खुदा वही है ।
दोनों को एक करदे जो रहनुमा वही है ॥

कर्म्मवीर–मित्र ! मैं अच्छी तरह से जानता हूं कि हमारी राजनीतिक भक्ति को निर्बल करने वाला दोनों का शत्रु भाव है, आपसका मन मुटाव है प्रेमका अभाव है जब से भारत में इस विषम फूटका बीज पड़ा भारत सत्य।नाश होगया । दासता-रोग और दारिद्रकी क्रीड़ाभूमि बन गया ।

ईमानदार–तो फिर इस फूट का जल्द से जल्द इलाज होना जरूरी है ।

कर्म्मवीर–थोडी सी लाचारी है ईर्षा और द्वैष का थोडासा पर्दा है जो हमारे परस्पर मिलने में बाधाडालताहै

छन्द–अगर पर्दा दुई का जाय फट तो एक हो जायें ।
बुरे हैं दृष्टि में जिनकी वही फिर नेक हो जायें ॥

ईमानदार—अगर इस हिन्दू मुसलिम एकता के लिये किसी तरह की कुर्बानी की जरूरत है तो बतलाइये उसकी क्या सूरतहै इससे बढ़ कर कौनऐला और मुहूर्त होगा जो कलहोनाहै वहआज और जोआज होनाहै वहअभीहोजाय।

छन्द—जब तक जुदा हैं दोनों तब तक गुलाम हैं हम।
रिस्वा, जलील, बन्दे नौकर मुदाम हैं हम॥
मिल जांयगे जो बाहम सैदे अलम न होंगे।
गैरों के इस तरह फिर नाज़िल सितम न होंगे॥

कर्म्मवीर—इसका उपाय तो आसान है थोड़ी सी उदारता का बलिदान है, यही रोग का निदान है।

ईमानदार—अच्छा तो मैं इस हिन्दू मुसलिम एकताको हर एक कीमत पर लेने को तय्यार हूं। आज्ञा—

कर्म्मवीर—धन्य है! अच्छा कृपा करके हिन्दुओं के शुद्ध भावों के लिये लाखों अनाथ और विधवाओं के लिये आपस के लाभ के लिये, देश के नवयुवक सन्तानके लिये, गो हत्या को बन्द करा दीजिये, द्वेष की रेख को मिटा कर बहुत दिनोंके बिछुड़े हुए दोनों भाइयोंको मिलादीजिये।

ईमानदार—तो मैं आपको यह खुशी की खबर सुनाता हूं कि मैं खुद मुसलमान लीडर होते हुए गो-हत्या कराने और गोमांस खाने से परहेज करता हूं।

कर्म्मवीर—तो फिर आप मुसलमान होते हुए भी मुझ से अधिक पवित्र हैं, मैं आप का, और आप मेरे मित्र हैं।

छन्द—दुई का भेद प्यारे आज से लो मैं मिटाता हूं।
मिलाना हाथ का क्या वस्तु छाती से लगाता हूं॥

(दोनों का मिलना)

ईमानदार-मित्र मैं भी यह प्रतिज्ञा करता हूं! कि हिन्दू भाइयों के धार्मिक भावों की हमेशा इज्जत करूंगा और अपने मुसल्मान भाइयों से भी कराऊंगा।

कर्म्मवीर-और जहां मुसल्मान भाइयोंका मज़हबी सवाल होगा वहां सबसे पहिले मुझे उसके उपायका ख्याल होगा।

छन्द-तुम्हारा हित जहां होगा वहां सब कुछ लगा दूंगा।
जरूरत आन पड़ने पर स्वप्राणहु को लड़ा दूंगा॥
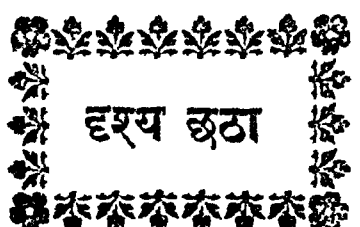
ईमानदार-खुदा हमारे इस नेक काम में बरकत दे।

कर्म्मवीर-तो इस प्रतिज्ञा के पालन करने का सब से पहिला और सब से उत्तम अवसर मौजूद है आज ईद मुबारिक का दिन है उसी की खुशी में कुछ कर्तव्य पालन करके दिखाओ और हजारों गायों की रक्षा करने का अक्षय फल लो।

ईमानदार-बहुत अच्छा! आइये मेरे साथ।

(दोनों का प्रस्थान)

अंक   दृश्य छठा   पहिला

(स्थान) बधगृह।

(बहुत से मुसल्मानों को गो वध के लिये तय्यारी करना, बहुत सी गायों को आंखों में आंसू भरे दिखाई देना।)

पहिला मुसलमान–भाई अब ज्यादह देर न करो गाय को लाओ, दोस्त तुम भी तलवार उठाओ, दिल मजबूत करो कुर्बानी की मुबारक रस्म को पूरा करो और माफी के लिये खुदा से दुआ करो।

दूसरा–(तलवार उठा कर)

शेर–है जहे क़िस्मत अगर मंजूर है दरगाह में।
जबह करता हूं मैं गाई को तुम्हारी राह में॥

(गाय के मारने को तलवार उठाना,
ईमान्दार और कर्मवीर का प्रवेश)

ईमानदार–खबरदार! मुल्क और कौम की जरूरत और रिवाज को लीडरों की आवाज और येहतियाज को लापरवाही और हुक्मउदूली को ठोकरसे ठुकराने वालोठहरो

शेर–मजूर तरक्की है तो तलवार हटा लो।
मत खून बहाओ गऊ माता को बचा लो॥

पहिला–लाहोलविल्लाह! मुसल्मान और गऊ इस की माता!

ईमानदार–हां यह बाप से ज्यादह हमको खिलाती है। मां से ज्यादह हमको पिलाती है।

छन्द–इसी के दम से यह सब काम काज होते हैं।
इसी के बेटों के द्वारा अनाज होते हैं॥
इसी के दम से यह कपड़े साज होते हैं।
इसी के दम से ही राजों के राज होते हैं॥
यह सारे जीवों को सुख भूरि की प्रदाता है।
जो दूध अपना पिलावे वही तो माता है॥

पहिला–लेकिन मुसल्मानों के खुदा ने गाय को पूजने

के लिये नहीं बनाया, बल्कि 'रसूलअल्लाह ने इसे कुर्बानी के लिये ख़ास कर बनाया है।

शेर-जिसका रसूलअल्लाह पै ईमान नहीं है।
वह कुफ्र का बन्दा है मुसल्मान नहीं है॥

ईमान्दार-क्या खुदा के बन्दों को गुनाह से बचाने वाले रसूलअल्लाह ने गाय की कुर्बानी का हुक्म दिया है?

पहिला-हां इस दुनियां को पार जाने के लिये, भिश्त पर काबू करने के लिये, ईमान को बचाने के लिये, खुदा को पाने के लिये, सच्ची कुर्बानी गाय की कुर्बानी है।

ईमान्दार-अरे भाइयो! खुदा ने तो जब हजरत आदम को इस जमीन पर पहुंचाया तो उसके दूध पीने के लिये पहिले गाय को ही बनाया, क्या खुदा अपनी इस मुफीद और खूबसूरत दुनिया को हानि करने से खुश होगा? क्या खुदा का प्यारा रसूल इस के मारने से खुश होगा? कभी नहीं।

छन्द-हजूर सरवरे आलम कभी न खाते थे।
तमाम सूफिया इसको मुज़िर बताते थे॥
जहां में ख्वाजये अजमेर जो कहाते थे।
किताबें देखलो उनकी वह क्या सिखाते थे॥
दिया है रुतबा इसे हर फकीर ने देखो।
लिखा है ग़ुनिया में पीराने पीरने देखो॥

पहिला-तो जो कुछ मुद्दत से इस्लाम का दस्तूर है, क्या वह अक्ल और ईमान से दूर है। नहीं-नहीं-गाय हिन्दुवों के लिये काबिल ताज़ीम है, मगर मुसल्मानों के लिये इसकी कुफ्र की तालीम है।

शेर-किसी पीर मुर्शिद की आदत नहीं है।
रवा हमको इसकी इबादत नहीं है॥

ईमानदार-तो क्या यह गलत है कि जब हज़रत मूसा अलेहुस्सलाम तूर पर गये तो सामरी ज़रगर ने हज़रत इसराईल के जेवरों से एक सोने का गाय का बच्चा बनाया और हज़रत से कहा कि:—

इबादत करो इसकी तुम, पर रवा है।
यही कामधेनू तुम्हारा खुदा है॥

दूसरा-हज़रत! ज़रा सोच समझ कर बात कीजिये, आप हज़रत साहब पर नाहक ऐब लगा रहे हैं एक गाय को खुदा के बराबर दर्जे का बना रहे हैं।

क्यों सबक देते हो दुनियां को कुफ़र की राह का।
हुक्म कुरआं में नहीं ऐसा रसूलअल्लाह का॥

ईमान्दार-हुक्म के लिये कुरानशरीफ देखो।

दूसरा-क्या? हमारे कुरानशरीफ़ में।

ईमान्दार-जी हां! मुसल्मानों के प्यारे कुरानशरीफ़ में। पारह १७-हज १६-रकूह ४-आयत ३६।

पहिला-उसमें क्या लिखा है।

ईमान्दार-यही कि ऐ ईमान वालो, खुदा तक न गोश्त पहुंचता है और न मिठाई पहुचती है।

पहिला-तो फिर क्या पहुंचता है।

ईमान्दार-बल्कि तुम्हारी सच्चाई पहुंचती है।

शेर-हो शक तो देखलो तोरेत क्या बताती है।
ज़बूर में भी गऊ की बुराई आती है॥
मसीह वालों की अन्जील क्या सिखाती है।

क़ुरान में बक़र की सूर्त इसे बताती है ॥
कभी भी इसको न छामा था अहेल बातिल ने ।
अबह से रोक दिया इसको शाह काबिल ने ॥

दूसरा-एक यही क़ुरानशरीफ़ की आयत है या और भी कोई नयावत है।

ईमान्दार-इसके सिवाय पारह सिफ़ोल की १७१ वीं आयत है, हज़रत आयशा सिद्दीक़ा और हज़रत अबू दाऊद से रवायत है।

कहा रसूल ने गो लान्स में है बीमारी।
है रहन रहेम के क़ाबिल यह गाय बेचारी॥
मरज़ है गोश्त में गाई के यह न खावो तुम।
शिफ़ा है दूध में इसके पियो पिलावो तुम॥

पहिला-तो हज़रत क्या हमारे सुलतान बादशाह ईमान्दार न थे।

ईमान्दार-तो फ़रीदूं जैसे बादशाहों ने भी गाय का मान और मर्तबा बढ़ाया है, पवित्र गाय के नाम से, उस की औलाद ने अपने नामों को गावसईद-गाव सुर्ख-गाव अबलक़ वग़ैरह मशहूर कराया था, खुद फ़रीदूं ने मैदान जङ्ग में फ़तहमन्दी के लिये गाय की शक्ल का एक झण्डा बनवाया था।

पहिला-तो क्या हम अपने दस्तूर को मिटादें? गाय की क़ुर्बानी की रस्म मिटादें।

ईमान्दार-क़ुर्बानी मगर किसकी क़ुर्बानी? जो हज़रत इस्माईल की जगह हज़रत इब्राहीम के हाथों से हुई, यानी क़ुर्बानी गोसपन्द(बकरा)की,खुदाऔरफ़रिश्तोंकेपसन्दकी।

दूसरा–क्या गाय हम पर हराम है।

ईमान्दार–नहीं बल्कि मुफीद आम है।

इसी तरह जो हम इस पर छुरी चलायेंगे।
अनाज और पदारथ कहां से पायेंगे॥
यह कुरमें यह परांठे कहां से आयेंगे।
बजाय दूध के बच्चों को क्या खिलायेंगे॥
यह मां नहीं कि बरस दो बरस में छोड़ेंगे।
इसकी छाती है यह सारी उमर निचोड़ेंगे॥

कर्मवीर–ऐ धर्म के माननें वालो! इस ईश्वर भक्त सच्चे ईमान्दार मुसलमान से शिक्षा ग्रहण करो।

ईमान्दार–मेरे प्यारे मुसलमान भाइयो! जो गऊ हिन्दू भाइयों की कामधेनु कहलाती है, जिसको हमारे पैग़म्बरों ने सबके फायदेकी बतलाया है वही स्वर्णमती गाय पार्सियों के महर जान ईद को उस रात नूर से आती है और उनकी मुरादें पुजाती है।

छन्द–गऊ के रक्षक हैं सच्चे और वह गोपाल हैं।
इस लिये ही पारसी दौलत से मालामाल हैं॥

कर्मवीर–पार्सियों की ही नहीं, यह सारी सृष्टि की अन्न दाता है।

छन्द–बच्चे बूढ़े और जवां की इस से ही औकात है।
एक भारत की नहीं सारे जगत की मात है॥

पहिला–तो आज तक हमने तअस्सुब के मारे गोहत्या को ठीक समझा आज से अपने वतन के लिये, अपने हिंदू भाइयों के लिये, और सबसे बढ़कर अपने खुदा को खुश

करने के लिये न गोहत्या करेंगे और न करायेंगे, और न गोमान्स खायेंगे. न खिलायेंगे।

छन्द-सच है, गाई का मुझसे भी खूं औरदूध का नाताहै
हिन्दू भ्रातों की माता है तो यह मेरी भी माता है॥

(गाय के गले में फूल माला पहिनाना)

(फ्लाट का फटना और साक्षात
भगवान का प्रकट होकर
दर्शन देना)

विश्वम्भर भगवान—

दोहा-भारतवासी यदि बनें सब मिलकर गोपाल।
मांगें जो बरदान वह दूंगा मैं तत्काल॥
भारतवासी यदि करें कामधेनु प्रतिपाल।
अन,धन,धाम स्वराज्यसों मैंकरिदेऊं निहाल॥

गाना॥

गाई की रक्षा कर लो, मिलकर तुम दोनों भाई।
तुम करो सहाय आपनी, मैं भी हूं सदा सहाई॥ गाई की०
गो रक्षा धर्म्म निवाहो, फिर लेव वही जो चाहो।
गो की सेवा चितलाओ, यह है मेरी सेवकाई॥ गाई की०
होवै नहीं धन का घाटा, सस्ता होजावै आटा।
खटकै नहीं दुख का कांटा, हो पूर्णआश मनसाई॥ गाई की०
यह प्रण हर मुसलिम धारै, गो का नहिं शीश उतारे।
फिर रहे गले में प्यारे, तुम्हरे नहिं फांस पराई॥
गाई की सेवा करलो, मिलकर तुम दोनों भाई।

(पर्दा का बदलना)

दीखे पर भगवान के विराट रूप का भारत को दर्शन।
पर्दा का गिरना।

अंक

दूसरा
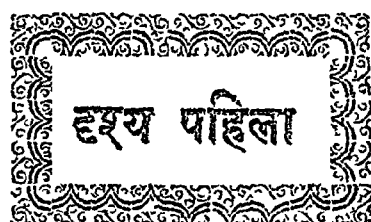
स्थना—कुटी।

(एक अङ्गहीन भारतवासी साधनी का प्रवेश)

साधनीः—

गाना।

सन्देशा हमको गांधी ने सुनाकर देश भक्ती का।
बनाया आदमी मन्तर सिखा कर देश भक्ती का॥
वतन के प्रेम का अमृत पिलाया भ्रातमाओं को।
सु पावन, देश में धारा बहाकर देश भक्ती का॥
दिखाया. नैन अन्धों को सरल, सीधा, सफा रस्ता।
सभी स्थान में दीपक जलाकर देश भक्ती का॥
फिरावोदेश—भ्राताओ ? यही माला स्वदेशी का।
दिलों के बीच एक मन्दिर बनाकर देश भक्ती का॥
जनम-अधिकार होने का सचाई से करो दावा।
सुरीला नाद कौमी तुम बजाकर देश भक्ती का॥

भाषा।

अहा ! सर्वमान्य—पूजनीय महात्मा गांधी के मुखकमल

में स्वराज्य-डमरु-नाद गुञ्जार कर उठा। जो केवल देश भक्तों के हृदय तन्त्री को ही प्रतिध्वनित नहीं किया वरन कन्याकुमारी से लेकर काश्मीर तक, हर एक झोंपड़ी से लेकर महल तक, स्वतन्त्रता के पवन में मिल कर, गङ्गा और गोदावरी, हिमालय और कैलाश की गुफाओं और कन्दराओं में समाधिस्थ महात्माओं के हृदयों को भी छीन लिया, ईश्वर भक्ति के स्थान में देश भक्ति की तरङ्ग लहराने लगी। कैसा पवित्र विचार कैसा शुद्ध भाव और कैसा निर्मल त्याग।

अहा! जिस देश में जन्म लिया, जिस देश में भरण पोषण हुआ। जिस देश की धरती को श्री राम और श्री कृष्ण की चरण कमल रज ने पवित्र किया। जो मातृभूमि, मर्ण पर्य्यन्त लालन पालन कर के मरणोपरान्त भी अपनी प्यार गोद में स्थान देकर प्रगाढ़ निद्रा में सुलाती है उस मातृभूमि की भक्ति, अहा सत्य ही साक्षात भगवान की पूर्ण भक्ति है।

जिसको न निज भाषा तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है, और मृतक समान है॥

हाय! क्या करूं? मेरा कोई उपाय नहीं, हाथों से हीन हूँ अनाथनी और दीन हूँ। किसी प्रकार देश सेवा कर नहीं सकती। आज सम्पूर्ण अङ्ग होते, चलने फिरने की सामर्थ्य होती तो चल कर देश भ्राता और भगनियों को घोर निद्रा से सचेत करती जन्म सिद्धि अधिकार अर्थात् स्वराज्य लेने के लिये हेत करती, और घर २ में भ्रमण कर देशसेवा का प्रचार करती।

छन्द–देश भक्ती हृदय में जिसने कभी धारी नहीं।
तप करै कितनाहि पर वह स्वर्ग अधिकारी नहीं॥

(कर्म्मवीर का प्रवेश।

कर्मवीर–हे देवि! तेरे शुभ विचारों को धन्य है, तू धन्य है और तेरा जन्म धन्य है, हे देवि! यह न समझो कि तुम कुछ नहीं कर सकी। देवि! तू साक्षात शक्ति का औतार है, तू जहां, अर्जुन, भीम और कृष्ण जैसे धर्मवीर, कर्मवीर, बलवीर उत्पन्न करके धर्म का उद्धार कर सकती है, जहां गङ्गा बन कर सप्तवस्तुवों को श्राप मिटाने में समर्थ है, वहां देश का उद्धार करना तेरे लिये कोई कठिन काम नहीं।

छन्द–नई बन कर तू अभी निकले अगर मैदान में।
शक नहीं कुछ भी, समझ ले देश के कल्यान में।

साधनी–हे वीर! बतावो बतावो शीघ्र बतावो? तुम चेष्टा से देश भक्त देख पड़ते हो। कुछ धर्म संयुक्त कर्म्म उपदेश करो। वह मार्ग बतलावो कि जिस पर चलकर मैं देश सेवा कर सकूं। देशोद्धार में भाग ग्रहण कर सकूं और मुक्ति पर अधिकार कर सकूं।

कर्म्मवीर–हे देवि! चर्खा कात कर वह गोले तैय्यार करो जिन से जाति इस धर्म्म युद्ध में विजय की आशा कर रही है।

साधनी–हाय! यह भी तो नहीं कर सकी। देखो एक नहीं दोनों हाथों से लाचार हूँ।

छन्द–हाथ होते तो जगत को हाथ दिखलाती अभी।

हाथ में तलवार लेकर समर में आरति प्यारी ॥

कर्म्मवीर–हे ईश्वर ! ऐसी उदार प्रकृति अबला को तो हथियार हाथ देना उचित था।

साधनी–कोई और मार्ग नहीं ?

कर्म्मवीर–अच्छा ! तुम केवल शुद्ध हृदय और सच्चे भाव से देशोद्धार के लिये ईश्वर से प्रार्थना किया करो, पुरुषार्थी पुरुषों को आशीर्वाद दिया करो।

साधनी–तो क्या केवल जीभ और आंखों से, इस शरीर और प्राणों से मैं कुछ सेवा नहीं कर सकती।

कर्म्मवीर–यदि उत्साह और साहस की पर्वा है तो सब कुछ कर सकती हो। तो यह भिक्षा की झोली गले में डालो। भारत ललनाओं के आभूषण उतरवा कर जातीय कोष भर दो, और अबलाओं को सबला बना दो।

छन्द–हे देवी ! अबला का सबको कौशल कला दिखाओ।
लेकर भिक्षा की यह झोली घर २ अलख जगाओ ॥
भीख मांग कर भारत सेवा का शुभ कर्म्म बजाओ।
घर घर में फिर कर भारत का यह सन्देश सुनाओ ॥
"जन्मसिद्धि अधिकार हमारा है स्वराज्य, आदर्श बताओ"

(कर्म्मवीर का साधनी के गले में झोली डाल कर प्रस्थान)

साधनी–गया ! कर्म्मवीर गया !! मेरा उत्साह बढ़ाकर भारत का संदेश सुनाकर, सच्ची देश भक्तिनी बना कर गया, मैं यह पवित्र काम, तन, मन, धन, से करूंगी, परन्तु मेरे वस्त्र तो विदेशी हैं क्या यह स्वदेशी काम, स्वदेश के लिये स्वदेशी झोली में, भिक्षा मांगते हुए, इन विदेशी कपड़ों से लज्जा न आयेगी ?

छन्द-स्वदेशी धर्म का है युद्ध तो लश्कर स्वदेशी हो।
मेरी झोली स्वदेशी है तो दफ्तर भी स्वदेशी हो॥
स्वदेशी है अगर मन तो जवानी भी स्वदेशी हो।
स्वदेशी है मेरी इच्छा तो पानी भी स्वदेशी हो॥

(जाना चाहती है कि उसके चरण स्पर्श से एक शापित महापुरुष का पृथ्वी से प्रकट होना। आकाश मार्ग से पुष्पक विमान से उतरना, और उस महापुरुष का विमान में बैठकर स्वर्गलोक को जाना।)

महा पुरुष-(अन्तरिक्ष से) वत्स! भारतवर्ष में देश भक्ति का व्रत अखण्ड हो गया, सन्यासी ने तुझे शाप दे कर साथ ही वरदान भी दिया था कि कलियुग मे जिस समय स्त्रियां देश सेवा में कटिबद्ध होंगी उस समय एक सच्ची देश सेविका के चरण स्पर्श से तुझे फिर स्वर्ग प्राप्त होगा, और उसी समय, निश्चय समझना, भारत वर्ष का भी उद्धार होगा।

आकाश वाणी-देश भक्ति का ऐसा ही प्रताप है, अब भारतवर्ष का उद्धार अवश्य होगा।

(पर्दा का गिरना)

——:o:——

अङ्क दूसरा
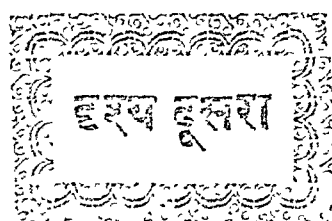
स्थान—स्वर्गलोक ।

(ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सप्तऋषि और चित्रगुप्त व यमराज इत्यादि का समागम)

विष्णु—कहिये ! यमराज जी आज कल मृत्युलोक का क्या समाचार है? कलियुग के प्राणी आज का कैसा आचार और कैसा व्योहार है ?

यमराज—त्रिलोकी नाथ ! आप की कृपा से मेरे विकराल दण्ड के आगे कोई शीश नहीं उठा सकता, कोई चूं नहीं कर सकता, परन्तु आज कल बहुत से भारतवासी बच्चे, बूढ़े और स्त्रियों के तीव्र कर्षण (अकाल) से मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है ।

विष्णु हैं—भारत—हमारे केलि भवन भारत—में यह अनर्थ अरे भारत भूमि तो हमारे स्वर्ग लोक से भी अधिक पवित्र है। यह क्या ?

जन्म औमर्ण का शिर पर हमेशा भार लेता हूँ॥
इसी भूमी के कारण मैं सदा औतार लेता हूं॥

यमराज—हे दीन पालक—इसी भारत वर्ष में आज न्याय और धर्म के स्थान में अन्याय और पाप का अधिकार है पवित्र देश में आप की विहार भूमि में, विदेशियों का प्रभुत्व प्रसार है ।

छन्द-बिगाड़ा है ऋषि सन्तान को हा इन नरेशों ने ॥
मिटाया और लूटा खूब भारत को विदेशों ने ॥

चित्र गुप्त-हे भगवन्! अब उन अकाल मृत्यु प्राप्त प्राणियों का क्या करना होगा।

विष्णु-जो भारत के काम में काम आये हैं उनके लिये भक्ति और मुक्ति दोनों मेरे पास हैं।

छन्द-हम ऐसे देश भक्तों को सदा सिर पर बिठायेंगे।
वतन के वास्ते जो मर मिटे हैं मोक्ष पायेंगे ॥

महेश-वास्तव में देश भक्ति साक्षात आप की भक्ति का पवित्र स्वरूप है जो पाप हारनी और अनूप है।

विष्णु-अच्छा चित्रगुप्त जी! बतावो तो सही, भारत में अकाल मृत्यु होने का कारण क्या है?

चित्रगुप्त-हे विश्व पालक! विदेशी स्वार्थ और नीति यही कारण है जो भारतीय जीवन को नाश कर रहे हैं, बड़ी सफाई और सुन्दरता के साथ घुन की तरह प्राणी मात्र की आयु को खोखला बनाकर अकाल में ही काल के गाल में डाल रहे हैं राज्य के सख्त कानून से भारतवासी दुखी हो रहे हैं नौकरशाही के हाथ में पड़ कर अच्छे और बुरे दोनों रो रहे हैं विदेशी अपने आनन्द के लिये दीन और दुखियों को दुःख दे रहे हैं, बिचारे निर्दोष मर रहे हैं और वह निर्बलों पर जुल्म ढहाने को अभी तक जी रहे हैं विदेशी प्रबन्ध ने भूख और दरिद्र की वृद्धि कर दी है आप की पवित्र आज्ञा और बड़े बड़े सन्त पुरुषों ने धूलि में मिला दिया है।

छन्द-शक्ति नहीं है जोर नहीं और जर नहीं।

दीनों का अपने घर में ही मानो गुजर नहीं॥
जालिम के जुल्म करने में कोई कसर नहीं।
उनका बगैर आप के अब दूसरा नहीं॥
भक्तों को दास जान के उपकार कीजिये।
हे ईश ! भरत खण्ड का उद्धार कीजिये॥

विष्णु—निश्चिन्त रहो मैंने जिस महान आत्मा को भारतवर्ष में औतार लेने की आज्ञा दी है। वह निश्चय भारत वसुन्धरा का उद्धार करेगा, स्वार्थ अत्याचार का निस्तार करेगा, अनुचित कानून के बन्धन को तोड़ेगा, अन्याय और अनीति का नाम और निशान न छोड़ेगा।

ऐसा जगत में जाय के वह करेगा पुरुषार्थ।
भारत धरनि को कर्म अपने से करे सुकृतार्थ॥

(आकाश मार्ग में बिमान पर बैठे एक पुरुष का
दिखाई देना।)

पुरुष:—

छन्द—पापी दुखिया दीन का किया सर्व उद्धार।
देश भक्ति के तेज से नौका होगई पार॥
पारस से छू कर हुई मिट्टी कञ्चन सार।
जप, तप, पूजा, ध्यान बिन मिला स्वर्ग का द्वार॥

(बिमान का स्वर्गलोक में आना)

चित्रगुप्त—हे भगवन ! आपकी सृष्टि नियम के विरुद्ध यह कैसा अपवाद है देश भक्ति से हीन आत्मा स्वर्ग में आबाद है, जिसने देश के लिये कोई जप तप यज्ञ इत्यादि शुभ कर्म नहीं किया कोई योग का अभ्यास अथवा वैराग्य नहीं लिया वह स्वर्ग को पाता है, क्षुधा पथ की सामग्री

को दाता है, मैंने इसके पाप पुण्य का खाता देखा है, ऐसा कोई शुभ कार्य नहीं।

छन्द–जिससे लहैं सामर्थ्य को यह औरभवसे पार हो।
आप के दर्शन करें और स्वर्ग पर अधिकार हो॥

विष्णु–इसने अपने आप तो देश भक्ति नहीं की परंतु एक देश भक्त अबला के चरण रज से पवित्र होकर ब्रह्म लोक का अधिकारी बना है देश भक्ति में वही शक्ति है।

छन्द–है शक्ति देश भक्ति की मेरी रचना मिटा डाले।
है राजासन तो क्या वह मेरे आसनको हिलाडाले॥

चित्रगुप्त–माना कि देश भक्ति के प्रभावसे, देशभक्त के चरण स्पर्श से स्वर्ग का अधिकारी है, परन्तु जिसने जन्म भर देश सेवा नहीं की उसको नियमानुसार स्वर्ग स्थान देने से इन्कारी है, यदि यही नियम जारी है तो देश भक्ति का प्रताप अस्त हो जायगा, हर एक देश द्रोही जो घोर नर्क का अधिकारी है वह भी तर जायगा।

छन्द–जन्म भर जिसने नहीं की देश की सेवा कभी।
खा नहीं सकता है वह आनन्द का मेवा कभी॥

पुरुष–अहा!

छन्द–कल्प लता की ललित लहरि लचकती लता है।
है अमृत की धार परसती सलिल हवा है॥
गूंजत श्रुति श्रुति मन्त्र वेद ध्वनि भरी सदा है।
परत दृष्टि तरु थंभत साधु आनन्द भरा है॥

विष्णु–ठहरो! ठहरो!! हे प्राणी! अपने अशुद्ध आत्मा से वैकुण्ठ की मर्यादा का अपावन उल्लङ्घन मत करो। जाओ मृत्यु लोक को लौट जाओ।

पुरुष-अरे मैं इतना अभागी ! द्वार तक पहुंच कर फिर वापसी !!

छन्द-महा पापी भी इस क्षेत्र से निश्चै पार होता है।
सुना है आप के दर्शन से तो उद्धार होता है॥

विष्णु-सत्य है परन्तु तुमने जन्म भर में कुछ भी देश सेवा नहीं की, और देश सेवा न करने वाला मेरे दर्शन का अधिकारी नहीं। जिसने देश भक्ति करके यश न कमाया, जिसने तन मन धन में से किसी एक को भी देश सेवा में नहीं लगाया, जिस ने स्वदेश मन्म को मोक्ष साधन का उपाय नहीं बनाया उसके लिये स्वर्ग का द्वार हमेशा बन्द है मुझे मेरी भक्ति से अधिक देश भक्ति प्रिय है।

पुरुष-हां यह मैं मानता हूं, दुर्लभ मनुष्य योनि पाकर कभी देश सेवा नहीं की। स्वार्थ साधन के सिवाय कभी कोई काम नहीं किया, परमार्थ के यज्ञ में निष्काम कर्म की आहुति कभी कोई नहीं दिया परन्तुः-

छन्द-यह सब पापों की बीमारी की यक अक्सीर पुड़िया है।
अगर मैं जानता यह देश भक्ती सब से बढ़िया है॥
तो मैं सारा जनम इस देश भक्ती में बिता देता।
मैं अपने देश के खातिर मनुज जीवन मिटा देता॥

विष्णु-तो जाओ ! तुम को अवसर दिया जाता है, मृत्यु-लोक में फिर जाओ, शतवर्ष आयु पर्यन्त देश सेवा का कर्त्तव्य पालन करो।

छन्द-प्रथम तुम आत्मा को शुद्ध करो जा देश भक्ती से।
करो अधिकार मुक्ती पर तुम इस भक्ती की शुक्ती,में॥
जो अपने देश पर तन मन से बलिहारी नहीं होता।

सो मेरी कृपा दृष्टी का भी अधिकारी नहीं होता ॥
पुरुष–तब तो मैं इस पुनर्जन्म को धन्य समझूंगा, इस का कोई स्वांस बिना देश सेवा के व्यर्थ न जाने दूंगा, देश सेवा के मार्ग में स्वार्थ का कांटा न आने दूंगा।
दोहा–आठ पहर चौंसठ घड़ी सब दिन बारह मास।
करूं समर्पण देश को अपना हर एक स्वांस ॥

गाना।

मैं लेकर जन्म भारत में स्वदेशी रट लगाऊंगा।
स्वदेशी प्रेम की माला मैं तन मन से फिराऊंगा॥
मैं जीवन मौत समझूंगा कनलके फूल कांटों का।
मैं अपने देश के खातिर हर एक सख्ती उठाऊंगा॥
निछावर अपनी कर दूंगा मैं रग २ देश भक्ती में।
मैं नस २ काटकर भारत की वेदी पर चढ़ाऊंगा॥
करूंगा नष्ट बनकर राम मैं इस पाप रावन का।
मैं बनकर कृष्ण भ्रातों को धरम गीता सुनाऊंगा॥
न दूंगा पहनने और खुद न पहनूंगा विदेशी को।
विदेशी वस्त्र को गिनकर मैं चुन २ कर जलाऊंगा॥
स्वदेशी पहिन कर खद्दर करूंगा देह को कन्चन।
शरीर और आत्मा को शुद्धकर फिर यां पै आऊंगा॥
(पर्दा का गिरना)

अङ्क

दूसरा

स्थान मन्दिर ।

(कर्मवीर को भगवान की पूजन करते दिखाई देना)

गाना ।

कर्म्मवीर—कृपा करो भगवान देहु वरदान स्वदेशी ।
भारत की होजाय आन औ वान स्वदेशी ॥
कृपा करो भगवान० ॥
ऊंच नीच घरवार स्वदेशी से सब शोभै ।
वाँकी छटा स्वदेशी दो ऐसा मन लोभै ॥
फिर से हो ऋषियों की यह सल्तनत स्वदेशी ॥
कृपा करो भगवान० ॥
वाना वही पुराना होवै, देशी भाषा ।
हो देशी सुविचार और हो देशी आशा ॥
देशी हो सब काम धर्म्म ईमान स्वदेशी ।
कृपा करो भगवान० ॥

भाषा ।

हे दीनदयाल ! हे कृपाल ! हे नाथ ! आप हमारे देश पर ऐसा उपकार कीजिये कि हमारी भाषा का हर एक विषय स्वदेशी हो । हमारी नसों में बहने वाला रक्त स्वदेशी

हो । हमारे देश का हर एक कानून स्वदेशी हो, हर एक के सिर सौदा स्वदेशी और जिनून स्वदेशी हो ।

छन्द-दिल में जो उठे आश तो वह आश स्वदेशी हो ।
सूझे जो इन आंखों को तो परकाश स्वदेशी हो ॥
धरती भी स्वदेशी हो तो आकाश स्वदेशी हो ।
जब प्रान निकल जावें तो यह लाश स्वदेशी हो ॥

(ठाकुर जी का साक्षात भगवान रूप में प्रकट होकर)

भगवान-हे वीर ! बुद्धिमान होकर भी तुम शास्त्र विधि के विपरीत कर रहे हो, तुम तो अपने आप स्वदेशी का वरदान मांगते हो और स्वदेशी से प्रीति कर रहे हो परन्तुः—

बने बैठे हो खुद तुम आप तो हामी स्वदेशी के ।
मगर वस्तर मेरे सारे बनाये हो विदेशी के ॥
अती पावन समझकर जिनपै गङ्गाजल चढ़ाते हो ।
तुम ऐसे शुद्ध ठाकुर को अपावन क्यों बनाते हो ॥

कर्म्मवीर-अति सूक्ष्म विचार है, सच मुच आज तक मैंने कभी इस बात का विचार भी नहीं किया । हमारे परमपूज्य ठाकुर जी ही विदेशी वस्त्रों में रहते हैं इस बात को कभी मन में नहीं धारा, अपना शरीर तो विदेशी से पवित्र किया परन्तु इनका बाना न उतारा ।

छन्द-जिसे हम शुभ्र समझते हैं अधिक गङ्गा के भी जल से ।
है पूजा जिसकी हम करते सदा दूध और कमल दिलसे ॥
है पहिनाते उसीको हाय कपड़ा गैर मुल्कों का ।
विदेशी सूत है जिसका बना नापाक मिल्लों का ॥

भगवान-हे कर्मवीर ! मुझपर तीनलोकका इतना भार

नहीं जितना कि इन अशुद्ध वस्त्रों का। देखो! मुझे तो श्रद्धा से सनी सामान्य भाजी ही प्रिय है, तुम मुझे विदेशी मखमल, कामदानी इत्यादि बहुमूल्य वस्त्र न पहिनावो। मेरी शक्ति को अमूल्य कामदानी की सारी से न लजावो। भारत का भगवान होते हुए मुझे विदेशियों के जघन्य अत्याचार के सामने न ले आवो। बस, निश्चय समझो कि मोटे खद्दर की एक मात्र धोती को ही मैं अमूल्य वस्त्र समझूंगा। स्वदेशी उत्तम पदार्थों के सामने विदेश की बढ़िया भेंट का मिट्टी समझूंगा।

छन्द-स्वदेशी शुद्ध है, भारी विदेशी में है नापाकी।
स्वदेशी वस्तु कंचन है बनी हो चाहे वह खाकी॥
नहीं परवाह विदेशी है अगर वस्तर हजारों का॥
गुलामी का नगर जञ्जाल है जाल उसकी तारों का॥

कर्मवीर-तो आज से मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपको सदा शुद्ध स्वदेशी वस्त्र ही पहिनाऊंगा और आपका यह पवित्र २ सन्देश घर घर पहुंचाऊंगा। मुझे अपनी जाति का विश्वास है कि आप चाहे जिस रूप रंग में हों, मंदिर में हों या मस्जिद में काशी में हों या काबे में, आपके वस्त्र स्वदेशी होंगे आपकी भेंट और आपका प्रसाद स्वदेशी हो।

छन्द-फेंक दो वस्तर विदेशी दूर सारा भार हो।
तुच्छ यह खद्दर की धोती लीजिये स्वीकार हो।

(विदेशी पीताम्बर उतार कर स्वदेशी धोती बांधना)

भगवान-नजर मेरी नहीं रुचती है पकवानों के खाने पर।
सदा मैं रीझता हूँ प्रेम के दो चार दानों पर॥
अगर मिल जाय श्रद्धा से मुझे धोती यह खद्दर की।

न थूकूं मैं विदेशी कीमती रेशम के थानों पर ॥
(भगवान् का फिर शालिग्राम के रूप में होजाना,
दूसरी तरफ भगवान और लक्ष्मी का खद्दर
के वस्त्रों से सुशोभित दिखाई देना)

भगवान-(बगल में) लक्ष्मी जी ! देखो मैं भक्तों का भार उतारा करता हूं परन्तु मेरे भक्त भी ऐसे हैं जो मेरा भी भार उतारते हैं, देश में बड़े २ पुजारी बड़े २ वेदज्ञ और शास्त्रज्ञ पड़े हैं परन्तु चार वेद और षट शास्त्र का सार, देश भक्ति, को इसी ने जाना है ।

छन्द-सूक्ष्म शुद्ध विचार भी भक्ती के रहते हैं इसे ।
निस्वार्थ सेवा देश की भी हमतो कहते हैं इसे ॥
ठीक नस पकड़ी है इसने शास्त्र के उपदेश की ।
मोटा खद्दर पहिन कर करता है सेवा देश की ॥

लक्ष्मी-हे स्वामिन् ! देश-सेवा-कर्म बड़ा कठिन है । इसमें बड़े २ चतुर पीछे रह जाते हैं, जब स्वार्थ के चमकीले मोती और बड़े २ ओहदों के मन मोहक चित्र बरबस हृदय मन्दिर में प्रवेश करने पर उतारू होते हैं तो देश सेवा भूल जाती है, देश भक्ति धूल होजाती है ।

छन्द-धन अगर मिल जाय तो त्यागें सभी धन्धा अभी ।
धन में है वह तड़प होता ज्ञान है अन्धा सभी ॥

भगवान—प्रिये ! आप यह क्या कह रही हैं, देश भक्त और लक्ष्मी की फांस ? अरे ! स्वदेश सेवक पदवी के लालच में पड़ कर कर्म पथ से भ्रष्ट होगा ? कभी नहीं ।

लक्ष्मी-तो आज कल के नर्म दल वालों को देखो, इन पदवी और उपाधि के मतवालों को देखो, जो कल तक

गर्म दलमें विचरते थे, स्वराज्यका दम भरतेथे उन्हें देखो।

छन्द-उच्च ओहदे उच्च पदवी और उपाधी के लिये।

छोड़ दी जातो की लागी अपनी व्याधी के लिये॥

भगवान-ऐसे निस्वार्थी अधम तो हर काल हर देश में होते रहते हैं, किसी निस्वार्थ देश भक्त की परीक्षा लो तो यह भ्रम दूर होजावै, और नही तो इसी कर्मवीर को ही कसौटी पर लगाओ।

यह सुख स्वप्न मे आनेगा, तो सुखी कैदखानों को।
मगर ठोकर से ठुकरा देगा पृथ्वी के खजानों को॥

लक्ष्मी-अच्छा तो देखिये मैं अभी अपनी लीला दिखाती हूं।

(भगवान का बगल में रहना, लक्ष्मी का आना
और कर्मवीर से मिलना।)

लक्ष्मी-हे महात्मन् ! प्रसन्न होकर अपने भाग्य की सराहना कीजिये। सभी दुख और दरिद्र को भूल जाइये, मैं तुम्हारे लिये सात समुद्रों के चुने हुए अनमोल रत्न लाई हूँ जिनका मूल्य यूरुप के समस्त खजाने भी नहीं चुका सकते।

(बहुत से रत्न दिखाना)

कर्मवीर (आपही आप) क्या प्रिय भारत की भाग्य ने पलटा खाया? (प्रकट) क्या इस द्रव्य को हमारे जातीय कोष के लिये आप लाई है?

लक्ष्मी-नहीं? केवल तुम्हारे निज के लिये, परन्तु इस शर्त पर।

कर्मवीर-वह क्या?

लक्ष्मी-यही कि लक्ष्मी और दरिद्र का साथ नही, आनंद और शोक एक साथ नही, इस देश भक्ति और जाति सेवा

नीच कर्म का त्याग करो, तो इस असंख्य धन का भोग करो, देखो और विचारो।

छन्द-उधर तो फाका मरती है इधर दौलत है दुनिया की।
उधर बन्धन है जिल्लत का इधर इज्जत है दुनिया की॥
उधर कांटों की शय्या है इधर फूलों की खुशबू है।
कहो दोनों में तुमको कौनसी स्वीकार वस्तू है॥

कर्म्मवीर-हे देवि ! यह नहीं, समस्त सन्सार का धन तुच्छ है मैं किसीभी मूल्यपर देश सेवाको नहींवेच सका !

छंद-कुबेर और इन्द्र के सारे खजाने को भी अगर ला दो।
अगर सागर का तुम सारा इकट्ठा करके जर ला दो॥
तो मैं ठोकर से ठुकरा दूंगा सारे लाखों लाखों को।
मगर दिल से निकालूंगा न कौमी दर्द अरमां को॥

लक्ष्मी-और देखो ! इसके साथही इस देश का सब से बड़ा ओहदा भी साथ लाई हूँ।

कर्म्मवीर-क्षमा कीजिये, मेरा दिल स्वयं बादशाह है, यह प्रलोभन उसे दो जो मिट्टी के ठीकरों पर मरता है और खाक शाह है।

छन्द-देश हित स्वीकार है मुझको गदाई विश्व की।
जाति की सेवा है मुझको बादशाही विश्व की॥

लक्ष्मी-देखो ! तुम्हारा कोमल शरीर विधाता ने इस मोटे झोटे खद्दर के लिये नहीं बनाया।

कर्म्मवीर-जिस खद्दर में हमारा प्यारा कृष्ण अपनी बाँकी झांकी दिखा रहा है, जिस खद्दर को हमारे पूर्वजों ने धारण किया है वही खद्दर हमको पवित्र करने वाला और स्वतन्त्रता देने वाला है।

खद्दर के साथ अगर आयें सहलूंगा लाख आपदों को।
खद्दर पर करूं निछावर मैं अतलश कमखाब, बाफदों को॥
भारत के चतुर लुटेरों से भारत को यही बचायेगा।
यह खद्दर ही मेरी स्वजाति को आप स्वराज्य दिलायेगा॥

(पर्दा का गिरना, भारत माता का प्रकट होकर दर्शन देना, शक्ति और धर्म का प्रवेश, धर्म का इशारे से अपना चमत्कार शक्ति को दिखाना, शक्ति का आश्चर्य करना, भारत माता का आशीर्वाद देना।)

भारत माता—दोहा—उपजेंगे जिस देश में ऐसे पुत्र उदार।
होगा निश्चय जानिये तौन देश उद्धार॥

(बाजों का बजना और पर्दा गिराना)
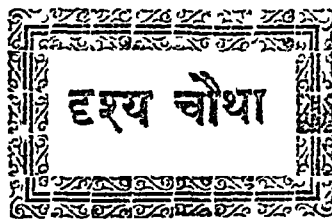
अङ्क दूसरा

स्थान—महल की बाहरी बैठक।

(राव साहब का आना खिताब (उपाधि) मिलने की खुशी में नाच कूद कर गाना, फौजी अफ्सर का आकर कुर्सी पर बैठ जाना और अखबार पढ़ना।)

राव साहब—

गाना।

मैं बना हूं रायबहादुर, चर्चा है मेरा घर घर।
सब करें बन्दगी झुककर, सब कहते हैं मुझको सर॥
मैं बना हूं रायबहादुर॥

अब खूब खुशामद कर के, अखबार भरूंगा उरके।
भाइयों को ठूंगा चरके, अब इङ्गलिश फैशन करके॥
मैं बना हूं रायबहादुर।
चर्चा है मेरा घर घर॥

वाह.वाह, वाह, इज्जत करो इज्जत मेरी इज्जत करो।
राय साहब की इज्जत करो, रायबहादुर की इज्जत करो।
सरकारने मेरी छिपी हुई शान पहिचानहै। यहीमेरीशानहै।

(फौजी अफसर को देख कर)

ओहो बन्दगी, गुडवाई, गुडमाईसर, गुडमाईसर। (झुक कर) अहसान, अहसान, अहसान, जनाब! मैं आप का इस टाइटिल के लिये बड़ा भारी अहसान मानता हूं, हुजूर को अपना बाप जानता हूं।

अफसर-थैन्क्यू, थैन्क्यू।

राव साहब-जनाब इस अखबार में देखिये, कहीं मेरा भी नाम है क्यों कि अच्छे अखबार की यही पहिचान है, मेरी यही शान है।

अफसर-ओ नू, टुम्हारा नाम सरकारी कागज़ों में आचुका है फिर अखबार को कौन पूछटा है।

राव साहब-हुजूर! मेरे भाई बन्दों को भी तो मालूम होजाय कि बेटा बुद्धू अब राव साहब बन गया है, अब उसकी इज्जत करो।

अफसर-वेल लेट इट गो, (इसे जाने दो) अच्छा अगर सरकार की टरफ से टुमको मेडाल दिया जाय तो टुम क्या करेगा।

राव साहब-मेडाल, मेडाल क्या कोई मेवा है हुजूर?

अफसर-ओ यू. नो, नो, मेडाल टमगा है टमगा।

राव साहब-अच्छा समझे, बिल्ला, थैन्क्यू, थैन्क्यू।

अफसर-सरकार के लिये टुम क्या करैगा।

राव साहब-जो सरकार हुक्म देगी वही करूंगा, जूतियां झाड़ूंगा, पेट के बल चल कर खुशामद करूंगा। विलायत से गोहुँ के मगाकर नजर करूंगा और दोनों वक्त हाजिर होकर सलाम करूंगा।

अफसर-इसके अलावा।

राव साहब-अपनी जागीर में बिल्ला लगाकर जाऊंगा अपना खूब रोब दिखाऊंगा, भङ्गी चमारों को जुलाहे लोहारों का भर्ती करके लाऊंगा और कारीगरी से दस्तकारी से छुड़ाकर आपका नौकर बनाऊंगा।

अफसर-आ यस-हम यही चाहटा है।

राव साहब-ओ यस-हम यही करेगा।

अफसर-अच्छा सरकार टुमको अपना वफादार समझ कर यह मेडाल डेता है।

(मेडाल देना)

राव साहब-(लेकर सलाम करके) बड़ी मेहरबानी, बड़ी मेहरबानी, बड़ी मेहरबानी। सरकार का बड़ा अह-सान है और यही मेरी शान है, हां, मगर जनाब इसमें कितने का सोना होगा।

अफसर-ओ यू इसके सोने की कीमट नहीं इज्जट की कीमट है।

राव साहब-तो यारो मेरी इज्जत करो क्योंकि यही मेरी शान है।

अफ़सर–और देखो मैं सरकार से तुमारे लिये आनरेरी मजिस्ट्रेटी की सिफारिश करूंगा। (जाता है)

रावसाहब–वाह, वाह, वाह यह बिल्ला! अहा हा हा हा।

छन्द–अब तो यह बिल्ला लगा कर शान मेरी बढ़ गई।
राव की गर्मी भी अब हन्ड्रेड से ऊपर चढ़ गई॥

बस, इज्जत करो यारो मेरी नहीं तो मेरे बिल्ले की इज्जत करो, नहीं तो तुम्हारे कौमी चूहों को चट कर जाऊंगा जो इज्जत नहीं करेगा उसे झट जेल में डलवा दूंगा, दो चार झूठे गवाह बना कर बग़ावत का मुकदमा चला दूंगा, क्योंकि अब सारा सरकारी अमला मेहरबान है और यही मेरी शान है।

(दो मुफ्तखोरे लाइट और नाइट का आना)

लाइट–गुडमार्निङ्ग रायबहादुर!

राव साहब–पे यू तुमको इज्जत करना नहीं आता गुड मानी!

लाइट–मिस्टर नाइट।

नाइट–यस मिस्टर लाइट।

लाइट–बिलकुल अक्ल का अन्धा है।

नाइट–तो गांठके पूरे बनो और खूब दोनों हाथोंसे लूटो

लाइट–जनाब टाइटिल होल्डर साहब!

रावसाहब–क्या आपको मेरे टाइटिलकी खबर मिलगई।

लाइट–वाह! अजी कहीं इज्जत किसी की छिपाये छिपती है यह तो हैजे की तरह तमाम मुल्क म फैल गई।

राव साहब–अब तो हिप–हिप–हुर्रे। (नाचता है)

नाइट–तो अब जलसा कराइये।

राव साहब-अजी अब तो उम्र भर डिनर खाइये ।

लाइट-और सुनिये मैं एक बड़े इङ्गरेजी अखबार में आप की तारीफ छपवा दूंगा ।

राव साहब-तब जो मांगो हाजिर ।

लाइट-ओनली फाइव हन्ड्रेड (सिर्फ पांच सौ)

(मिस मेरी का आना)

मिस-गुडमार्निङ्ग !

लाइट-गुड मार्निङ्ग ! डियर डारलिङ्ग ! देखो यह नया उल्लू फंसा है जरा आकर टाइटिल की मुबारकबाद दीजिये और इनाम लीजिये ।

मिस-राव साहब गुड मार्निंग ।

लाइट-हाय हाय मार डाला ! तेरे नखरे में पेरिस का मसाला ।

मिस-लीजिये सिगरेट नोश कीजिये ।

(सिगरेट का सिलवर केस देना)

राव साहब-(लेकर इधर उधर देखना) अजी मिस साहब ! इस सन्दूक की कुंजी भी लाइये ।

मिस-डेमफूल अजी जनाब यह विना चावी के खुलता है ।

(खोलना)

राव साहब-क्योंकि यह विलायती सामान है और यही मेरी शान है ।

(लडा सब को सिगरेट देती है और सब पीते हैं)

(राव साहब का नौकर मुरली का प्रवेश)

मुरली-हैं यह धुआं कहां से निकल रहा है ?

(एक २ के पास जाकर गौर से देखता है और जोर से

पुकारता है अरे दौड़ो आग लग गई आग)

(सब लोग घबड़ा कर इधर उधर दौड़ते हैं। फायर ब्रिगेड वाले पम्प लेकर आते हैं)

पम्प वाला—कहां है आग ?

मुरली—हुजूर इन तीनों के पेट में।

(फायर मैन पम्पसे तीनों पर पानी छिड़कता है)

सब—अरे बाबा कोई आग नहीं। अरे बाबा कोई आग नहीं।

(सब का भाग कर जाना)

मुरली:—

गाना

फ़ैशन ने की है ख्वारी, लूटी है इज्जत सारी ।
है जीने से बेज़ारी ॥ फ़ैशन ने० ॥
इज्जत से जीना यारो, सिगरेट मत पीना यारो ।
काला हो सीना यारो, लेना मत मोल बीमारी ॥ फै० ॥
छोड़ी है चाल पुरानी, देशी भी बने किरानी ।
भारत की कर दी हानी, उल्टी हैं रस्में जारी ॥
फ़ैशन ने की है ख्वारी ॥

पर्दा का गिरना ।

अंक दृश्य पांचवां दूसरा

स्थान—बन्दीगृह (जेलखाना)

(दो हिन्दू और मुसलमान नेताओं का जेल की एक कोठरी में शृङ्खला बद्ध दिखाई देना)

मुसलमान कैदी— गाना

करेगा इस जमाने में वही दिल कुछ असर पैदा ।
बजुज़ खौफे खुदा जिसमें न होगा कोई डर पैदा ॥
यह है कानून कुदरत का कि जब बेदाद बढ़ जाये ।
तो हो जाता है फिर कोई न कोई दाद-गर पैदा ॥
चुनांचे शाह लङ्का का सितम जब बढ़ गया हद से ।
तो राजा रामचन्द्र जी हुये दशरथ के घर पैदा ॥
सताया कंस ने भी जब प्रजा को और बुजुर्गों को ।
तो मथुरा में हुये थे कृष्ण बिल्कुल बेखबर पैदा ॥
मुझे चुपके से तरजे जिन्दगी गांधी की कहती है ।
लगे हैं हिन्द में होने फिर अगले से बशर पैदा ॥

हिन्दू कैदी—प्यारे मित्र ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम लोगों के कष्ट झेलने से ही हमारे देश और हमारी जाति का उद्धार होगा ।

छन्द—हुई यह एकता हिन्दू मुसल्मां में अगर पैदा ।
तो कटने के लिये लाखों मनुज होजायेंगे पैदा ..
जहां मर्दों का रुतबा अहेल दौलत से अधिकतर है ।

बजाये सीमोज़र के हम करें दिल और जिगर पैदा ॥

मुसल्मान कैदी-अब हिन्दू मुसलिन की एकतामें कोई कसर नहीं अब जो किसी के साथ बुग्ज़ और तअस्सुब करता है वह असल में ईमानदार आदमी नहीं है ।

हिन्दू मसजिद में मुसल्मां जायंगे मन्दिर में अब ।
अब दुआ मांगेंगे भारत के लिये हम मिलके सब ॥

हिन्दू कैदी-और सच पूछो तो दोनों में द्वेष के सिवाय कोई भेद भाव था भी नहीं, दोनों एक ही हवा में स्वांस लेते हैं दोनों की एक ही जन्म भूमि और एक ही मृत्यु स्थान है जो उनका धर्म है वह इनका ईमान है वह मक्के मदीने जाते हैं तो यह हरद्वार और काशी में नहाते हैं वह वज़ू करते हैं तो यह स्नान करते हैं वह ज़कात देते तो यह दान करते हैं वह कुरान पढ़ते हैं तो यह वेद और पुराण पढ़ते हैं ।

छन्द-है मुसलमानों का अल्लाह हिन्दुओं का राम है ।
उनका है रहिमान वह और इनका वह घनश्याम है ॥

मुसल्मान कैदी-और यह एकता का ही प्रभाव है कि हर एक मुल्क में भारत का चर्चा हो रहा है नीति की भाग्य जाग रही है और अनीति की सो रही है।

हिन्दू मुसल्मान-सचमुच ऐक्यता इन्द्रासन को हिला देने वाली एक महान शक्ति है जिसके प्रताप से ही पांडुवों ने अपने प्रबल अरि का संहार और वानरों ने लङ्कापति के अहङ्कार को चूर्ण, कर अपना राज्य और सीता का उद्धार किया ।

छन्द-चिड़ियां मिल जायें तो कर लेती हैं काबू बाज़ को ।

बस में करलें च्यूटियां भी मिलके यक गजराज को ॥
यक अकेला और दो ग्यारह मसल मशहूर है ।
ईश को भी यह, हमेशा, एकता मन्जूर है ॥

मुसलमान कैदी–हमारी दुआ है कि इस एकता पर अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले, बिना मेल से बिखरे हुये इन मोतियों को, मेल के धागे में पिरोने वाले, महात्मा गांधी को खुदा सलामत रक्खे ।

छन्द–किया वह काम उसने आशिके हुब्बे वतन होकर ।
कि होगा हिन्द में मशहूर वह नेपोलियन होकर ॥
निगाहे गैर गुलचीं की भला उस पर न क्यों होती ।
कि फूलों में चमन के वह रहा रश्के चमन होकर ॥

गाना–देवता देश में ईश्वर ने उतारा गान्धी ।
शान कर्त्तार का बेशक है नजारा गान्धी ॥
क्यों न प्राणों से जियादह हो प्यारा गान्धी ।
मादरे हिन्द की है आंख का तारा गान्धी ॥
है महम्मदअली नर्गिस तो केवड़ा शौकत ।
गुल्शने हिंद में है फूल हजारा गान्धी ॥
गैर के जुल्मोसितम शिकवा शिकायत सबकुछ ।
कर रहा मुल्क की खातिर है गंवारा गान्धी ॥
हमको कुछ डर नहीं तूफाने निलाखेजी का ।
डूबती नाव का है जर्बाक सहारा गांधी ॥
नाम लेते हैं तेरा हिन्दी सुबह उठतेही ।
बज रहा डङ्का है आलम में तुम्हारा गांधी ॥

(जेल के दारोगा का प्रवेश)

दारोगा–बदनसीब कैदियो ! क्या तुमको अपनी इस नौ-

जवानी और प्यारी जिन्दगानी पर कुछ भी दया नहीं आती

हिन्दू कैदी-छन्द-है जवानी देश सेवा में लगाने के लिये।

जिन्दगानी है वह भारत पर मिटाने के लिये॥

हो न गर इस जिंदगी से देश का कोई भला।

फिर है वह बेकार मरघट में जलाने के लिये॥

दारोगा-मगर तुम जानते हो कि तुम किस रास्ते पर जा रहे हो।

मुसलमान कैदी-हां जानते हैं अच्छी तरह से जानते हैं।

छन्द-हम अपनी कौम पै तन मन लुटाये बैठे हैं।

गदाये मुल्क हैं धूनी रमाये बैठे हैं॥

वतन परस्ती पै ईमान लाये बैठे हैं।

धनी हैं बात के आसन जमाये बैठे हैं॥

वह करके रहते हैं जो दिल में ठान लेते हैं।

हैं वह सपूत जो भारत पै जान देते हैं॥

दारोगा-मगर इस तरह पर तुम्हारे भारत का क्या भला होगा।

मुसलमान कैदी-हमारे कष्ट सहन करने से भारत का कष्ट दूर होगा।

छन्द-हम आन इसकी बचायेंगे, धन धाम अपना लगायेंगे।

गर काम यह देंगे नहीं, तो प्राण अपना लड़ायेंगे॥

दारोगा-तुमको देश सेवा का क्या फल मिलता है? दुख, दर्द, कैद और बदनामी।

मुसलमान कैदी—

छन्द-इन खिदमतों का पायेंगे उक्बा में हम सिला।

कुछ ग़म नहीं उदू है जो पीछे पड़ा हुआ॥

इन कैद के दुखों का हमें कुछ नहीं गिला।
इनसे तो बच सके न तिलक से महात्मा ॥

दारोगा-जेल में पड़कर तुमने देश का क्या कर लिया।

हिन्दू०-अपने जीवन को आदर्श बना दिया।

छन्द-घर बार को निसार के बस्ती को छोड़ के।
सुख सम्पती को छोड़के मुंह सुखसे मोड़ के ॥
बन्दी गिरह (गृह) में आके डेरा जमा दिया।
अगले बहादुरों का नमूना दिखा दिया।

दारोगा-देखो ! अभी तुम्हारे लिये आशा है अगर सातवर्ष के कठोर कारागार से छुटकारा पाने की इच्छा है तो केवल एक इलाज बाकी है।

मुसल्मान०-कौन सा इलाज।

दारोगा-माफी।

मुसल्मान-छिह, माफी ! हमने क्या खुदाई कानून को तोड़ा है, कि माफी मांगें, क्या हमने अपने धर्म और ईमान को छोड़ा है कि माफी मांगें माफी वह मांगेगा जो चोर, डाकू, व्यभिचारी या हत्याकारी होगा जिसके हाथों से कोई अत्याचार होगा।

दारोगा-तो इसका नतीजा मुसीबत और बदनामी है।

हिन्दू०-परन्तु इस से हमारे देश की भलाई और नेकनामी है।

दारोगा-देखो यह बेड़ी डाकू और हत्यारों के लिये तुम्हारे योग्य नहीं।

मुसल्मान०-बल्कि सच्चे देश भक्तों की यही पहिचान है, या हाथ में हथकड़ी होगी या गले में फांसी पड़ी होगी।

छन्द-हम हैं उन वीरोंकी सन्तति जिनके बलकी थाह नहीं।
हम हैं धीर वीर का वीरज कायर औ रूबाह नहीं॥
भारत के खातिर सह लेंगे बन्धन भी हम बरसों का।
यह नहिं बेड़ी, गहना है यह सच्चे महान पुरुषों का॥

दारोगा-कैद का नहीं तो इन सख्तियों का ध्यान करो, जो नीति और न्याय के विपरीत तुम पर कीजायेंगी उन कष्टों से तो डरो जो कैद के इलावा तुम को दिये जायेंगे।

मुसलमान०-लेकिन हम कष्टों से डर कर अपना धर्म छोड़ने वाले नहीं, देश भक्ति की प्रतिज्ञा तोड़ने वाले नहीं।

छन्द-दल बादल तूफानी सागर पर्वत की परवाह नहीं।
क्या है चीज मशक्कत हमको गोले खाकर आह नहीं

हिन्दु०-इन दुखों को झेलकर ही तो हमारा उद्देश पूर्ण होगा, अन्याइयों का गर्व चूर्ण होगा।

छन्द-जलाओ जितना चन्दनको वह उतनी ही महक देगा।
जलाओ जितना सोने को वह उतनी ही चमक देगा॥
दुखों से ही असीलों का मरतबा और बढ़ता है।
तपित होकर ही सूरज और भी ऊपर को चढ़ता है॥

दारोगा-तो तुम लोगों को इन दुःखों और क्लेशों का कुछ भी डर नहीं है।

मुसलमान०-डरेंगे वह जिनका ईश्वर और खुदा नहीं जिनका धर्म और ईमान नहीं, जिनके दिल में सच्चाई की चमक नहीं।

छन्द-क्यों डरें है हमारे साथ खुदा।
है अनाथों का वही नाथ खुदा॥

दारोगा-जिस खुदा पर तुमको इतना विश्वास है वह

कभी चल कर किसी को बचाने नहीं आता।

हिन्दु०-क्या कहा चल कर नहीं आता? अरे वह चल कर ही नहीं आता है वरन अपना गरुड़ वाहन त्याग कर नंगे पैरों दौड़ कर आता है। अहा!

छन्द-सभा में द्रौपदी की जिसने सारी को बढ़ाया था।
जो माता देवकी के वास्ते बन्धन में आया था॥
वही प्रहलाद के खातिर जो खम्भा चीर धाया था।
वह जिसने आनकर सीता को रावणसे बचाया था॥
वही कोई होकर लाज भारत की बचायेगा।
वही अब देश भक्तों के लिये कलियुग में आयेगा॥

मुसलमान०-हां आयेगा! जरूर आयेगा!

दारोगा-वह एक ढकोसला है भला बिना हाथ पांव का ईश्वर किसी को क्या बचायेगा।

मुसलमान०-बिना हाथ के वह हाथ दिखाता है यही उसके हाथ की सफाई है तुम जिसको वे हाथ समझते हो यह तुम्हारे हाथ की शक्ति उसी के हाथ की है जिस का तुम दुरुपयोग कर रहे हो।

छन्द-सिर्फ दो हाथ हैं जिनसे कि जालिम जुल्म ढाता है।
वह मजलूमों को लाखों हाथ से लेकिन बचाता है॥
वह शमशीरे जुल्म की धार का मुंह तोड़ देता है।
बिना हाथों सितमगर का वह पञ्जा तोड़ देता है॥

(भयानक ध्वनि के साथ जेल की दीवारों का फटना, दारोगा का डर कर भागना)

पर्दा का गिरना

अङ्क तीसरा

दृश्य पहिला

स्थान फुलवारी।

(फुलवारी में एक तालाब के किनारे बैठी हुई वीर बाला स्वदेशी सूत को सुधार कर आंटियां बना रही है उसकी दोनों सखियां राधा और चम्पा गाती हुई आ रही हैं)

गाना।

कैसी महात्मा ने यह बाँसुरी बजाई।
धुनि में मगन हो उसके सबने खुदी भुलाई॥
अपनी करो सहाई पैरों खड़े हो अपने।
मांगे कभी किसी ने स्वाधीनता न पाई॥
देशी खुराक खाना देशी पोशाक रखना।
भारतवरष की येही सच्ची है सेवकाई॥
बिन छूत छात सारे, भावों से भेंटते हैं।
बलिहार तेरी गान्धी क्या एकता सिखाई॥

राधा-चलो बहिन ! स्नान ध्यान और पूजा पाठ से निवृत्त होकर शीघ्र घर चलें। देर होने से माता जी क्रोध करेंगी।

चम्पा-पूजा किसकी ?

राधा-अपने इष्टदेव की।

चम्पा-बहिन पूजा करना है तो जननी जन्मभूमि का

ध्यान धरो। पुण्य और धर्म की इच्छा है तो देश हित कुछ दान करो, और देव चरण अनुराग है तो सच्ची देश भक्ति का गुण गान करो।

गाना।

नारी का सच्चा गहना, है काम काज में रहना।
चर्खा कातोरी बहना॥
नारी का०॥
शृङ्गार हार सब छोड़ो, सब साज विदेशी तोड़ो।
कंघा, शीशा को सब फोड़ो, अब तो साधु रीति से रहना
चर्खा कातोरी बहना॥
जब लग दुख में है भारत, छोड़ो तब लग निज स्वारथ।
चर्खा सच्चा परमारथ, गांधी का है यह कहना॥
चर्खा कातोरी बहना॥

राधा-ओहो! समझी यह उपदेश तूने धीरबाला से ग्रहण किया होगा।

चम्पा-क्यों न ग्रहण करूं? इस आर्य भूमि में जैसा आदर्श ललनाओं का पवित्र इतिहास है वैसे ही श्रेष्ठ गुणों का धारी धीरबाला के हृदय में निवास है।

छन्द-मन में उसके देश हित सुविचार का परवेश है।
उसकी पूजा और देवी देवता निज देश है॥

राधा—इस का पिता राव साहब तो निरा स्वार्थ का मित्र है।

चम्पा-परमात्मा की लीला विचित्र है, पिता समस्त औगुणों की खान और पुत्री गङ्गाजल समान पवित्र और गुण निधान है।

प्रह्लाद का जैसे जन्म हुवा यक पापी राक्षस के घर में।
या जैसे सुन्दर कमल खिलै यक गन्दे सड़े सरोवर में॥
परकाशित जैसे करता है अन्धेरे घर को एक दिया।
ऐसे पापिष्ठ पिता के घर उस देवी ने है जन्म लिया॥

(वीरबाला का गाना)

गाना।

ऐ मेरे प्यारे भारत के ग़म गुसार गान्धी।
ऐ नौनिहाल माता के जां निसार गान्धी॥
अपने सुख और दुख की परवाह नहीं है तुझको।
भारत के दुख से है तू सीना फ़िगार गान्धी॥
ऐ शान्ती की मूरत औतार सत्यता के।
देश और भाइयों के खिद्मत गुजार गान्धी॥
स्योराज का यह शेहरा तेरेही शिर बंधैगा।
उस दिन का कर रहे हैं हम इतिजार गान्धी॥
स्योदेश का ये मन्तर हमको सिखा दिया है।
भारत का कर दिया है तूने सुधार गान्धी॥

दोहा–धन्य धन्य वह आतमा जाहि देश अनुराग।
धन्य लगन जामें लगी देश भक्ति की लाग॥

राधा—(प्रसन्न हो कर) यह कोमल स्वर तो वीरबाला का है।

चम्पा–(आगे बढ़कर वीरबाला से) वीरबाला! क्या कर रही हो।

वीरबाला–विधाता के अद्भुत चरित्र देख रही हूं।
जननी जन्म भूमि की विचित्र दशा देख रही हूँ।
हमारा प्यारा भारतवर्ष तपस्या का भण्डार है।

हमारे देश में जगह २ पूजन धर्मका व्योपार है ॥
दयाधर्मका सुन्दर विचार इसी भारतमें रहता है।
गङ्गाऔरयमुनाका पावन प्रवाह इसीभारतमें बहताहै॥

राधा–सर्व सुख दाता गौ माता की पूजा इसी भारत में होती है।

वीर०–और महात्मा गान्धी जैसे कर्मवीर इसी कर्म्म भूमि भारत में जन्म लेते हैं।

राधा–यह तो सत्य है।

वीर०–तो ऐसे प्रख्यात भारतमें जन्म लेकर यदि हमने संसार को कोई अलौकिककार्य करके न दिखाया तो निश्चय अपने देश को लजायेंगी।

राधा–परन्तु अलौकिक कर्म तो महान पुरुषों से ही हुवा करते, हैं अबला तो अबला।

चम्पा–हां! और वह वीर शिरोमणि श्री शिवाजी और महाराण प्रताप सेही हुवा करते हैं।

वीर०–परन्तु यदि पृथ्वीराज को संयोगिता उत्साह न दिलाती और महाराणाप्रताप का साहस उन की योग्य पत्नी न बढ़ाती तो उनसे ऐसे २ काम न होते।

राधा–परन्तु क्वांरी कन्या क्या करे।

वीर०–वह किसी योग्य वर को वरे और क्या करे।

राधा–ओहो! अब समझी, (चम्पा से) इसके पिता रावसाहब तो एक बड़े फैशनेबुल बाबू से इस का ब्याह करने वाले हैं न।

वीर०–सखि! तुम ठीक कहती हो, परन्तु, स्मरण- रखना, मैं तो वीर धीर और साहसी पुरुष कोवरूंगी जिस

का आत्मा हर प्रकार से स्वाधीन हो जो देश भक्ति में परम प्रवीण हो. जिसको स्वदेशी से प्यार हो, जिस के जीवन का अपनो मात्र भाषा, देशी भोजन और स्वदेशी भेष आधार हो, वही मेरा भर्तार हो कि:—

जिसका हो फैशन स्वदेशी जिसके हों देशी विचार।
जिसका हो सरवस्व-सारा देश भारत पर निसार॥

(राव साहब का प्रवेश)

(तीनों सखियों का चकित होकर एक दूसरे का मुख देखना)

राव साहब—नहीं ऐ बाला! तुझे सर यस० पी० चन्द्र के साथ ही ब्याह करना होगा, क्या तू पिता की आज्ञा का पालन न करेगी।

वीरबाला—हां (लज्जित भाव से) पालन करूंगी परंतु अपना कर्त्तव्य भी अवश्य पालन करूंगी।

राव साहब—तो क्या मेरा अपमान करोगी। एक राव साहब का एक उपाधि धारी का अपमान करोगी।

वीरबाला—मैं, मैं आपका सन्मान करूंगी परन्तु साथ ही देश का भी ध्यान करूंगी, पिता जी! देखिये हमारी रामायण में लिखा है कि:—

चौपाई—जो बर, घर, कुल, होय अनूपा।
करिय विवाह सुता अनुरूपा॥

राव साहब—तो क्या वह घर अच्छा नहीं। वर अच्छा नहीं, आखिर अनुरूपा क्या नहीं, बोल।

(डाट के साथ)

वीरबाला—(उत्तेजित होकर) पिता जी! सुनिये, तो क्या आप, उस घर को जिस में स्वदेशी भोजन भाषा

और भेष का प्रचार नहीं अच्छा घर और जिस वर का नाम तक विदेशी उस वर को अच्छा समझते हैं, स्मरण रखिये कि:—

छन्द-दिल दूंगी उसे जो इसे सतकार करेगा।
 जो देश और कौम का उद्धार करेगा॥

राव साहब-तो क्या तुझे उसके टाइटिल, दौलत और इज्जत का ख्याल नहीं ?

वीरबाला-मान और धन कुछ माल नहीं, इन से तो आप मुझे एक गरीब और कंगाल खद्दर पहिनने वाले मजदूर को जिसके दिल में देश का दर्द है सौंप दें तो हजार गुणा अच्छा है और यही मेरी इच्छा है।

छन्द-बढ़िया हैं फूल लाखों इस देश के चमन में।
 हलताले मैंने,लेकिन, निश्चय किया है मनमें॥
 मुझको मिला न सच्चा गर देश भक्त कोई।
 आयू गुजार दूंगी सारी कुंआरपन में॥

राव साहब-(अपने आप) यह लो, अब तो घर ही बिगड़ा। हाय ! कहीं इस हठीली लड़की के चाल चलन को देखकर सरकार, न बिगड़ जाय ? और वह टाइटिल और मेडाल सब फेर ले, अब तो जो कुछ हो, इसका क्या बिगड़ता है मैं तो इसको उसी सर के साथ ब्याहूंगा, (प्रगट)देख बाला ! तू अपने इन फजूल ख्यालात को दिल से निकाल दे।

वीरबाला-तो मुझे अग्नि में झोंक दो, मिट्टी में मिला दो। सूली में चढ़ादो, परन्तु पिता जी ! एक गुलाम, निकम्मे पशु के पल्ले न डालो। जिस को अपने देश का

कुछ ध्यान नहीं जो भारत का सर्व नाश हो जाने पर भी विदेशी लज धज का दम भर रहा है जो मृत प्राय भारत के लिये छुरी तेज कर रहा है। उसे क्या आप वर समझते हैं।

छन्द–यह दिल का शीशा न पत्थर से चूर चूर करो॥
जनम दिया है तो मेरा जनम न धूर करो ॥
भलाई समझे हो मेरी अगर बुराई को।
तो इससे अच्छा है दे दो मुझे कसाई को॥

राव साहब–तो क्या सरकार और घर बार में मेरी बे इज्जती करायेगी।

वीरबाला–तो क्या मेरे जीवन को जो देश सेवा में अर्पण है अपने स्वार्थ और अपने मान के यज्ञ में बलिदान करना चाहतेहो। हाय पुत्री स्नेह का यह दृश्य है॥

छन्द–माता पिता के स्वारथ से भारत मर्यादा नष्ट हुई।
इन बातों से तो भारत की भावी सन्तान कुभ्रष्ट हुई॥

(आपही आप)

कन्या को स्वारथ पर वारें वह मात पिता अन्याई हैं।
नहिं उनको माता पिता कहो वह पापी और कसाई हैं॥

राव साहब–(अपने आप) मालूम होता है कि मेरे बुरे दिन आगये। यदि कहीं किसी सरकारी कर्म चारी को यह बात प्रकट हो गई तो अभी जो दो लाख का ठेका मिला है हाथ से निकल जायगा। क्या करूं जाऊँ इसकी मां से कहूं कि वह इसे समझाये बुझाये और सीधे रास्ते पर लाये।

(प्रस्थान)

वीर बाला-(आप ही आप) यदि मेरी माता होकर मुझसे मेरे देशानुराग को छुड़ायेगी तो क्या वह फिर मेरी माता कही जायगी।

छन्द-देश सेवा जो छुड़ाये वह मेरी माता नहीं।
 देश द्रोही जो बनाये वह मेरी माता नहीं॥

राधा-नहिन वीर बाला। माता पिता से पुत्री का क्या वश। वह जहां चाहेंगे। वहां ब्याहेंगे।

वीर बाला-यह कभी नहीं हो सकता, मैं अपने लिये स्वयं योग्य वर खोजूंगी। परन्तु ब्याह तब करूंगी जब मेरा प्यारा भारत स्वाधीन हो जायेगा। और मेरा स्वामी गुलाम नहीं। स्वतन्त्र जाति का रत्न होगा। और जबतक स्वराज्य नहीं मिलता खद्दर की एक धोती पहिन कर जातीय कोष के लिये भिक्षा मांग कर धन एकत्र करूगी। और अपनी बहिनों के हृदयों में स्वदेश भक्ति का अनुराग जाग्रत करूंगी।

छन्द-मैं देश अर्थ सूली को भी फूलों की शय्या जानूंगी।
 मैं देश हेत जङ्गल को भी-अपना प्यारा घर मानूंगी॥
 निज देश माल फेरूगी दशी गुदरी को नित धारूगी।
 जबतक स्वराज्यनहिंमिलताहंब्यांगीयहउग्रगुजारूंगी॥

दोनों सखियां-धन्य हो आदर्श ललना तुम धन्य हो।

गाना

तू है ना अबला नारी, तू है देवी सुकुमारी।
तुझ पर वारी बलिहारी, है धन तेरी महतारी॥
तू ना है०।

तुम सी हों सब अबलायें, भारत के दिन फिर आयें ॥
सब पूरन हों आशयें, हो दूर सभी लाचारी ॥
तू ना है अ० ॥
तुम बिन था भारत सूना, बन कर खुद आप नमूना ।
यश किया देश का दूना, यश गावेंगे नर नारी ॥
तू ना है० ॥
पर्दा का गिरना ।

अंक

तीसरा

स्थान—राव साहब का मकान ।

राव साहब की स्त्री मालनी चर्खा कात रही है और साथ ही गा रही है)

गांधी ने हवा चलाई चलता है घर घर चर्खा ।
अब बना देशियों का है यह सच्चा रहबर चर्खा ॥
अब जुल्म न होंगे हम पर मिल गया सहायक चर्खा ।
बेदाद हुए बहुतेरे अब मिला दादगर चर्खा ॥
इस चर्खे से ही अब तो भारत की लाज रहेगी ।
है मिलों, मशीनों से भी यह बढ़िया मेरा चर्खा ॥
यह निशि दिन काम रहेगा भारत की ललनाओं का ।
हाथों में शोभा देगा कङ्कन से बढ़कर चर्खा ॥
यह चक्र सुदर्शन बनकर जीतेगा समर धरम का ।

बाहर नहिं जाने देगा भारत का धन अब चर्खा ॥

(राव साहब का प्रवेश)

राव साहब-(आप ही आप) हैं यह क्या ? अरे यह तो घर का घर बिगड़ गया ! बेटी बिगड़ी सो बिगड़ी अभी तक उसी की फिक्र थी अब बीबी भी बिगड़ गई। मेरे इस नये टाइटिल होल्डरके घर में यह पुराने फैशन का दकियानूसी चर्खा, सख्त बेइज्जती, सख्त हतक, सख्त, अपमान, सख्त तौहीन, जब डाक्टर खुद ही बीमार है तो दवा कौन करेगा ? क्या कहूँ ? मेरे तो शिर से पांव तक आग लग जाती है जब मैं देखता हूं, कि मेरी बीबी, राव साहब की बीबी, बिल्ले वाले की बीबी, उम्मेदवार अफसर की बीबी स्वदेशी चर्खा कात रही है।

(प्रकट) ऐ यू डेम यह क्या बीबी ?

मालती-(राव साहब की बेढंगी पौशाक देख कर) और यह क्या स्वामी ?

राव साहब-यह तरक्की का सामान है और यही मेरी शान है मगर यह क्या है डेम ?

मालती-यह भारत उन्नति का हथियार है और इसी से देश और जाति का उद्धार है ।

राव साहब-ऐ यू तेरे देश और जाति की ऐसी तैसी ले अन्टिसगैन की बीबी होकर चर्खा, सरासर इन्सेल्ट बीबी ! कोई खुफ़िया पुलिस वाला अगर सुन लेगा कि मेरी बीबी देश और जाति का नाम लेती है उसकी तरफ-दारी करती है तो मेरा टाइटिल, मेरा बिल्ला, मेरा जागीर सब छिन जायगा ।

मालनी-यदि देश और जाति के लिये सब छिन जायगा तो कोई चिन्ता नहीं, चर्खा कात कर गुजर करेंगे खादी जिन्दगी वसर करेंगे।

राव साहब-ऐं यू डेम क्या यही मेरी शान है ?

मालनी-जी नहीं! आपकी शान यह नहीं हो सकती आपकी शान तो सरकार दरबार में हां हुजूर करना है।

राव साहब-अगर तू इस चर्खे का बाईकाट नहीं करेगी तो मैं तुझे बाईकाट कर दूँगा।

मालनी-हां अब इस पागल की दशा में स्त्री की जरूरत भी क्या है ?

राव साहब-जरूरत तो जरूर है मगर इस पुरानी टिम टिम की नहीं, नये सज धज की नई नवेली की, जो चूट गाट (लाइक) पसन्द करती हो लवेण्डर और पाउडर र मरती हो, आज कल ऐसी बीबी का भाव है और यही री शान है।

(कञ्चन का इंग्लिश ड्रेस में बेग और छाता लिये मुसकराते हुए प्रवेश)

कञ्चन-डियर डारलिङ्ग!

राव साहब-ओ माई डियर वेल कम (हाथ मिलाता है)

मालनी (आपही आप) हैं यह कुलटा भी क्या आर्य ललना है? क्या यह भी किसी आर्य पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है क्या यह भी सती शिरोमणि सीता और सावित्री की सन्तान है आह ऐसी अधमा, ऐसी भ्रष्ट। हे ईश्वर! इसे सुमति प्रदान कीजिये आर्य जाति का उद्धार कीजिये॥

राव साहब-डियर कञ्चन देखो। मैं अब इस पुरानी

बीवी का बाईकाट करता हूं और तेरे साथ दिन पाट करता हूँ।

मालती–वाह, और यह मेरी माता का दिया हुवा दायज !

राव साहब–वह जब लाया था तब स्वदेशी डेम फूल था

मालती–और अब विदेशी।

राव साहब–अब ऐंग्लो इण्डियन हूं दहेज के कायदे और देशी शादी के रिवाज का पाबन्द नहीं अब तुम्हारे साथ बात करना भी पसन्द नहीं । क्योंकि तुम तहजीब नहीं जानती–(कञ्चन से) डियर।

कञ्चन–सर,   (भेटना और प्यार करना)

मालती–(कञ्चन से) क्यों री ! तुझे शर्म नही आती, एक पर पुरुष के साथ उसकी सह धर्मिणी के होते हुये प्यार कर रही है। भारत ललना होकर देशी चाल, ढाल का तिरस्कार कर रही है। सती सीता और सावित्री के नामको बदनाम कर रही है। जो एक वेश्या भी नहीं कर-सकती वह काम एक ग्रहस्था हो कर तू कर रही है।

छन्द–अपने कुल के वास्ते तू यक कलङ्की नार है।

तेरे माता पिता को और जाति को धिक्कार है॥

कञ्चन–(आपही आप) हैं ! मेरे कर्म से मेरे माता और पिता भी धिक्कार के योग्य हो गये, जाति और वन्श भी कलङ्कित हो गया। हा बाहर से नहीं शरीर से नहीं, आत्मा से पाप की दुर्गन्ध आती है। (प्रकट) हे देवि ! मेरे माता पिता को धिक्कार न दो, उनका कोई अपराध नहीं, जाति और वन्श की कोई लाग नहीं, मेरे

मुँह पर थूको। मैं ही कुल कलङ्किनी स्त्री समाज को ल-जाने वाली हूं। मैं ही इस विदेशी लिबास प्रियता के मदसे अन्धी होकर अपने देव स्वरूप व्याहता पति का त्याग कर घोर पापकी भागिनी और रौरव नर्क की अधिकारिनी हुई हूं। हाय! मैं ही अपराधिनी हूं। ईश्वर की, धर्म की और मात्र भूमि की मैं ही अपराधिनी हूँ। हे देवि-दया करो। हाय, बड़ी पीड़ा, हृदय दग्ध हो रहा है। बचावो, बचावो धर्मोपदेश सुना कर मार्ग पर लावो।

मालती-बस-बस, बेटी, बस, तेरे लिये तेरे कुकर्मों के लिये यही यथेष्ठ प्रायश्चित्त है।

राव साहब-(मालती से) ओ डेम, देख, मैं खुफिया पुलिस में रिपोर्ट कर दूंगा कि आप तो बिगड़ही गई मगर साथही अब औरों को भी बिगाड़ रही है।

मालती-अरे मूर्ख बिगाड़ती नहीं, सुधारती हूं उपदेश के मन्त्र से विदेशी विषैले सर्प का विष झाड़ती हूं।

राव साहब-मगर यह सरकार से बग़ावत है।

मालती-क्या, क्या अपने देश के भाषा, भाव भोजन, भेष, का उपदेश देना बग़ावत है। यदि ऐसा है तो अङ्गरेज़ जाति भी अपने बादशाह के प्रति बाग़ी हैं क्योंकि वह भी अपने ही देश का खाते पीते और पहिनते हैं।

कञ्चन-प्यारी मां, आज से तू मेरी गुरू-जिसने स्वदेशी का गुरु मन्त्र देकर सच्ची भारत महिमा का धर्म बतला कर शुभ मार्ग दिखलाया, उसकी मैं चेली-आज से मैं इस विदेशी फैशन का त्याग करती हूं, ला, एक स्वदेशी खद्दर की धोती ला कि इस अपवित्र पोशाक को

त्याग कर शरीर को शुद्ध करूं । त्याग-त्याग-त्याग । (खद्दर की धोती पहनना) हा-प्यारे-कहां हो ! एक बार दर्शन दो।

(सहसा रनछोर का प्रवेश)

रनछोर-तुम्हारे सामने।

कञ्चन-(पैरों पर लोट कर) स्वामिन् क्षमा करो ! इस दासी को क्षमा करो ! (रोती है)

रनछोर-प्यारी आज का दिन बड़ा ही सुखकर है रोने का नहीं उठो ! (उठती है) आज अपनी सहधर्मिणी को स्वदेशी रङ्ग में देख कर मेरे हर्ष की सीमा नहीं, परमात्मा तुमको सुमति देकर कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ करे यही आशीर्वाद है ।

राव साहब-ओ यू-भड़भूजे क्या देशी २ करता है ? राव साहब की इज्जत नहीं करता ।

रनछोर-अरे देश द्रोही ! तेरे जैसे राव साहबों ने ही भारत को सत्यानाश किया है, तुम लोग मिथ्या मान के भ्रम में पड़कर केवल देश के साथ ही देश द्रोहिता नहीं करते वरन सरकारको भी धोखा देने का पाप कमा रहे हो

छन्द-अन्त कर डाला है तुमने पाप फैलाते हुये ।
पाप भी डरता है तेरे पास अब आते हुये ॥

राव साहब-(सोचकर) तुम सच कहते हो मैं भी जब आंखें बन्द कर अपने अन्तरात्मा पर दृष्टि डालता हूं तो घोर अन्धकार पाता हूं और विश्वास होता है कि मैंने अपना लोक और परलोक दोनों मिथ्या मान पर बिगाड़ डाला है ।

छमद्‌-रोग से या मृत्यु आये रोग बिन मरते हैं सब।
बारी बारी आगे पीछे एक दिन मरते हैं सब॥
धन्य पर उनको अमल करके धरम संदेश पर।
मर मिटें प्रानों से जो इस प्यारे भारत देश पर॥

रनछोर—तुम अपने कर्म से पछिताये तो समझो तुम्हारे अच्छे दिन आये, अब अपना नया जन्म समझो और नेकी पर कमर बांधो।

राय साहब—मैंने अपनी दुष्टता वश जिन औमी लीडरों पर झूठे मुकद्दमे चलाये, चुगली खाकर भाइयों को जेल में भरवाये आज उन सब से क्षमा मांगता हूं धन्य है उस महात्मा को जिसने तुम्हारे जैसे देश भक्त बना कर मेरे जैसे अपराधी का जीवन सुधार किया।

गाना—हमको तू है यह दिलो जानसे प्यारा गांधी।
प्यारा प्यारा है वह सब का है सहारा गांधी॥
मादरे हिन्द ये हर वक्त दुआ देती है।
और भी तेरा चमक उट्ठे सितारा गांधी॥
तूने बर्बाद से आबाद किया है हमको।
तूने जीने का दिया हमको सहारा गांधी॥
काम मुश्किल था जो आसान किया है तूने।
तूने इस बिगड़ी हुई को है सुधारा गांधी॥
हम तो गफलत के सबब हो ही गये थे बर्बाद।
तू न होता तो कहां होता गुजारा गांधी॥

(पर्दा का गिरना)

अङ्क तीसरा — दृश्य चौथा

स्थान—स्कूल ।

(स्कूल मास्टरों और विद्यार्थियों का समागम ।
वीरबाला का खद्दर की धोती पहिने हाथ में खद्दर
की झोली लिये प्रवेश करना)

वीरबाला—(आपही आप) विद्यार्थी अपना पाठ पढ़लें तो मास्टर जी से कह कर कुछ चन्दा एकत्र करूं ।

(एक तरफ दीवार में आड़ देकर खड़ी होती है)

मास्टर—क्या सब लड़के अल्जेबरा के सवाल निकाल लाये ?

प्रेमनाथ—नहीं मास्टर जी मैं माफी चाहता हूँ ।

मास्टर—देखो प्रेमनाथ तुम हर रोज बहाना करके टाल देते हो मैंने सुना है कि तुम अपना फालतू समय अखबार पढ़ने में निकाल देते हो, यह बात स्कूल कायदे के बिल्कुल उल्टी है ।

प्रेम०—क्या अखबार पढ़ना स्कूल कायदे में नहीं है ? जिन अखबारों से हम को अपने दूरस्थ देश भाइयों का हाल मालूम होता है, जिन अखबारों द्वारा राजनीतिक दशा का पता चलता है, जिन अखबारों के प्रकाश द्वारा सरकारी कर्मचारियों की कार्यवाही से अन्धकार का पर्दा दूर होता है, जो अखबार देश भक्ति का प्रचार और नव

युवकों का उद्धार करते हैं क्या उनका पढ़ना नियम के विरुद्ध है।

मास्टर–लेकिन तालिबइल्मी के जमाने में अखबार पढ़ने से दिमाग़ भ्रष्ट और स्मर्ण शक्ति नष्ट होजाती है।

प्रेम०–तो क्या अल्जेबरा और ज्यामेटरी से दिमाग़ पवित्र और स्मर्ण शक्ति प्रचण्ड होजाती है। अरे इस वेढब अङ्गरेजी शिक्षा से हमारा जीवन कौड़ी मोल का भी नहीं रहता, बिल्कुल मुर्दा हो जाता है।

छन्द–कारबारी न कोई काम चला सकते हैं।

बोझ भी शर्म के मारे न उठा सकते हैं॥

वन में गायें भी न हम अपनी चरा सकते हैं।

अपने खेतों में न हम हल ही चला सकते हैं॥

मास्टर–तुम अल्जेबरा और ज्यामेटरी का लाभ क्या समझ सकते हो।

प्रेम०–मैं केवल यही समझ सकता हूं कि बनिये की दूकान पर बैठा हुआ आठ साल का लड़का हिसाब किताब में अल्जेबरा पढ़े हुए ग्रेजुयटों को मात कर देता है यहां अभी अर्था विठलाया जाता है और वहां हिसाब होकर दाम चुकता।

मास्टर–प्रेमनाथ! देखो तुम बड़े गुस्ताख हो, और देखो यह सरकारी स्कूल है यहां खद्दरकी टोपी और खद्दर के कपड़े पहिनकर आना सरासर खिलाफ कानून है।

प्रेम०–तो क्या सरकारी स्कूल हमको अपनी स्वदेश वस्तु से घृणा करने की आज्ञा देता है।

मास्टर–मगर इस से सरकारी अफसर नाराज हो जाते हैं।

प्रेम०-मास्टर साहब ! बड़े शोक की बात है। यह अफसर की नहीं ! आपकी आपके आत्मा की कमजोरी का चिन्ह है. जो अङ्गरेज अफसर खुद ही अपनी अङ्गरेजी वस्तु अङ्गरेजी पोशाक अङ्गरेजी भोजन और अङ्गरेजी भाषा पर जान देता है। भारत में रहते हुये भी अङ्गरेजी चीजों को हर एक कीमत पर मोल लेने में तय्यार है क्या वही अङ्गरेजी अफसर देश भक्ति का उत्साह रखते हुए भारत वासियों को स्वदेशी से प्रेम देख कर नाराज हो सकता है। और यदि है. तो यह बड़ी भूल है।

मास्टर-तो भी सरकारी स्कूल में पढ़ते हुये कम से कम गान्धी कैप तो जरूर उतार देना होगा।

प्रेम०-वह किस लिये ?

मास्टर-इस लिये कि यह असहयोग की निशानी है।

प्रेम०-तो मैं स्कूल छोड़ सकता हूं. अपने भविष्य की चिन्ता छोड़ सकता हूं। आहार छोड़ सकता हूं, परन्तु इस टोपी को जो मेरे शिर का एक पवित्र अंग है नहीं छोड़ सकता।

छन्द-छोड़ दूंगा जर जवाहिर छोड़ दूंगा शान को।
पर न छोड़ूंगा कदाचित मैं स्वदेशी आन को॥

मास्टर-अच्छा ! तो तुम स्कूल से चले जावो।

प्रेम०-बहुत अच्छा। (प्रस्थान)

वीरबाला-(आपही आप) धन्य है। प्रकट-

छन्द-शुद्ध सुन्दर अति मनोहर धन्य वन्देमातरम्।
मृदुल सुख प्रद मोदकारी धन्य वन्देमातरम्॥

कान्ति, बल, भय शान्ति दाता मन्त्र वन्देमातरम् ।
मति प्रदायक अति सहायक मन्त्र वन्देमातरम् ॥

(वन्देमातरम् कहते हुये प्रेमनाथ का बाहर आना)

वीर०-(आपही आप) अहा जिसकी मुझे खोज थी वह मिल गया मेरे अनुरूप वर मिल गया, (प्रेमनाथ से) ठहरो वीरकुमार, ठहरो ।

प्रेम०-हे बाले ! तुम कौन ?

वीरबाला-देश की भिखारिनी, भारत की सेविका, तुम्हारी वीरता और धीरता को देखकर मैंने संकल्प किया है कि स्वराज्य मिल जाने पर तुम को अपना सर्वस्व दे दूंगी, और जब तक स्वराज्य नहीं मिलता देश सेवा करने को तुमसे प्रतिज्ञा कराऊंगी ।

प्रेम०-वीरबाला-देश सेवा का व्रती तो मैं पहिले ही से होचुका हूँ, परन्तु मैं एक निर्धन का लड़का हूं तुमको मुझ से ब्याह करने में क्या सुख मिलेगा ।

वीरबाला-परन्तु तुम्हारा मन तो देश-भक्ति के धन से धनी है ।

छन्द-खोज थी जिस रत्न की सो भाग्य से अब मिल गया।
मिल गया सर्वस्व तुम जैसा पती अब मिल गया ॥

गाना—जगत में स्वर्ग हमारा देश ।
मिटायें मिलकर इसका क्लेश ॥ जगत में० ।
पूरब में गंगा यमुना और ऋषियों का ऋषिकेश ।
उत्तर में मेरु हिमालय दक्षिन में रामेश ॥ जगत में० ॥
हिरदय मे कैलाश विराजै, पश्चिम में अवधेश ।

सारे द्वीपों से है भारत उत्तम और विशेष ॥
जगत में स्वर्ग हमारा देश ॥
(दोनों का प्रतिज्ञा बद्ध होना)
पर्दा का गिरना ।

अङ्क दृश्य पाचवां तीसरा

स्थान—विलायती वंद कार्यालय का एक भाग ।

(मिस्टर मुनरो, जोन, लेग और चेज़ का समागम धर्म और शक्ति का प्रवेश ।

धर्म-(बग़ल में शक्ति से) क्यों देखा अपना परिणाम ।
छन्द-एकही थपकी में हैं रक्षक तुम्हारे सोगये ।
एकही धक्के में सारे कारखाने रोगये ॥
तेरा दौरा होचुका अब मेरी बारी देखना ।
देखली अपनी भी ताक़त अब हमारी देखना ॥

(मिस्टर लेग का मुनरो को इन्डियन स्कूल की एक टेक्स्ट बुक दिखाना)

लेग—देखिये माईडियर, इन्डियन स्कूलों में ऐसे कोर्स होते हुए भी आप अपनी नेशन और सरकार पर ग़लत पालसी का क्लेम कैसे लगा सकते हैं, क्या इन किताबों से हिन्दोस्तानियों के दिमाग़ कभी अच्छे हो सकते हैं ।
छन्द—किताबें यह तो उनको देश सेवा से हटाती हैं ।
गुलामी और ग़रीबी का उन्हें यह गुर सिखाती हैं ॥

मुनरो–तो फिर यह क्या वजह है कि वह गुलामी के आराम को आजादी की तकलीफ पर बलिदान कर रहे हैं अपनी स्वदेशी चीजों का सन्मान कर रहे हैं, देखिये यह उनकी देश भक्ति का नतीजा है कि हमारा करोड़ों का माल रुका पड़ा है लास (घाटा) लास ।

अलास (अफसोस)

जोन–माईडियर ! यह सब काररवाई वहां के एक मशहूर लीडर गान्धी की है, कि इण्डियन लोगोंने विदेशी माल की चाह को दूरकर दिया है, वह हमारी तालीमसे सबको नफरत दिला रहा है और सब को देश भक्त बना रहा है।

लेग–लेकिन यह बात सोचने की है कि अगर वह इसी तरह स्वदेशी का प्रचार करते जावेंगे, तो हमारे सब कारखाने बन्द हो जावेंगे और मजदूर लोग भूख से मरने लगेंगे ।

मुनरो—तो फिर इसका इन्तिजाम बहुत जल्द होना चाहिये ।

लेग–सरकार अपनी पूरी ताकत से काम ले रही है, स्वदेशी प्रचार करने वाले बागी और विदेशी का त्याग करने वाले दुश्मन और बलवाई माने गये हैं और वह पकड़ पकड़ कर कैदखानों में भरे जा रहे हैं।

जोन–लेकिन हमको भी चुपके होकर न बैठना चाहिये, कोई न कोई चाल जरूर चलना चाहिये ।

मुनरो–देखिये एक बात मेरे दिमागमें आई है इन्डिया एक गरीब मुल्क है अगर हम अपना माल सस्ता कर दें तो वह जरूर स्वदेशी को छोड़कर हमारा माल मोल लेंगे।

(इङ्गलैंड निवासी एक भारतवासी का प्रवेश)

भारतवासी—अब वह दिन गये जब खलीलखां फाख्ता उड़ाया करते थे, जब आप लोग खिलौनों से हम लोगों को भुलाया करते थे अब हिन्दोस्तानी वह हिन्दोस्तानी नहीं जिनके दिल और दिमाग़ दोनों विदेशी थे अब तो भारत में सचमुच सतयुग का आगमन हो रहा है, भारतीय आकाश में स्वदेशी का झण्डा लहरा रहा है।

छन्द—अब न भूले से खरीदेंगे विदेशी माल को।
अब वह अच्छी तरह से समझे तुम्हारी चालको॥
मरना और जीना स्वदेशी हिन्दियों का हो गया।
जा बजा भारत में है खद्दर का चर्चा हो गया॥

लेग—तो क्या अब वह विलायती माल नहीं खरीदेंगे।

भारतवासी—कभी नहीं बिल्कुल नहीं अब वह बिस्कुट और केक की जगह स्वदेशी चपाती खायेंगे, अङ्गरेजी शराब की जगह अब वह गाय का दूध ही उड़ायेंगे, लट्ठे और मारकीन की जगह स्वदेशी खद्दर के ही गुण गान करेंगे, और मशीनों की जगह स्वदेशी चर्खा का ही मान करेंगे।

छन्द—वह हवा फैली है हर दिलमें स्वदेशी दर्द है।
आज भारतवर्ष का हर एक बच्चा मर्द है॥
अहद खद्दर पहिनने का सबने मिलकर कर लिया।
कारखानों का यह इंजन इस लिये ही सर्द है॥

लेग—तो क्या अब वह किसी तरह से पजेमें न आवेंगे।

भारतवासी—नहीं अब वह तीन पाई का एक गज लटठा खरीदने को भी विदेशी मण्डी में न आवेंगे।

लेग-तो हमारे तरफसे उनके दिलों में इतनी दुश्मनी।

भारतवासी-नहीं दुश्मनी नहीं बल्कि वह तो इन्टर नेशनल सम्बन्ध चाहते हैं लेकिन स्वराज्य लेने के लिये वह विदेशी चीजों का त्याग जरूरी समझते हैं जिस समय वह स्वराज्य प्राप्ति करने में समर्थ होंगे और अपने कला कौशल का पुनरोद्धार कर लेंगे तो दुनिया की व्यापारी मण्डियों से माल का अदल बदल आवश्यकतानुसार जरूर करेंगे लेकिन अब वह आप लोगों की पालसी को खूब समझ गये हैं।

लेग-तो क्या वह खद्दर से ही स्वराज्य ले लेंगे। देशी विदेशी चीजों और पर राज्य व स्वराज्य से क्या संबंध।

भारतवासी-जी बहुत गहरा सम्बन्ध है, जिस को अपने दिल में आप भी अच्छी तरह से समझते हैं। और भारतीयों का तो धर्म्म ही निराला है, सुनिये।

छन्द-नाज़ है तुमको मशीनों पर उन्हें ईमान पर।
आप मरते शान पर हैं और वह हैं आन पर॥
लेती आई और क़ौमें कर्म ही से राज को।
भारती लेंगे मगर अब धर्म से स्वोराज को॥

धर्म-और वह दिन समीप ही है।

छन्द-हो चुकी शक्ती की शक्ती धर्म्म की बारी है अब।
इस लिये आश्चर्यसा यक हिंद पर तारी है अब॥

(पर्दा का बदलना)

(भारत माता का स्वराज्य का झन्डा लेकर प्रकट होना।

भारत माता— वन्देमातरम् (प्रणाम करता है)

पर्दा का गिरना।

समाप्त।

सूचना।

हिन्दी में "गांधी जीवन में गीता रहस्य" छप रहा है। पुस्तक डवल क्रौन १६ पेजी साइज़ में सफेद बढ़िया काग़ज़ में बड़ी सुन्दरता तथा उत्तमता से तय्यार होगी। जो सज्जन लेना चाहें पत्र द्वारा सूचना दें। वरन पीछे पछताना पड़ेगा। मूल्य केवल लागत मात्र रक्खा जायेगा।

पताः—

ला० लाजपतराय साहनी।

लोहारी गेट (लाहौर)

लाजपतराय पृथवीराज साहनी पबलिशर लाहौर

समाज संगठन

बाबू भगवानदास एम० ए०

समाज संगठन

काशीके सुप्रसिद्ध विद्वान

बाबू भगवानदासजी एम० ए० कृत

"सोशल रीकंस्ट्रक्शन" का भाषान्तर

भाषान्तरकार—

छविनाथ पाण्डेय

प्रकाशकः—

भारत बुक डिपो

अलीगढ़

प्रथम बार १०००] १९८० [मूल्य ॥≈)

प्रकाशक—
गंगाशरण शर्मा
भारत बुक डिपो
अलीगढ़
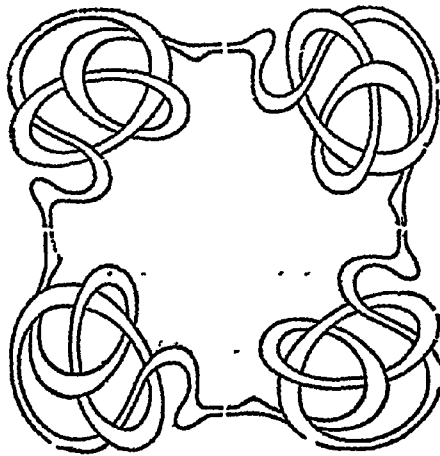
मुद्रक—
किशोरीलाल केडिया
"वणिक् प्रेस"
१, सरकार लेन
कलकत्ता।

स्नेहाञ्जलि

विद्यानुरागी, सहज प्रकृति, सरल हृदय, पुस्तक व्यसनी मेरे उदार मित्र बाबू बजरंगलालजी लोहियाकी

सेवामें

प्रियमित्र,

तुमने बड़े प्रेम, अनुराग और श्रद्धाके साथ इस पुस्तकका अनुवाद करवाया था। तुम्हारी प्रबल इच्छा थी कि तुम स्वयं इस पुस्तकको प्रकाशित करो। यह तुम्हारी थी। पर अनेक कारणवश तुम अपने मनोरथको पूर्ण नहीं कर सके। दूसरे बागमें जाकर वह फूल खिला। पर मैं इसे तुमसे अलग नहीं करना चाहता। इसलिये इसे तुम्हींको सौंपता हूं। आशा है इसका उचित आदर करोगे और मुझे बाधित करोगे।

तुम्हारा सहजस्नेही—

छविनाथ

अनुवादकका वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक स्वनाम धन्य काशीके सुप्रसिद्ध विद्वान बाबू भगवानदास लिखित "सोशल रीकन्स्ट्रक्शन (Social reconstruction) नामी पुस्तकका अनुवाद है। जिस समय यह पुस्तक अङ्गरेजीमें छपकर प्रकाशित हुई और इसे देखनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ उसी समय मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि अगर यह पुस्तक हिन्दीमें निकली होती तो समाजका बड़ा उपकार होता। उस समय मैंने यही सोचकर सन्तोष किया कि जब एक विचार लिपिबद्ध हो चुका है तो भाषान्तर होते देर न होगी। भाग्यवश यह काम मुझे ही करना पड़ा। उसी पुस्तकका यह अनुवाद "समाज संगठन"के नामसे आपलोगोंकी सेवामें लेकर उपस्थित हो सका हूं। इस छोटी पुस्तकमें लेखक महोदयने अपने सामाजिक खोज और अनुभवोंको शृङ्खलाबद्ध करके रख दिया है और दृष्टान्तोंद्वारा सिद्ध किया है कि संसारभरका और विशेषकर भारतका सामाजिक संगठन इतना ढीला पड़ गया है कि उसके जीर्णोद्धारकी नितान्त आवश्यकता है और कुछ उपाय भी बतलाया है।

साधारण बुद्धिसे विचारकर भी हम कह सकते हैं कि जो प्रकार बाबू भगवानदासजीने बतलाया है उसको यदि कार्यक्रममें

लाया जाय, उसपर आचरण किया जाय तो यह देश एक बार फिर पुण्यभूमि बन सकता है। और उसी भारतके लिये देवता-लोग भी तरसते रहे होंगे।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो हमारी इस अधोगतिका मूल कारण क्या है? कोई विदेशी शासन बतलाते हैं और कोई कुछ। पर वास्तविक कारण यही है कि हमलोग पुरानी लकीर-के फकीर इस प्रकार बन गये कि हमारे समाजका रूप विकृत हो गया और उसमें घून लग गये हैं। जिन रीति रिवाजोंको समय और अवस्थाके भेदसे चलाया गया था उन्हें हमने विहित मान लिया और उनकी ओटमें अनेक तरहकी बुराइयोंको जन्म देने लगे। जिसको हम धर्मकी संज्ञा देकर आदरका स्थान देते हैं उसपर आचरण स्वार्थकी दृष्टिसे करने लगे। जहां अपना मतलब गंठता है वहां तो हम धर्मभीरु बन जाते हैं और जहां अपनी हानि होती दिखाई देती है वहां हम छलांग मारकर धर्मसे कोसों दूर हो जाते हैं। उदाहरणके लिये हम विधवा विवाहको ही लेते हैं। विधवा विवाह धर्म निषिद्ध है, प्रत्येक सनातन धर्मी इस बातको स्वीकार करता है और इसको पालन करने तथा करवानेके लिये संग्राम करता है। पर क्या इसके साथ धर्मके अन्य उन्हीं अंगोंका पालन किया जाता है जिनका इस धर्मसे अन्योन्याश्रय संबंध है। यदि विधवा विवाह शास्त्र निषिद्ध है तो बालविवाह भी शास्त्र विहित नहीं है। हिन्दू शास्त्रकारोंने चार वर्णके साथ चार आश्रम भी बनाया है। जिसके अनुसार

विवाहके पहले द्विजातिके बालकको २४ वर्षकी अवस्थातक पूर्ण ब्रह्मचर्यका जीवन व्यतीत करनेके बाद ही गार्हस्थ्य जीवनका उपभोग करना पड़ता था। आज वह ब्रह्मचर्यकी प्रथाका पालन कै घरोंमें होता है? क्या आश्रम धर्मको लुप्त कर देनेमें सनातन धर्मकी मर्यादा भङ्ग नहीं होती?

उदाहरणोंद्वारा दिखाया गया है कि बाल विवाहके रोक देनेसे विधवाओंकी संख्या कम हो जायगी। पूर्व कालमें इसीसे विधवाओंका अभाव था। पर आज क्या होता है। दस वर्षके लड़के उद्वाहित किये जाते हैं। क्यों? कन्यादानका फल प्राप्त करनेके लिये। इसके लिये शास्त्रका प्रमाण दिया जाता है कि "अष्ट वर्षा भवेद्गौरी, नव वर्षा च रोहिणी। दस वर्षा भवेद् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला" और रजस्वलाका कन्यादान देनेसे पिता माता तथा भाई नरकगामी होते हैं। अब हम हिन्दू धर्मके विधायकोंसे यह प्रश्न करना चाहते हैं कि क्या आप इसे धर्म वाक्य मानते हैं? यदि मानते हैं तो क्या पुराने समयमें २४ वर्षके ब्रह्मचारी बालकका विवाह आठ वर्षकी कन्याके साथ होता था? क्या आठ वर्षकी बालिका सीताके हृदयमें कामवासना व्याप गई थी कि रामचन्द्रको देखते ही उनके मनमें विकार उत्पन्न हो गया और वे गिरिजाकी प्रार्थनामें बोलीं :—'कीन्हेंउ प्रगट न कारण तेही, अस कहि चरण गहेउ वैदेही।' यदि नहीं तो क्या महाराज जनक इतने भारी धर्मात्मा होकर भी इस धर्मके वाक्यका क्यों उल्लंघन करते। इन बातोंसे यह तो सिद्ध

है कि 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी इत्यादि' वाक्य किसी स्वार्थी लोभीकी रचना है, शास्त्रोंसे इनसे कोई संबन्ध नहीं।

इतने विवेचनसे हम इस स्थानतक पहुंचे (१) शास्त्र कहते हैं कि विधवा विवाह न हो (२) बाल विवाह न हो, बालक २४ वर्षतक पूर्ण ब्रह्मचारी रहकर ही विवाह करे (३) विषम विवाह न हो, अर्थात् बेजोड़ शादी, जैसा कि आजकल ४० और ५० वर्षके बुड्ढोंके गले ६ और ८ वर्षकी लड़कियां मढ़ दी जाती हैं। इसमेंसे आपने दो को तो तोड़ दिया। द्वितीय तृतीय तो आपमें प्रचलित रिवाज हो गये पर अभी पहलेपर आप अड़े हैं और अनेक तरहकी सामाजिक दुर्व्यवस्थाओंको देखा करते हैं। यही सामाजिक ढिलाई है और रीति रिवाजोंकी विषमता है। इनके त्यागमें ही आपका कल्याण है।

इसी तरहके अनेक प्रचलित रीति रिवाजोंपर लेखक महोदयने प्रकाश डाला है जो समयके परिवर्तनके साथ साथ छोड़े जाने योग्य थे पर जिनको हम अन्ध विश्वासमें पड़कर अभीतक मानते आये हैं और अनेक तरहकी आपत्ति भोगते हैं।

पुस्तककी उपयोगिताके बारेमें कुछ लिखना व्यर्थ है। जो लोग बाबू भगवानदासजीके पाण्डित्यसे परिचित हैं उनके लिये इस पुस्तकका केवल नामभर लिख देना पर्याप्त होगा।

कलकत्ता प्रवास
८—१२—२३ } छविनाथ पाण्डेय

समाज संगठन —
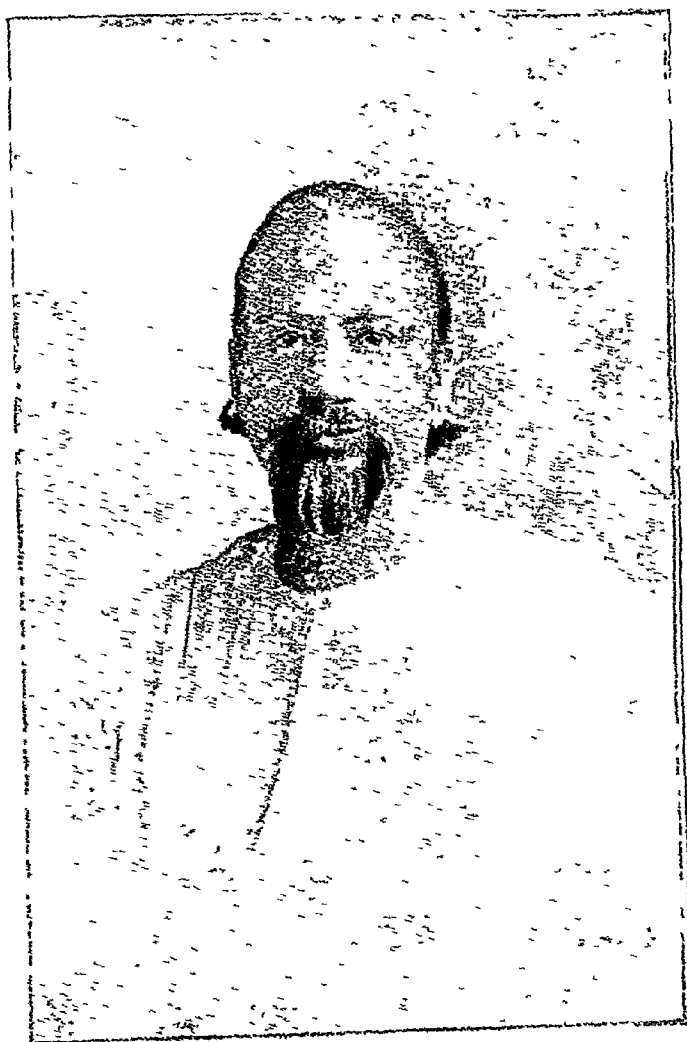
बाबू भगवानदास एम० ए०

समाज संगठन

१—समाजकी वर्तमान अवस्था

समयकी फेरसे इस समय हमारे देशमें दो प्रकारकी संस्कृति अर्थात् आचार विचार रहन सहन और आचरणके दो तरीके साथ साथ प्रचलित हो रहे हैं। एक पूर्वी और दूसरा पश्चिमी, पुराना और नया अथवा हिन्दू और ईसाई। इन दोनोंके बीच एक तीसरी संस्कृति भी समय दशा और प्रकृतिके अनुकूल अपना प्रभाव फैलाती जा रही है। इसका नाम है इस्लाम। यदि ऐतिहासिक घटनाके आधारपर हम ईसाई संस्कृतिकी आलोचना कर उस आरम्भ कालका स्मरण करते हैं जब इसके प्रसारका स्थान केवल दक्षिणी किनारे थे तो इस्लामिक संस्कृतिका स्थान दूसरा हो जाता है। इसके प्रादुर्भावका स्थान भी भारत और यूरोपके बीचमें है जहां एक तरफ धार्मिक विश्वासमें यह यहूदी और ईसाई धर्मसे मिलता जुलता है वहां अद्वैत सिद्धान्तमें यह प्राचीन वैदिक धर्मसे भी बहुत कुछ मिलता जुलता है।

भिन्न भिन्न संस्कृतिकी इस एकताका यह संयोग एक दूसरेको प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता। आज तक तो एकका प्रभाव दूसरे पर अनाचार और जड़ताके ही ख्यालसे होता रहा है। पर यदि यही काम शान्तिपूर्वक होता रहे, सद्भावसे किया

जाय तो बहुत कुछ आशा है कि परस्पर गुणग्राहिता बढ़े और परस्पर लाभकी आधिकाधिक योजना हो।

इस शान्तिमय सम्मिलनका एक दृष्टान्त हम आप लोगोंके सामने पेश करते हैं। औसत हैसियतके लोगोंके निवास-भवन-को देखिये। सामने तो नये फैशनका बंगला बना है और पीछे पुराने तरीकेका चौक। इसमें दोनों फैशनका सम्मेल है, और न देखनेमें भद्दा मालूम होता है और न रहनेमें असुविधाकर।

इसी प्रकार यदि सामाजिक सङ्गठनमें इस बातका ध्यान रखा जाय कि जीवनकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंको समयकी प्रगति और संयोगके सहारे न छोड़कर आवश्यकतानुसार सम्मिलित करनेकी चेष्टा की जाय तो मानव जीवनकी अनेक असुविधायें, विषमता दूर हो जायं और अन्तिम परिणाम भी अनुकूल हो। हर्बर्ट स्पेन्सर तथा उन्हींके समकक्षी अन्य दार्शनिकोंने लिखा है कि यदि नयेका निर्माण किये बिना प्राचीन संस्थाओंको तोड़नेकी चेष्टा की जायगी तो इसका विषम फल होगा। यह कथन भारतके लिये और भी लागू है क्योंकि राजनैतिक उत्कर्षके कारण पश्चिमी सभ्यताका जो असर पड़ रहा है उससे पुराने आचार विचारकी आन्तरिक स्थितिमें घून लग गये हैं और एक प्रकारका गोरखधन्धा चल पड़ा है जिसमें अन्योन्याश्रय संयोग नहीं हो रहा है क्योंकि इसने पुराने सदाचारको तो पंगु बना दिया पर उसके स्थानपर किसी नये सदाचारको जन्म लेनेका अवसर नहीं दिया है।

सम्मिलन, सुधार और सङ्गठनमें इस बातकी आवश्यकता है कि पुनर्निमाणमें परिणामपर अधिकाधिक ध्यान रखा जाय।

२—संगठनके भिन्न भिन्न मार्ग

[क] शिक्षा—यहाँ पर हम ६ द्वार बतलावेंगे जिसमें सङ्गठनकी आवश्यकता है। उसमें शिक्षाका स्थान सबसे प्रथम है। शिक्षा मानव जीवनको उपयोगी बनानेका केवल एक जरिया मात्र है फिर भी इसका स्थान सबसे प्रथम है। जीवनके प्रारम्भिक काल इसीके उपार्जनमें बिताने पड़ते हैं। जीवनका भविष्य बहुत कुछ इसीपर निर्भर करता है। बालकके जन्म लेनेके बादसे ही उसकी उत्तम मानसिक शिक्षाकी योजना होनी चाहिये। पर अभाग्यवश हमारे गृहस्थोंमेंसे बहुत कमको इसका सच्चा ज्ञान है और इसका विषम परिणाम राष्ट्रको भोगना पड़ता है।

उपयोगिताके ख्यालसे शिक्षाका स्थान सबसे प्रथम और प्रधान है। यदि गार्हस्थ्य जीवनको सामने रखकर विचार करें तो भी इसकी उपयोगिता सर्वोत्कृष्ट देखनेमें आती है। बालक जिस समय माताकी गोदमें आता है उसी समयसे उसे शिक्षाकी आवश्यकता पड़ती है। माता ही उसका प्रथम शिक्षक होती है। बालक जीवनकी प्रथम अवस्थामें उन्हींसे शिक्षा ग्रहण करता है। उसके बाद पिता और गुरुका स्थान आता है। गुरु और शिष्यका सम्बन्ध पिता पुत्रका होना चाहिये।

शिक्षाके अधिकाधिक प्रचार और उसे सर्वव्यापी बनानेके

विषयमें कुछ कहना व्यर्थ है। इसकी उपयोगिताको प्रायः सभीने स्वीकार कर लिया है। सरकार भी इसे भलीभांति समझ गई है, केवल आर्थिक कठिनाईका बहाना दिखाकर वह उसके प्रचारमें अग्रसर नहीं हो रही है यद्यपि अन्य कामोंके लिये उसे कभी भी अर्थका अभाव नहीं रहता। पर जिस बात पर लोगोंने अभीतक ध्यान नहीं दिया है जिसको लोग अभीतक नहीं समझ सके हैं और जिसपर लोगोंका ध्यान आकृष्ट करनेकी बड़ी आवश्यकता है, वह है शिक्षाका आकार प्रकार, शिक्षाका कौनसा अङ्ग सर्व साधारणके लिये होना चाहिये और कौनसा अङ्ग विशेष अवस्थाके लोगोंके लिये होना चाहिये। शिक्षा देने और लेनेके उपयुक्त पात्र कौन हैं तथा इसी प्रकारके अन्य प्रश्न, जिनका शिक्षासे घना सम्बन्ध है।

इतने दिनोंके अनुभवसे एक बात तो हम अवश्य सीख गये हैं कि शिक्षा और साक्षरतामें बड़ा भेद है। केवल साहित्यमें पारंगत होना ही शिक्षा नहीं है। कहावत है, नीम हकीम खतरे-जान' अर्थात् विषयमें प्रवेशमात्र सर्वथा हानिकर है पर केवल साहित्यिक ज्ञान साधकके स्थानमें बाधक है। हमलोग इस बातको समझने लगे हैं कि शिक्षाका कोई उद्देश्य अवश्य होना चाहिए और उसी उद्देश्यके अनुसार हमें शिक्षा मिलनी चाहिए चाहे वह साहित्यिक हो, व्यावसायिक हो या शिल्पिक हो। इस शिक्षामें शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, विकास, अधिकार और कर्तव्यका ज्ञान तथा लिखने पढ़ने और साधारण हिसाब

लगानेकी शिक्षा सर्वसाधारणके लिये एक प्रकारकी होनी चाहिए, पर व्यक्ति विशेषकी इच्छा, योग्यता और भविष्यकी इच्छाके अनुरूप शिक्षामें विशेषता तथा भेद होना चाहिए। इस समय स्थिति बड़ी ही विकट है। एक तरफ तो सर्वव्यापकताका प्रबल बाढ़ है और दूसरी ओर छात्रोंको पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाती है। वर्तमान शिक्षा प्रणालीमें पाठ्य विषय निर्धारित करनेमें विवेक बुद्धिकी बड़ी कम गुंजायश है जिससे छात्रोंको व्यावहारिक ज्ञान बहुत ही कम मिलता है, साहित्यिक तड़क भड़क और परीक्षामें सफलताकी ओर विशेष ध्यान रहता है, पर व्यक्ति विशेषके मानसिक झुकावकी तरफ बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। साथ ही साथ जीविकाके अनुरूप तथा देशके सुधारके योग्य व्यावसायिक तथा वैज्ञानिक शिक्षाकी तरफ बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। इसका विषम परिणाम हो रहा है। एक तरफ तो आवश्यक शिक्षाकी तरफ उदासीनता दिखाई जा रही है और दूसरी ओर अनवस्थित शिक्षा प्रणालीको चरितार्थ करने तथा उसे कार्यक्रममें लानेमें छात्रोंके शरीर तथा मनपर इतना अधिक बोझ पड़ रहा है कि अनेक नवयुवक—जो यदि उचित रीतिसे शिक्षित किये जाते तो देशके अभिमानके कारण होते, उज्वल नक्षत्रोंकी तरफ अपना प्रकाश चारों ओर फैलाते—इस नाशकारी परीक्षाकी चक्कीमें पिस पिसकर अपना सर्वनाश कर रहे हैं और अपना जीवन इस प्रकार व्यर्थ और बेकार बनाते जा रहे हैं कि फिर भविष्यमें

किसी कामके नहीं रह जाते। उसी प्रकार धार्मिक शिक्षामें भी उदासीनता दिखलाई जा रही है। बिना धार्मिक शिक्षाके शारीरिक अथवा मानसिक विकास एक भी सम्भव नहीं है। धार्मिक भेद भावका ख्याल न कर, उसे दूर रखकर राष्ट्र तथा जातिकी उन्नतिके लिये धार्मिक शिक्षाका होना अत्यन्त आवश्यक है और यदि धार्मिक शिक्षाका रूप उचित प्रकारसे निर्धारित कर लिया जाय तो इसके द्वारा सबसे उत्तम चारित्रिक शिक्षा दी जा सकती है।

[ख] स्त्रीशिक्षा—बालकोंकी शिक्षाके साथ बालिकाओंकी शिक्षाका घना संबंध है। अन्य बातोंकी भाँति इस देशमें अभीतक इस बातमें भी मतैक्य नहीं है कि स्त्रीशिक्षाका समाजमें क्या स्थान है और उसकी कहांतक आवश्यकता है। पर देशके भाग्यसे लोगोंमें स्त्रीशिक्षाके भाव उदय हो रहे हैं और पुराने जमानेके कट्टर प्रतिपादक भी अब धीरे धीरे इस बातको मानने लगे हैं कि स्त्रीशिक्षा समाज-संगठनके लिये उपयोगी है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो अब स्त्रीशिक्षाके संबंधमें उतना मतभेद नहीं रह गया है जितना उसके आकार प्रकारके विषयमें है। यहीं पुराने विचारवालोंके मत कुछ ठीक मालूम होते हैं यद्यपि उनका मत अधिकांश भ्रमात्मक विचारके आधारपर है। किसी समय आधुनिक व्यवस्थाके अनुसार बालकोंकी शिक्षाके बारेमें भी लोगोंका यही विचार था। आजसे ५० वर्ष पहले प्रायः प्रत्येक पिता और माता बालकोंको अंग्रेजी स्कूलोंमें

भेजनेके घोर विरोधी थे। पर आज पचास वर्षके बाद हमलोग यह बात समझने लगे हैं कि जिस प्रणालीसे हमलोग अपने बालकोंको शिक्षा देते आ रहे हैं वह बड़ी ही दूषित प्रणाली है, अनेक बुराईयोंसे भरी है। यदि बालकोंकी शिक्षाके बारेमें हमलोगोंकी यह धारणा है तो बालिकाओंकी शिक्षाके लिये हमें बहुत सावधान होनेकी आवश्यकता है। उसका आकार प्रकार निर्धारित करनेमें बहुत सचेष्ट रहनेकी आवश्यकता है क्योंकि जरासी असावधानीके कारण विषम परिणामका सामना करना पड़ेगा।

स्त्रीशिक्षा अनिवार्य है पर वह शिक्षा स्त्री समाजके भविष्य जीवनके सर्वथा अनुरूप होनी चाहिये। शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, गृहकर्म तथा शिशुपालन और धातृकर्मको स्त्रीशिक्षामें प्रथम स्थान होना चाहिये। शिल्प और कला-कौशलकी शिक्षा भी स्त्रीशिक्षाका एक अंग होना चाहिये जिससे स्त्रियां अपने घरोंको साफ सुथरा सुन्दर और रमणीय बनाये रखें और गार्हस्थ्य-जीवनको मोहक और सुखमय बनावें जिससे घरके पुरुषोंको सौन्दर्यके उपभोगके लिये कहीं बाहर न जाना पड़े और यदि किसी प्रकारके प्राकृतिक सौन्दर्यके उपभोगका साधन घरोंमें न हो सके तो घरके बाल, युवा, वृद्ध, नर और नारी सभी साथ ही बाहर उसका उपयोग कर सकें।

इसलिये उस परम्परागत स्त्रीशिक्षाके स्थानपर वर्तमान प्रणाली इस प्रकार उपयोगी हो सकती है कि—स्त्रियोंको लिखना,

पढ़ना, हिसाब लगाना सिखाया जाय, धर्मग्रंथ जैसे रामायण, गीता और कुरानकी शिक्षा दी जाय, धात्रीकर्म सिखाया जाय जिससे बालकोंके साधारण रोगोंको वे पहचान सकें और उसका इलाज कर सकें, सूईका काम सिखाया जाय, जैसे कपड़ोंपर बेलबूटा निकालना, कसीदा काढ़ना इत्यादि, गाने बजानेमें भी साधारण रुचि दिलाई जाय, और घरके भीतर खेले जा सकने- साधारण खेलोंमें भी उनकी रुचि दिलाई जाय जैसे ..., ताश या इसी तरहके अन्य खेल।

यही व्यवस्था हमारे यहां पीढ़ी दर पीढ़ीसे चली आती थी। न इस तरहकी शिक्षाके लिये स्कूल खोलनेकी आवश्यकता पड़ती थी और न कालेज की। घरकी वृद्धा स्त्रियां सहजमें ही इस प्रकारकी शिक्षा दे दिया करती थीं। पर वर्तमान युगके परिवर्तनोंके चक्रमें पड़कर यह लुप्त हो गया या हुआ चला जा रहा है।

पर अन्य स्थानोंकी भांति यहां भी नियममें विकल्प होगा। जिन बालिकाओंको रुचि या अवस्थाके अनुसार बौद्धिक पेशा करनेकी इच्छा हो जैसे शिक्षक, डाक्टर, कवि, शिल्पी, लेखक अथवा सम्पादककी वे बिना किसी रोक टोकके कालेजोंमें जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। अनेक विद्यालयोंमें ऐसी बालिकाओंके लिये खास तरहके प्रबन्ध किये जा सकते हैं। और यदि इनकी संख्या काफी परिमाणमें बढ़ती देखी जाय तो इनके लिये अलग स्कूल या कालेज खोले जा सकते हैं।

पर इस तरहके विकल्प अल्प संख्यामें ही देखनेमें आयेंगे क्योंकि स्त्रियोंकी अधिकांश संख्या केवल योग्य गृहिणी बननेके लिये ही शिक्षा प्राप्त करना चाहेगी जिससे घरको सौम्य, शान्त और सुन्दर बनाकर वह गृहस्वामिनी शब्द जो चरितार्थ कर सकें, सच्ची पत्नी और माता बन सकें जिससे पुरुषको घरकी अन्तरंग अवस्थाके लिये चिन्ता न करनी पड़े, और उन्हें घरोंको सुखी रखनेके साधन एकत्र करनेके लिये पर्याप्त समय मिल जाया करे। मस्तिष्क हृदयपर असर डालता है, हृदय बुद्धिपर और बुद्धि भावपर और व्यक्ति विशेषको छोड़कर प्रायः मनुष्य कठिन परिश्रमसे जो धन वैभव, यश, ख्याति अथवा इस प्रकारके आनंदके अन्य साधनोंका संग्रह करता है वह सर्वथा स्वार्थकी दृष्टिसे नहीं होता, वह सब अपने लिये नहीं करता बल्कि अपने प्रिय जनोंको समर्पित कर देनेके लिये, क्योंकि वह जानता है कि अन्य साधनोंके होते हुए भी इनके बिना जीवन आनन्दमय नहीं बन सकता।

पर जिन स्त्रियोंकी आजन्म साहित्य-सेवाकी ओर प्रवृत्ति हो, जो अपना जीवन पुस्तकोंके पठन-पाठनमें ही बिताना चाहती हों, उन्हें यही उचित है कि वे आजन्म अविवाहिता रहें। यही बात पुरुषोंके लिये भी ठीक है। सनातन हिन्दू धर्मके माननेवालोंके सामने इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। विद्याके अधिष्ठाता और अधिष्ठात्री आजन्म अनुद्वाहित रहे हैं और आजतक हैं। देवी सरस्वती अपनी वीणा और पुस्तकके साथ दिन रात रत रही हैं, वेदोंके

चक्का ब्रह्माको भी अपनी पुस्तकोंसे अवकाश नहीं मिलता, इसी कारण उन्होंने विवाह करना, गृहस्थीके झंझटमें पड़ना उचित नहीं समझा। पर ब्रह्माका दूसरा नाम स्रष्टा है अर्थात् वह इस जड़ जगत्, इस पर निवास करनेवाले प्राणी सबका निर्माता कहा जाता है। पर यह उसकी मनस् सृष्टि है और उसी अर्थमें इन सबका—यहां तक कि सरस्वतीका भी—निर्माता कहाता है। पर भाग्यवश हमारी अधिकांश बालिकायें देवी सरस्वती न बनकर देवी लक्ष्मी और देवी अन्नपूर्णा ही बननेकी स्पर्धा करती हैं और प्रकृतिने भी उन्हें उसी निमित्त बनाया है।

[ग] स्त्रियोंकी समानता—एक प्रश्न और उठता है। पुरुषोंके साथ स्त्रियोंकी समानता और समानाधिकार विवाद-ग्रस्त विषय है और इस युगमें इस प्रश्नपर अधिक जोर दिया जाने लगा है और शिक्षित समाजमें तो यह निर्विवाद स्वीकार कर लिया गया है। पर इस सिद्धान्तको कार्यक्रममें लानेमें एक बुराई की जा रही है। 'समानता' शब्दका दुरुपयोग किया जा रहा है। इसका प्रयोग शिक्षा और जीवनके अन्य कार्योंमें भी किया जा रहा है। कहा जाता है कि यदि पुरुषोंको बी. ए., एम. ए. पासकर शिक्षक, अध्यापक, वकील, जज, डाक्टर पुरोहित, नेता, प्रधान मन्त्री, पोस्टमास्टर आदि होनेका अधिकार है तो स्त्रियोंको क्यों नहीं है। यह सब प्रतिष्ठाके ऊंचे पद हैं। पुरुषोंके समान स्त्रियोंको भी ये पद प्राप्त होने चाहिये। गृहस्थीका कार्य तथा लड़कोंकी देख भाल पिसौनी नीच कर्म हैं। यदि इसे

पुरुष नहीं करते तो इसे स्त्रियां क्यों करें। यदि यह आवश्यक है तो इसे स्त्री पुरुष दोनोंको करना चाहिये। इस प्रकारके भावोंके प्रादुर्भावका क्या कारण है? शारीरिक कामके प्रति इस तरहके अश्रद्धाके भावके उठनेका क्या कारण है? यदि विचार कर देखा जाय तो यह स्कूलों और कालेजोंकी शिक्षाकी बरकत है जहां केवल किताबी ज्ञान प्राप्त करानेकी चेष्टा की जाती है। पाश्चात्यमें भी इसका प्रभाव अपने पूर्ण जोर पर है। लोगोंने इधर उधरसे कुछ स्थूल प्रमाणोंका संग्रह कर लिया है और उसीके आधारपर ये बातें कही जाती हैं। पर हम लोगोंको सदा सचेत रहना चाहिये। ऐसे शब्दों और उक्तियोंके जहरीले प्रभावसे हमें अपने सामाजिक और गार्हस्थ्य जीवनकी सदा रक्षा करनी चाहिये, और खूब समझ बूझकर उसी स्थानों और अवस्थाओंमें परिवर्तन करना चाहिये जहां मानव जीवनकी आवश्यकता भारतीय संस्कृति और सदाचारके योगदानसे सहमत हो।

इस प्रसंगमें दो शब्द बहुत अधिक प्रचलित हैं—गृहस्थीका झंझट और प्रतिष्ठा। अर्थात् ऊंच और नीच। इनके शब्दार्थने लोगोंके हृदयोंमें घोर भ्रमात्मक आन्दोलन पैदा कर दिया है। इसके दो कारण हैं। पहले तो हमलोग सफल प्रतिष्ठाके ऊंच कामोंकी ही तुलना 'गृहस्थीके झंझटोंको "नीच कामोंकी कठिनाईके साथ करते हैं। दूसरे शारीरिक काम करनेवालोंके प्रति हम लोगोंका उपेक्षाकृत व्यवहार अर्थात् हममेंसे जो लोग जीवनकी उच्च आकांक्षाओंपर पहुंच गये हैं वे लोग उन शारीरिक काम करने-

वालोंको इतनी नीची निगाहसे देखते हैं, उनके कामको इतना निकृष्ट और घृणास्पद समझते हैं कि उनके हृदयमें स्वभावतः ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न होने लगता है और वे भी जीवनके उसी लक्ष्यमें जानेकी चेष्टा करने लगते हैं क्योंकि धनिक वर्गने प्रतिष्ठाका ऊंच नीचका भ्रमात्मक भाव उनके हृदयमें जागृत कर ५ है। पाश्चात्य देशोंमें भी यह भ्रमात्मक भाव इतना अधिक जड़ जमा चुका था कि सदियोंके लगातार अनवरत परिश्रमके बाद 'प्रतिष्ठितोंका' विचार बदला है जब उन्हें हर तरहसे मजूर आन्दोलन आदि द्वारा यह दिखा और समझा दिया गया है कि शारीरिक श्रम करनेवाले किसी तरहसे हीन नहीं समझे जा सकते। आज यूरोपके सभी लोग,—कुलीन, चाहे अरिस्ट्राक्रेट या बुराक्रेट—यह समझने लगे हैं कि मजूर भी मनुष्य हैं और उन्हें मनुष्यके सभी नैसर्गिक अधिकार प्राप्त हैं। एक समय स्वर्गीय पण्डित विशननारायण दरने रहन सहनको अधिक बहु मूल्य बनानेके विषयमें लोगोंको सचेत करते हुए कुछ बहुत ही उपयोगी और दूरदर्शिता पूर्ण शब्द कहे थे। ये शब्द उन्होंने अपने काश्मीरी समाजकी रमणियोंको लक्ष्य करके ही कहे थे पर वे सब समाजके सब जातिके स्त्री पुरुषोंपर लागू हैं।

गृहस्थीका कार्य जैसे, खाद्य पदार्थोंकी जांच करना, संचय करना, सफाई तथा कौशलसे भोजन बनाना, जिसपर जीवनका सारा दारमदार है, घरकी सफाई करना तथा गृहस्थीके सामानको साफ सुथरा रखना, लड़कोंकी देखभाल करना जिनके बिना

यह गृहस्थी और गार्हस्थ्य जीवन शून्य और बेकार है,—यह नीच क्यों है और दफ्तरमें बैठकर दिन रात कागजपर कलम रगड़ते रहना, या बही खाता सम्हालते रहना, हिसाब किताब जांचते रहना, या विद्याभवनमें बैठकर लड़कोंके साथ बड़बड़ाते रहना या मुंह पिरवाना, अदालतोंमें मुंह फाड़फाड़ कर चिल्लाना, प्लेट फार्मोंपर खड़े होकर आकाशको गुंजाते रहना, या इजलासपर बैठ कर दूसरोंके पुश्त दर पुश्तके दुश्मनी और कलहका वृत्तान्त सुनना और गवाहोंके कुछ सच्चे और कुछ झूठे बयानोंको लिखते रहना, कुर्सीपर बैठे टेबुलको रगड़ना, या रात दिन रोगियोंके फेरमें पड़े रहना और न दिनको दिन और न रातको रात समझना, राज्य प्रबन्धकी दुरवस्था या सुव्यवस्थाकी चिन्तामें रात रात जागते बिताना, गुप्तचरोंको किस प्रकार अन्य राज्योंमें भेजना और उनकी रिपोर्टोंकी सचाईका पता लगाना, कलपुर्जोंपर दिन रात अपना माथा खपाना, दूकानमें बैठे रहकर गाहकोंका मुंह जोहते रहना—यह सब नीच नहीं है? जिन कामोंके करनेसे आंखें फूट जायं, कमर झुक जाय; बाल असमय सफेद हो जायं, चमड़ोंमें झुर्रियां पड़ जायं, सीना दब जाय, नसें कमजोर पड़ जायं, मन्दाग्नि हो जाय कागज खाते खाते, रोशनाई, पीते पीते और कलम रगड़ते रगड़ते अथवा पहिया चलाते चलाते शरीर और मन दोनों व्याकुल और व्यस्त हो जायं—वह काम गृहस्थीके कामसे किस प्रकार कम झंझटवाला अर्थात् नीच कहा या माना जाता है? किस कारणसे, किस

आधारपरएकको तो ऊंच और दूसरेको नीच मान लिया गया है?

असल बात यह है कि जो लोग अपने पेशेमें कुछ उन्नति कर गये हैं और कुछ द्रव्य संग्रह कर चुके हैं और जिसका अभिमान करते हुए लोगोंकी दृष्टिमें आगये हैं वे लोग अपने उस ... न या ऊंचपनका सीमासे अधिक अभिमान करने लगते हैं। और दूसरी ओर जो लोग जन्मभर कमाने खानेमें ही लगे रहते हैं, साधारण हैसियतसे ऊपर नहीं उठते या जीवनमें सफल नहीं होते, वे पीछे रह जाते हैं या एक दमसे नीचे गिर जाते हैं और इसी कारण अपने कामसे वे वह उदाहरण नहीं उपस्थित कर सकते जिससे 'ऊंच' या प्रतिष्ठाके चकाचौंधपर कुछ असर पड़े। और कुलस्वार्थपन तथा संकुचित हृदयताके कारण, आत्म-विकासके अभावमें—पश्चिममें थोड़ा और पूर्वमें अधिक—लोगोंका यह भाव रहा है कि स्त्रियां पुरुषोंके अधीन हैं। वे भूल जाते हैं कि स्त्रियां गृहकी अधिष्ठात्री देवियां हैं। यही कारण है कि स्त्री संसारमें इस प्रकारके उथल पुथल करनेवाले आन्दोलनोंका जन्म हो रहा है।

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो वह काम ऊंच और प्रतिष्ठित है जिसमें दूसरोंके उद्धार और उन्नतिके लिये आत्म-त्यागकी मात्रा अधिकाधिक पायी जाय और जिस काममें दूसरोंको हानि पहुंचानेकी चेष्टा की जाय वही नीच है। या साधारण तौरसे वह काम नीच या पिसौनी है जिसे अनिच्छासे

करना पड़े, करनेवालेको रुचिकर न हो, परेशानीका हो और इसके प्रतिकूल सभी काम ऊंच अर्थात् प्रतिष्ठित हैं। इससे परिणाम निकला कि गृहस्थीका काम अन्य तरहके पेशेके कामोंसे कहीं उत्तम और रोचक है क्योंकि पहला स्वाभाविक है और प्रकृतिके अनुकूल है और दूसरा अप्राकृतिक सुविधाओंके सहारे है और आधुनिक सभ्यताका आधारभूत है। वे लोग भी जिन्हें अपने उच्च पदोंके कारण बड़े बड़े खिताबात, ओहदे या प्रतिष्ठाके पद मिले हैं—जैसे जगद्गुरु, पूज्यपाद, आचार्य, श्रीचरण—वे लोग भी यदि उन्हें इस प्रतिष्ठाके द्योतक ऊंच कामको लगातार अधिक समयतक करना पड़ता है, उसकी मर्यादा दीर्घकालतक पालन करनी पड़ती है तो वे घबरा जाते हैं और उसे घिसौनी "नीच" समझने लगते हैं। उस समय उन्हें गृहस्थीके शान्त और सुखमय धन्धे स्मरण होने लगते हैं। यदि भाग्यवश उनके गृह "शान्ति निकेतन" शब्दको चरितार्थ करने योग्य हैं।

मेरे अनेक यूरोपीय तथा हिन्दुस्तानी मित्रोंने—जो यूरोप रह आये हैं और वहांकी सामाजिक स्थितिका पूर्णज्ञान रखते हैं—कहा है कि पश्चिममें,जिसका हमलोग आजकल पूर्णतया अनुकरण करते हैं, गृहस्थीका काम घिसौनी, झंझट या नीच नहीं समझा जारहा है (उसी अभिप्राय और उसी मानेमें जैसा कि भारतके शिक्षित समाजमें इस समय प्रचलित है)। कमसे कम मध्यम श्रेणीके लोगोंमेंसे तो वह एक दम गायब हो गया है। और इस श्रेणीकी अधिकांश स्त्रियां अपने घरोंका काम अपने हाथ करती

हैं। किसी किसी हालतमें तो ये नौकरों और मजदूरनियोंसे भी सहायता नहीं लेतीं यद्यपि इनकी शिक्षा दीक्षा उच्च कोटिकी हुई है। इस प्रकार पश्चिममें बराबरीके इस दावेका प्रभाव आर्थिक स्थिति पर बहुत अधिक पड़ा है क्योंकि वहां बराबरीके हैसियतके साथ साथ पेशेमें भी बराबरीका प्रश्न उठ जाता है क्योंकि वहांकी सामाजिक स्थितिके कारण बहुतसी स्त्रियां अविवाहिता रह जाती हैं और उन्हें गृहस्थीके काममें हाथ न डालकर रोटी चलानेके लिये कोई न कोई पेशा ग्रहण करना पड़ता है।

इस तरह स्त्रियोंपर बलात् पेट पालनेका भार डालना—जो कि पुरुषका ही काम है और जिसके लिये वह स्त्रियोंसे कहीं अच्छी स्थितिमें है—किसी भी अवस्थामें नर या नारीके लिये प्रतिष्ठाजनक या ऊंच नहीं कहा जा सकता। यह सम्भव है कि कुछ स्त्रियां इसे 'स्वतन्त्रता' का चिह्न मानकर पसन्द करें तो ऐसे कुछ पुरुष भी निकल आवेंगे जो स्वतन्त्रताका चिह्न समझकर अपने घरोंको सौम्य बनाना ही अधिक पसन्द करें। पर साधारणतः 'स्वतन्त्रता' शब्दका इस तरह प्रयोग बनावटीपनसे खाली नहीं दीखता। यदि इस भावको विस्तार दिया जाय तो उससे जो परिणाम निकलेगा वह समाजके लिये नितान्त अनुपयोगी और हानिकर होगा। तर्ककी कसौटीपर कसनेसे इसका निम्नलिखित रूप होगा—किसीको दूसरेकी सहायता नहीं करनी चाहिये और समाज तथा संघका होना भी

उचित नहीं है क्योंकि ये सब एक तरहके संगठन हैं जिसमें श्रम विभाजन या बटवारा अत्यावश्यक है अर्थात् एक दूसरेकी अधीनता अनिवार्य है। इस प्रकार स्वाधीनताके स्थानपर एक तरहकी अधीनताका स्थान रहता है। पर जिस आधारपर ये लोग इस परिणाम तक पहुंचते हैं उससे स्पष्ट है कि इस तरहकी स्वतन्त्रताकी चाह नैसर्गिक नहीं है, क्योंकि प्रकृतिका नियम है कि आवश्यक गुणोंकी प्राप्तिका साधन वह सदा खड़ा किये रहती है। इस प्रकार स्त्रियोंके ऊपर पेटके लिये पैदा करनेका भार देना मानव समाजको उस जंगली दशामें पहुंचाना है जब लोगोंके न घर थे, न द्वार थे, न रहनेका कोई निर्दिष्ट ठिकाना था। जो हृदय और जो मन माताके स्नेह, पत्नीके प्यार, भगिनीकी ममताके लिये बना है, जिसमें कोमलताके स्निग्ध भाव भरे हैं, उन्हें कठोर कामोंमें लगाना, युद्ध क्षेत्रमें ले जाकर उसकी भीषणता और कठोरताका आभाष दिखाकर उनके हृदयोंको भग्न करना घोरसे घोर निर्दयता और अविवेकका काम है।

हमारे लिखनेका यह अभिप्राय नहीं है कि स्त्रियोंमें पुरुषोंके समान सांग्रामिक शक्ति नहीं है। भारतका इतिहास तो स्त्रियोंकी वीरतासे भरा पूरा है। राजपुतानाकी अनेक रानियां, बीजापुरकी रानी, सुलताना चांदबीबी, रानी झांसी, ऐसी देवियां हैं जिन्होंने सम्मुख रणमें सेनाका सञ्चालन किया है और अनेक बार दुश्मनोंका दांत खट्टा किया है। भारतकी पौराणिक गाथा भी ऐसे ही वृत्तान्तोंसे भरी है।

भगवद्गीताके मुकाबिले दुर्गा सप्तसतीका देशमें कम आदर नहीं है। जहां गीताके नायकोंने सात अक्षौहिणी सेना लेकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त की है वहां अकेली दुर्गा * भगवतीने मधुकैटभ, महिषासुर, और शुंभ निशुंभ सदृश प्रबल राक्षसोंका संहार किया है। इन राक्षसोंके पराक्रमका अनुमान केवल इतनेसे ही कर लिया जा सकता है कि इन्द्रादि देवता भी रणमें सामने न खड़े हो सके और हार मानकर भाग गये† । जहां कहीं माताने अपने पुत्रोंके कल्याणार्थ शस्त्र उठाया है सर्वत्र स्त्री-वीरता, धीरता और साहसकी मर्यादा उत्कृष्ट रही है।

पर इस तरहके उदाहरणोंसे यह परिणाम नहीं निकाल लेना चाहिये कि यही स्त्रियोंका स्वाभाविक कार्य है, इसीके लिये उनका जीवन बना है। ये एकाकी उदाहरण उनके जीवनकी असाधारण घटनायें हैं जैसे सतीकी घटनायें हैं। सतीकी प्रथा कैसे प्रचलित हुई? न्यायकारोंने इस प्रथाको क्यों चलने दिया? इसका कारण प्रत्यक्ष है। उन्होंने देखा कि उस युगमें गृहशान्ति या ग्रामशान्तिके लिये रक्त बहाये बिना काम नहीं चलता। सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें नवयुवक अपने ग्राम, पुर, घर या सन्ततिके कल्याणके निमित्त प्राणोंकी आहुति दे देते हैं।

---

* एकैवाऽहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा। पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतः। दुर्गा सप्तशती अध्याय १०॥५॥

† इन्द्राद्याः सकला देवा सस्थुर्येषां न संयुगे। शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम दुर्गा सप्तशती अध्याय ५ श्लोक १२५

उनकी नव विवाहिता वधुओंका सिन्दूर सौभाग्य योंही धूसरित हो जाता है। इसका अनुमान कर उन्होंने इस प्रथाको चलाया और इसको उन्हीं अवस्थाओंके लिये नियन्त्रित रखा जहां प्रेमकी प्रबलता और पतिका अनुराग मृत्युके भयको हेच समझती थी। क्योंकि सांग्रामिक नियमोंके अनुसार युद्धक्षेत्रमें मरा सैनिक सीधे स्वर्गको जाता था और प्रियतमके अनुराग सूत्रमें बंधी प्रेयसीकी आत्मा भी उसकी अनुगामी होती थी। इसीके आधारपर जापानमें भी कुछ प्रथा प्रचलित है जिसे हरकिरी कहते हैं। इसीका अवलम्बन कर जापानके सम्राट् मत्सुहितोकी मृत्युके बाद् जेनरल नोगोने सपत्नीक प्राण त्याग किया था। पर ये सब असाधारण बातें हैं। आधुनिक विचार परिवर्तनके समयमें उस प्राचीन प्रचलित प्रथाको हानिकर और अनुपयोगी समझकर और उस समयके प्रचलित नियमका दुरुपयोग समझकर सती प्रथाको अन्य प्रथाओंकी भाँति जैसे—नरमेध और बच्चोंकी बलि—उठा दिया।

इन उदाहरणों और प्रमाणोंसे इतना तो अवश्य सिद्ध हुआ कि सांग्रामिक पेशा किसी भी अवस्थामें स्त्रियोंके लिये प्रतिष्ठित या ऊंच नहीं कहा जा सकता।

इसी तरह गरीबीकी मारसे लाचार होकर स्त्रियां यदि मजूरी करके या अन्य उपायोंद्वारा जीविका उपार्जन करनेमें पुरुषकी सहायता कर रही हैं तो उसे कोई "प्रतिष्ठित" या ऊंच नहीं कह सकता बल्कि एक प्रकारसे यह 'हेय' और निन्दनीय

ही कहा जायगा। भारतीय तथा यूरोपीय दोनों समाजोंमें स्वभावतः यही बात प्रचलित है और देखनेमें आती है कि जब-तक पुरुष गृहस्थीको चलाने भरके लिये पर्याप्त द्रव्य उत्पन्न करता रहता है स्त्रियां इस पिसौनीमें योगदान नहीं करतीं। वे केवल घरकी देख रेख करती हैं और उसीको सुसम्पन्न तथा शान्तिमय बनानेकी चेष्टा करती रहती हैं।

कामका बटवारा होनेपर भी, दोनोंके दो तरहके भिन्न भिन्न कामोंमें लगे रहने पर भी, मानव धर्म दोनोंको—स्त्री और पुरुषको—बराबरका अधिकार देता है। उदाहरणार्थ, राजाकी स्त्री रानी ही कहलावेगी, पुरोहितकी पुरोहितानी, सम्राट्की सम्राज्ञी। यद्यपि दोनोंके काममें घोर अन्तर और विभेद है। पुरुष जीवनकी जिस किसी अवस्थामें रहेगा सदा रोटी कमानेके फेरमें पड़ा रहेगा* और स्त्री चाहे जिस अवस्थामें हो गृह कार्यमें ही लग्न रहेगी।

स्थिति या पदके अनुसार भारतीय समाजमें माताका पद सबसे ऊंचा है। ज्ञान-गुरुकी प्रतिष्ठा अक्षर-गुरुसे दसगुनी अधिक है, पिताकी प्रतिष्ठा ज्ञान-गुरुसे सौगुनी बढ़कर है और माताकी प्रतिष्ठा पितासे हजार गुनी अधिक है।

---

* इस वाक्यसे कदाचित् लोगोंको भ्रम हो इससे इसे स्पष्ट कर देना उचित होगा। राजा और सम्राट्को भी साधारण मनुष्योंकी भांति बिना श्रम किये रोटीका ठिकाना नहीं लग सकता। जिस तरह परिश्रम न करनेवाले मजूरको कहीं काम नहीं मिलता और वह बेकार मारा मारा फिरता है उसी तरह अयोग्य राजा गद्दीसे उतार दिये जाते हैं और उनका रोटी कमानेका जरिया छीन लिया जाता है।

इससे यह परिणाम निकलता है कि ऊंच नीचका यह भाव वर्तमान युगकी सभ्यताके भ्रमात्मक विचारसे निकले हैं, जो किसी दृढ़ सामाजिक संगठनके आधारपर नहीं हैं और न समता तथा भ्रातृभावके सिद्धान्तको स्वीकार करके बनाये गये हैं। एक ओर धनकी अधिकताका मद और दूसरी ओर अतिशय गरीबीकी मार, एक ओर प्रतिष्ठा, मान मर्यादा, शक्ति और आनन्दके साधन तथा दूसरी ओर इनका सर्वथा अभाव तथा इसके साथ ही साथ इसी आधारपर आचरण करना और इसी भावनाके धारण करनेके भाव सदा अनेक प्रकारकी सामाजिक बाधाओंको जन्म देते रहेंगे जबतक कि इनमें पूर्णतया संशोधन और सुधार न होगा। यह विषय इतना व्यापक और गम्भीर हो गया है कि इसपर बहुत कुछ लिखा जा सकता है पर विस्तार भयसे हम अधिक नहीं लिखना चाहते। पर यहीं पर इसके एक विशिष्ट पहलूपर दो चार शब्द लिख देना आवश्यक समझते हैं। वह है स्त्री और पुरुषको शिक्षाका प्रश्न, बालक और बालिकाओंकी शिक्षाका प्रश्न।

यह प्रश्न इतना जटिल हो गया है, इसमें लोगोंने इतनी गलत फहमी फैला दी है कि इसको उचित रीतिसे न चलानेपर समाजमें अनेक प्रकारकी भीषण बुराइयोंका जन्म हो जायगा। इसका कारण वर्तमान सभ्यताके जीवन-संघर्षके सिद्धान्तके कारण है। वर्तमान समयमें जीवन-संघर्षका सिद्धान्त* इतना

* न्यूटनने लिखा है कि जैसे पौधे एक साथ अनेक उगते हैं पर जो उसमें

प्रबल हो गया है, इसको इतनी प्रधानता दी जाने लगी है कि समाजके सभी प्रश्नोंका विचार इसीके आधारपर किया जाता है। इस जीवन-संघर्षके प्रश्नमें आधुनिक समाज इतना पागल हो गया है कि उसे समता और समवाय संयोगका सिद्धान्त* सर्वथा भूल गया है और यह इसी जीवन-संघर्षके सिद्धान्तके आधारपर बालक और बालिकाओंकी शिक्षाकी समस्या भी हल करता है।

यूरोपके प्रसिद्ध दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर व्यक्तिगत संघर्षके सिद्धान्तके कट्टर प्रतिपादक थे पर उन्होंने भी शिक्षाके सिद्धान्तपर जो मत दिया है वह संघर्ष सिद्धान्तके सर्वथा प्रतिकूल है। उन्होंने लिखा है कि शिक्षाका अभिप्राय, प्रत्येक स्त्री पुरुषका व्यक्तिगत, वंशगत और जातिगत शारीरिक, मानसिक, और चारित्रिक सुधार होना चाहिये। भारतका सनातन धर्म यही बतलाता है कि शिक्षाका अभिप्राय अपने तथा अपने अगणित अन्य भाइयोंके इहलोक तथा परलोकके सुखकी अवाप्तिके लिये होना चाहिये और यह तब सम्भव हो सकता है जब बालकोंकी शिक्षा जीवन-यात्राके निमित्त और बालिकाओंकी शिक्षा

बलिष्ठ होता है वह दूसरोंके आहार और पौष्टिक शक्तिको खींच लेता है। इस प्रकार वह म जाता है और जो बलिष्ठ होता है वह जीवित रहता है। यही बात उसने मानव समाजके लिये भी आर्थिक दृष्टिसे साबित करके चरितार्थ किया है।

* अर्थात् नर और नारीका सम्मिलित कर्तव्य है कि वे गृहको यथासाध्य शान्त और सुखप्रद बनाते हुए जीवनयात्रा करें।

गृहस्थोंके निमित्त हो पर साथ ही साथ दोनोंको सदाचारकी ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे "वसुधैव कुटुम्बकम्" को भली-भाँति समझ सकें और उसपर आचरण भी कर सकें। इस तरह न तो गृहस्थीका कार्य नीच या पिसौनी समझा जायगा और न जीविका उपार्जन करनेका काम ऊंच या प्रतिष्ठित समझा जायगा चाहे वह किसानी हो या राज्य प्रबन्धका काम हो।

जापानकी सरकार—जिसे सच्चा पितातुल्य और जिम्मेदार सरकार कह सकते हैं—ने यह व्यवस्था की है कि शिक्षा दिये जाने योग्य प्रत्येक बालक और बालिका स्कूल भेजे जायंगे, उनकी योग्यता और रुचिकी पाक्षिक परीक्षा ली जायगी और उस परीक्षाके परिणामके अनुसार उनकी उच्च शिक्षाकी व्यवस्था की जायगी और उचित शिक्षा पा लेनेपर तथा पूर्णरूपसे व्युत्पन्न हो जानेपर उन्हें योग्यतानुसार राष्ट्रमें उचित पद दिया जायगा जिसमें संघर्ष आदिका अवसर न आवे।

यदि इस देशमें भी हमलोग इसी आधारपर चलनेकी चेष्टा करें तो हमलोगोंकी सामाजिक दुर्व्यवस्था अनेक अंशोंमें घट सकती है।

३—विवाहके लिये उपयुक्त अवस्था

शिक्षाके बाद विवाहका प्रश्न आता है। इसमें कई प्रश्न सम्बद्ध हैं, जैसे वर और कन्याकी अवस्था, दहेज़की प्रथा, वर कन्याको रुपयेके लिये बेचना, परदाकी प्रथा, विधवा विवाह,

अनेक पत्नीत्व, बूढ़ोंका विवाह, असमान विवाह तथा इसी तरहकी अन्य वैवाहिक प्रथा और ब्रह्मचर्यकी वृद्धि, वेश्याओंको नचाना इत्यादि।

४—परदाकी प्रथा

शिक्षापर अभीतक जो कुछ हमने लिखा है वह प्रायः भारतके बल्कि संसारके—सभी जातिके स्त्री पुरुषोंके लिये लागू है। पर अब हम कुछ ऐसे सामाजिक प्रश्नको उठाना चाहते हैं जिनका विश्वव्यापी महत्व नहीं है। उनमेंसे एक परदाकी प्रथा है। परदा सब देश और सब जातियोंमें बराबर नहीं है। गरीबोंमें, चाहे वे किसी जातिके क्यों न हों कोई परदा नहीं है। इसी तरह दक्षिणके उच्च वंशवालोंमें तथा बम्बईके पारसियोंमें भी किसी तरहका परदा नहीं है और ईसाई धर्मने तो इसका सर्वथा बहिष्कार किया है। मुसलमानोंमें इसकी चलन कहीं अधिक है। इसके अलावा समय, काल और अवस्थाके अनुसार भी परदाकी कठोरता कम या बेशी हो जाती है,जैसे यात्रा आदिमें लोग परदेपर इतना अधिक जोर नहीं देते। काश्मीरियोंमें आपसमें किसी तरहका परदा नहीं है। मिथिलामें पुरुष भी परदा करते हैं। इस तरह न तो ससुरको वधूका मुख देखना चाहिये और न वधूको ससुरका। इसी तरह संयुक्त प्रदेशमें कुछ कायस्थोंके घरोंमें स्त्रियां एक दूसरेसे परदा करती हैं। कहा जाता है कि सास बहुधा पतोहूका मुख नहीं देखने

पाती। इस तरह किसी किसी दशामें इस परदेको रिवाजका इतना अधिक दुरुपयोग कर दिया गया है कि जो बात किसी खास जरूरत या कारण विशेषसे चलाई गई थी उसका अब दुरुपयोग होने लगा है। यह प्रथा पुराने जमानेसे चली आ रही है और यह आवश्यक है। इसको चरितार्थ करनेके अनेक उदाहरण उन्नत और शिक्षित देशोंमें भी पाये जा सकते हैं जैसे रेलवे स्टेशनोंपर औरतोंके बैठने, उठने तथा उनकी आवश्यकताओंके लिये खास स्थान, उनकी खास रेलकी गाड़ियोंमें डब्बे तथा पार्लिमेंटमें औरतोंके लिये खास जगह।

सौभाग्यकी बात है कि दिनपर दिन लोग इसकी अनावश्यकताको समझते जा रहे हैं और इसको उठानेके लिये अधिकाधिक तत्परता दिखा रहे हैं। भारतमें यह प्रथा चिरकालसे नहीं है। प्राचीन इतिहासको देखनेसे यही प्रतीत होता है कि जिस समय भारत सभ्यताके शिखरपर था, उसकी अवस्था अत्यन्त उन्नत थी उस समय यह प्रथा यहां प्रचलित न थी। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह प्रथा एक तरहसे पुरुष और स्त्रीके नैसर्गिक विभेदका दुरुपयोग मात्र है।

इस प्रथासे किस प्रकारकी क्षति हो रही है उसका अनुमानकर सन्ताप होता है। आज आप लोग श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती कस्तूरीबाई गांधी, श्रीमती बासन्तीदेवी दास और श्रीमती सरलादेवी चौधरानी आदि देवियोंके आत्मत्याग, उत्सर्ग और कामकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहे हैं। पर उन

लोगोंने इतना काम किस तरह किया ? क्या परदामें रहकर ! यदि वे आज परदेके भीतर पड़ी सड़ रही होतीं तो क्या आज वे आपका इतना उपकार कर सकतीं। इनकी कार्य-वाहियोंको देखकर आज संसार चकित है। यूरोपके लोग—ब्रिटिश—यह भली भांति समझने लग गये हैं कि भारतकी देवियां वास्तवमें देवियां हैं, उनमें दुर्गा और शक्तिकी ताकत है, उनमें असीम कार्यक्षमता है। वे वह काम करके दिखा सकती हैं जो अन्य देशोंकी स्त्रियां स्वप्नमें भी नहीं कर सकतीं। पर भाग्यसे अब यह सबलोग समझने लगे हैं कि यह प्रथा अस्वाभाविक है, हानिकारक है, नर और नारीके मानसिक विकासका प्रतिघातक है। यात्रा आदिमें इसके कारण जो असुविधायें होती हैं उनसे लोग और भी तंग आ गये हैं। इसके अतिरिक्त लोगोंने यह बात भी समझ ली है कि इसके कारण सामाजिक जीवनसे अलग रहकर समाजके सौन्दर्य, और चारुताका उपयोग नहीं मिलता। इससे हिन्दू समाजकी तो बात ही न्यारी है अब मुसलमान समाजकी स्त्रियां भी रेलवे स्टेशनोंपर जाते समय पालकी या डोली आदिका सहारा नहीं लेतीं और केवल बुर्का डालकर इधर उधर आती जाती हैं। सार्वजनिक सभाओंमें भी अब स्त्रियोंकी अधिकाधिक संख्या प्रतिदिन दृष्टि गोचर होने लगी है। यह भी इस बातका द्योतक है कि परदेकी रीतिको लोग हटाना ही चाहते हैं और उसके लिये चेष्टा भी कर रहे हैं।

कुछ विचारवान लोग कहते है कि जबतक पुरुष समाजका चित्त शुद्ध न हो जाय, उनके मनमें पापाचरणका विकार दूर न हो जाय तबतक इस प्रथासे हानिके सिवा लाभ बहुत कम होगा। उदाहरणमें वे पाश्चात्य—यूरोपीय—देशोंका प्रमाण देते हुए कहते हैं कि यहां परदाकी रीति न होनेसे जो सामाजिक और चारित्रिक हानियां हो रही हैं उसका प्रत्यक्ष फल दिखाई दे रहा है। उनका कथन किसी अंशमें सच है। पर हमें उनसे यह निवेदन करना है कि मानव संसारमें जितनी बातें होंगी उसमें बुराई और भलाई दोनोंका समावेश रहेगा। एक भी ऐसी बात न मिलेगी जिसमें बुराई ही बुराई या भलाई ही भलाई भरी हो। ऐसी दशामें हमारा कर्तव्य यही है कि निरूपण करके देखें कि दोनोंमेंसे किसकी मात्रा अधिक है। यदि थोड़ी बुराई भी दीखे तो अधिक भलाईके लिये उस बुराईको भी अपनाना पड़ेगा। वर्तमान समयमें परदासे लाभ कम और बुराई अधिक है। पाश्चात्य देशोंमें इस प्रथाके न रहनेसे लाभ अधिक और हानि कम है। यदि पाश्चात्य समाजमें किसी तरहकी बुराई है तो इसका कारण परदेका न होना नहीं है बल्कि उसका कारण समाजिक संगठनकी स्खलता है। पाश्चात्य समाजका संगठन किसी सुदृढ़ नींवपर, किसी सुव्यवस्थित आधारपर, किसी धार्मिक बन्धनके आधारपर नहीं हुआ है। इसी कारण कुछ बुराई, कुछ अशान्ति और तिलाक आदि दोष उसमें देखे जाते हैं। यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि इसको

उठानेमें भलाई है तो अनेक हानियों और बुराइयोंके रहते भी हमें इसे स्वीकार कर लेना चाहिये क्योंकि "कड़वी औषध बिन पिये मिटे न तनको ताप।" तैरना सीखनेके लिये पहले पानीमें उतरना होगा। यदि हमें भय है कि हमारे पड़ोसीकी निगाह सच्ची नहीं है, उसका मन शुद्ध नहीं है तो हमें डरकर पीछे नहीं रहना चाहिये, बल्कि उचित है कि पहले हम अपनी आखों-को ठीक करें, उन्हें शुद्ध करें ताकि वे दूसरोंकी अच्छी बातें भी देख सकें और तब अपने पड़ोसीकी आखोंकी फिकर करें। इसी संबंधमें एक बात और कह देनी है। परदाको उठा देनेसे हमारा अभिप्राय रहन सहन और पहिनने ओढ़नेमें किसी तरहकी कमी या परिवर्तनसे नहीं है।

५—विवाहके लिये उपयुक्त अवस्था

सन्तोषका विषय है कि समाज उन्नतिकी ओर प्रबल वेगसे बढ़ रहा है। और इधर तीस, बत्तीस वर्षमें अनेक तरहके परिवर्तन हो गये हैं। वैवाहिक प्रथा तथा रीति रिवाजोंमें भी कम परिवर्त्तन नहीं हुआ है। प्रायः करके लोग अब कम उमरमें शादी करना उचित नहीं समझते। पर अनुसन्धानसे मालूम होता है कि इस परिवर्तन या सुधारका कारण अधिकांश हालतमें आर्थिक कठि-नाई है न कि अधिक उमरमें शादी करनेके लाभ। पाश्चात्य देशों-में भी देखनेमें आता है कि गरीब और अमीर दोनों वर्गोंमें शादी छोटी अवस्थामें ही हो जाती है यद्यपि उतनी छोटी अवस्थामें

नहीं जितनी कि इस देशमें। पर यह बात अधिक अमीर और अधिक गरीबमें ही क्यों प्रचलित है। इसका कारण खोजनके लिये भी कहीं दूर नहीं जाना होगा। रुपयेके बलसे अमीर लोग सब कुछ कर सकनेका दावा करते हैं, इससे वे हृदयकी सभी अभिलाषाओंको बेरोक टोक पूरी करते हैं। यही बात गरीबके लिये भी है। आर्थिक कठिनाई उसके मार्गमें बाधक नहीं होती। वह सोचता है—'नाश तो नाश। अब क्या इससे भी कोई हीन दशा हो सकती है? बस, इसी ख्यालसे वह भी अपनी अभिलाषाको तृप्ति करता है। एक बात और है। उनकी स्त्रियां भी मजूरी करती हैं। इससे उन्हें एक तरहकी सहायता-का सहारा हो जाता है। आर्थिक कठिनाईका भय केवल मध्य श्रेणीके लोगोंको दबाता है। वेही इस बातपर ध्यान रखते हैं कि जबतक आय इतनी न हो जाय कि वह अपना और अपनी स्त्रीका भरण-पोषण कर सके' तबतक वह शादीकी बात मुंहपर नहीं लाता। पर इस देशमें शादीका होना या न होना अनेक तरहकी रीति रिवाजों, और धार्मिक सिद्धान्तोंपर निर्भर है। ये धार्मिक सिद्धान्त या रीति रिवाज निराधार नहीं थे। इनके पीछे बड़े महत्वका वैज्ञानिक भाव छिपा था पर आज उन सब भावोंको तिलाञ्जलि देकर हम लकीरके फकीर बन गये हैं।

पर थोड़े दिनोंसे हमलोग पुनः विवेक बुद्धिका प्रयोग करने लगे हैं। रीति रिवाजोंके अन्ध भक्त नहीं रह गये हैं और आर्थिक कठिनाई या नये आदर्शके प्रवाहमें पड़कर अब उम्र

वर्गके लोग भी वैज्ञानिक रीतियोंको कुछ कुछ मानने लगे हैं। इस विषयमें तथा अन्य कई एक सामाजिक विषयमें पारसी समाज और ईसाई लोग पाश्चात्यवालोंका पूर्णतया अनुकरण करने लग गये हैं। मुसलमानोंमें भी सैयद्को छोड़कर सभी अधिक उमरमें शादी करते हैं। पर हिन्दूजाति इस विषयमें बहुत ही अधिक पिछड़ी है। जिन नीच जातियोंमें विधवा विवाहकी चलन है वे तो बालविवाह करनेके लिये और भी तत्पर रहते हैं।

मानसिक, शारीरिक और आयुर्वेदिक विधानके तथा अवस्थाके अनुसार इस देशमें स्त्रियोंके लिये विवाहकी उपयुक्त अवस्था १६ से २० वर्षके भीतर और पुरुषोंके लिये २० से २५ वर्षके भीतर होनी चाहिये। पाश्चात्य और प्राच्य आयुर्वेद विज्ञान इस विषयमें एक मत हैं कि कम उमरमें विवाह करना जितना हानिकारक है अधिक उमरमें विवाह करना भी उतना ही हानिकारक है।

कम उमरमें शादी कर देनेका एक कारण हिन्दुओंका सम्मिलित कुटुम्बमें रहना भी है। सामाजिक प्रश्न प्रायः करके एक दूसरेके साथ बड़ी घनिष्टताके साथ बंधे हैं। इसलिये एकमें परिवर्तनका असर दूसरेपर अवश्य पड़ेगा। छोटी उमरमें विवाहकी प्रथा, परदाकी चलन, विधवा विवाहका निषेध और सम्मिलित कुटुम्बकी प्रथा, एक दूसरेके साथ बड़ी घनिष्टताके साथ बंधी है। नये प्रकाशका उनपर जो प्रभाव पड़ेगा उसमें सभी बातोंमें कुछ न कुछ परिवर्तन होना अनिवार्य है।

इस वक्त इस प्रश्नपर गम्भीर विचार करना है कि इन परिवर्तनोंको किस प्रकार चरितार्थ किया जाय जिससे घोर सामाजिक उथल पुथलकी सम्भावना न हो। इसके लिये पहली आवश्यक बात यह है कि नयी पीढ़ीके बालक और बालिकाओंको ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे उनकी मान मर्यादा बढ़े और बूढ़े बुजुर्गोंके सहारे न होकर वे अपना भरण पोषण आप कर सकें। इस प्रकार वे अपने लिये स्वतन्त्र घर बना सकेंगे जिसमें परदाकी क्रूरता तथा अन्य सामाजिक विषमता और दुर्व्यवस्थाका उपभोग उन्हें नहीं करना पड़ेगा। उन्हें कठिनाईयोंका सामना अवश्य करना पड़ेगा क्योंकि माता पिता तथा अभिभावकोंसे अलग होनेपर उन्हें दुःख सुखका कोई सहायक और सहानुभूति प्रदर्शक नहीं मिलेगा।

६—विधवा विवाह

विधवा विवाहकी तरफ भी अब धीरे धीरे लोगोंका झुकाव होने लगा है। इस प्रश्नपर उच्च जातियोंको ही अधिकाधिक विचार करना चाहिये क्योंकि सैयदके अतिरिक्त सभी मुसलमानोंने, नीच जातिके हिन्दुओंने और ईसाइयोंने इसको चलनसार मान ली है और इसी प्रकार इन लोगोंमें तिलाक भी प्रचलित है।

विधवा विवाहको किसी अंशमें प्रचलित कराने और लोगोंका इस प्रश्नपर ध्यान आकृष्ट करनेका अधिकांश श्रेय आर्य समाजको है। इस विषयपर पूर्णरूपसे वाद विवाद हो

चुका है। इसके आगे पीछेका परिणाम भली भाँति सोच लिया गया है। विधवाओंकी शोचनीय दशापर लोगोंका ध्यान आकृष्ट होने लगा है। लोग अब देखने और समझने लग गये हैं कि नवजवान विधवायें किस तरह अपनी कामाग्निको शांत करनेके लिये व्यभिचारिणी बनकर घरके अन्य पुरुषोंके साथ, नौकर चाकरोंके साथ, कोचवान सईसोंके साथ, रसोईया ग्वालेके साथ दुष्कर्ममें प्रवृत्त होती हैं, गर्भवती होती हैं तब उनके गर्भ गिरानेके अनेक गुप्त उपाय किये जाते हैं। इस तरहसे भी यदि काम नहीं चलता तो वे बिचारी मेले तमाशोंमें, रेलगाड़ियोंमें या किसी अनजान शहरोंमें ले जाकर छोड़ दी जाती हैं जहां उनकी हर तरहसे दुर्गति होती है, कभी कभी कामके वेगमें अन्धी होकर वे नौकर ग्वालोंके साथ निकल जाती हैं और उनके भी छोड़ देनेपर नीच और अधम वेश्या वृत्तिमें अपना जीवन बिताती हैं। कितनी धर्म छोड़कर विधर्मी बन जाती हैं क्योंकि उस धर्ममें इतनी उदारता है कि वह उन्हें शरण देकर उचित प्रबन्ध कर देता है। इस तरहकी घटित घटनाओंका चित्र पत्रों, पुस्तकों, सभा सोसाइटियोंमें अंकित किये जानेसे लोगोंके चित्तकी प्रवृत्ति बहुत कुछ बदलने लगी है। इससे इतना तो अवश्य हो गया है कि विचारवान लोग अक्षतयोनि और निःसन्ताना विधवाओंके विवाहके लिये तैयार हो गये हैं यदि वे स्त्रियां विवाह करना स्वीकार करती हैं और गार्हस्थ्य जीवनके उपयोगकी इच्छुक हैं।

इस संबन्धमें एक बात ध्यानमें रखने योग्य है। यदि कम उमरमें शादी न कर दी जाय तो बाल विधवाओंकी संख्या आपसे आप घट जायगी और विधवा विवाहका प्रश्न इतना जटिल न रहेगा।

७—बूढ़ेका विवाह

साथ ही साथ बूढ़ोंके व्याहको भी रोकना चाहिये, कमसे कम उस व्याहको जिसमें छोटी छोटी लड़कियोंका व्याह बूढ़े पुरुषोंके साथ कर दिया जाता है। अबतक इस प्रश्नपर अधिक विचार नहीं किया गया था। कमसे कम इतना ही जाना तो नितान्त आवश्यक है कि सन्ततिवाले पुरुष ४० वर्षकी अवस्थाके बाद दूसरी शादी करनेकी चेष्टा न करें।

८—बहु-पत्नीत्व

इस प्रश्नपर भी अभीतक केवल आर्थिक अवस्था अपना प्रभाव डाल रही है। लोग केवल आर्थिक कठिनाईके कारण एकसे अधिक विवाह करनेसे डरते हैं, क्योंकि मध्य श्रेणीके गरीबोंके लिये एक पत्नीका भरण पोषण भी भारी बोझ हो रहा है जिसे वे उचित रीतिसे नहीं निवाह सकते। पर जो लोग इस हैसियतके हैं कि जीवन-यात्राका उन्हें कोई कष्ट नहीं है वे लोग इस बुराईमें फँस जाते हैं और इसका अन्य लोगोंपर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिये इस प्रथाको उठा देना ही समाजके लिये हितकर होगा।

मानव समाजके इतिहासमें विवाहके कई प्रकार प्रचलित थे और हैं। असभ्य, वर्वर और जङ्गली जातियोंमें विवाहका कोई बंधा नियम नहीं है। विवाहके संबंधमें उनकी चेष्टा सदा पशुओंकीसी रहती है। इससे आगे दो, चार पांच विवाहकी प्रथा प्रचलित है, फिर मुसलमानोंका मुताह होता है जिसके अनुसार किसी नियत अवधिके लिये ही शादी की जाती है। कहीं कहीं परीक्षा विवाहकी विधि प्रचलित है। पाश्चात्य देशोंमें तथा अमरीकामें शादीका होना नर और नारीकी निजी रुचिपर निर्भर है और कहीं कहीं एक विवाहकी प्रथा प्रचलित है। यद्यपि ऊपरके विवरणके अनुसार विवाहके अनेक चलन प्रचलित हैं पर सनातनसे एक अकाट्य नियम चलता आया है कि कुमार पुरुषका कुमारी स्त्रीके साथ विवाह होना चाहिये। ऐसी दशामें दोनोंका परस्पर प्रेम धार्मिक, सात्विक और सांसारिक होता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस तरह मानव समाजकी उत्पत्ति प्रकृति और पुरुषके समवाय संयोगसे हुई है उसी तरह इस मानव संसारके अन्तर्गत परस्परका हर तरहका संबन्ध नर और नारीके वैवाहिक संबन्धसे ही उदय होता है। इस कारण पति पत्नी या पुरुष स्त्रीका सम्बन्ध ही सबसे प्रकृष्ट समझा जाना चाहिये।

पाश्चात्य वैवाहिक प्रथामें जहां अनेक गुण हैं वहां एक बड़ा भारी दोष भी है जिसका बाइरनने यों वर्णन किया है—"अधिकांश दशामें शादीके बाद ही पति पत्नीका प्रेमबन्धन ढीला हो

जाता है।" यद्यपि इसमें अत्युक्ति है पर है यह ठीक। यह परस्पर संवरणकी विधि प्राचीन भारतमें प्रचलित स्वयंवर और गान्धर्व विवाहसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। ये विधियां प्राचीन समयमें केवल क्षत्रियोंके लिये विहित थीं, उसी तरह आज कल भी वे पश्चिममें प्रचलित हैं क्योंकि पाश्चात्य मनःस्थिति भी आजकल अधिकांश राजसिक है। पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि और सब प्रकारकी विधियां सभ्य समाजसे उठ गई हैं। फ्रांस यूरोपीय राष्ट्रोंमें सबसे अधिक सभ्य समझा जाता है और गत यूरोपीय महायुद्धने यह भी साबित कर दिया कि यूरोपमें इसकी बीरता भी किसीसे कम नहीं है। पर यहांपर अभीतक ब्राह्म और प्राजापत्य वैवाहिक प्रथा प्रचलित है। अर्थात् माता पिता या घरके बड़े-बूढ़ोंकी पसन्दसे ही शादी की जाती है। पर भारतमें ब्राह्म प्रथा जिस प्रकार नीचे गिर गई है, उसका विद्रूप कर दिया गया है इससे लोग अब यहां भी गान्धर्व विवाह ही पसन्द करने लग गये हैं यद्यपि पाश्चात्य देशोंके तिलाक आदिके बुरे अनुभव और दुष्यन्त आदिके कटु उदाहरण बाइरनकी उक्तिका सदा समर्थन करते हैं।

अभी हालमें हम अमरीकाका एक पत्र पढ़ रहे थे। उसमें लिखा था कि आगामी वर्षमें अमरीकाकी अदालतको ४०००००
तिलाकके अभियोगोंपर विचार करना होगा। एक बार तो हमें भ्रम हुआ कि क्या भूलसे शून्यकी संख्या बढ़ तो नहीं गई है क्योंकि बिना किसी अनिवार्य घटनाके वैवाहिक संबन्धके मान-

सिक बन्धनको इस प्रकारकी उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता पर बहुपत्नीत्व प्रथामें तो यह असम्भवसा प्रतीत होता है।

दूसरी तरफ बाल विवाहमें यद्यपि अनेक दूषण हैं पर उससे एक लाभ अवश्य हो सकता है और वह यह है कि पति पत्नीका स्नेह बाल कालमें ही एक सूत्रमें बंध जाता है। इससे इसके दृढ़ता और चिर स्थायित्वकी आशा रहती है। पर इसका होनी भी गृहस्थोंकी सुगमता और व्यक्तिकी प्रकृतिपर निर्भर है जो यदा कदा ही देखनेमें आते हैं। अनुभवसे यही सिद्ध होता है कि पूर्व और पश्चिमके लिये ये दो उक्तियां—(पूर्वमें) विवाहके बादसे ही प्रेमका बन्धन दृढ़ होने लगता है और दूसरी ओर (पश्चिममें) विवाहके बादसे ही प्रेमका बन्धन शिथिल होने लगता है—चरितार्थ होते नहीं दिखाई देतीं। हां, दोनों उक्तियोंका सम्मेलन हमलोगोंको मिल सकता है यदि कम उमरमें सगाई कर हमलोग अधिक उमरमें शादीको प्रथा चला दें क्योंकि इससे काम चल जानेकी सम्भावना है। पर इसमें भी प्रेमके अभावकी सम्भावना है। इसके बारेमें हम ऊपर कह आये हैं कि हमें दो बुराइयोंमेंसे एकको छाँटना होगा। हर तरफसे लाभ ही लाभकी आशा करना दुराशामात्र है।

किसी भी हालतमें बहुपत्नीत्व केवल काम वासनाकी तृप्ति करनेके लिये है। यह अनावश्यक है और जनसाधारणका भी यही मत है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि धार्मिक परम्परा विहित होनेपर भी लोग यथासाध्य इससे बचनेकी ही

चेष्टा करते हैं। पर इसमें भी विकल्पका होना सम्भव है। जिस प्रकार एक पत्नीत्व प्रथाकी मान्यता भी जन साधारणकी स्वीकृतिसे अंगीकृत की जाती है उसी तरह कारण विशेषसे बहु पत्नीत्व प्रथा भी हिन्दू शास्त्रोंमें विहित नियमोंके आधारपर विरोधात्मक नहीं भी ठहरायी जा सकती। किसी किसी जातिमें चलन है कि यदि पति एक पत्नीके रहते भी दूसरी शादी करना चाहता है तो उसे पत्नीकी मरजीसे पञ्चायतमें दर-खास्त करना पड़ता है और दूसरी शादीका यथेष्ठ कारण दिखाना पड़ता है जैसे, पत्नीका किसी असाध्य रोगसे पीड़ित रहना, या सन्तान आदि होनेके अयोग्य ठहरना। पर ऐसी दशामें उसे प्रथम पत्नीके भरण पोषणका अलग प्रबन्ध कर देना चाहिये। इस तरहके एकाकी उदाहरणोंको छोड़कर यथासाध्य बहु पत्नीत्व प्रथाको रोकना चाहिये।

६—अन्य रिवाजें

ऊपर हमने जिन रीति रिवाजोंका वर्णन किया है उनके अतिरिक्त जन्म, विवाह तथा मरणसे संबंध रखनेवाली अन्य भी अनेक प्रथायें वर्ग-विशेष और स्थान-विशेषमें प्रचलित हैं जिनपर लोगोंका बहुधा ध्यान आकृष्ट नहीं होता पर वे भी कम हानि-कर नहीं हैं। उनसे हजारों तरहकी हानियां होती हैं और जानें जाती हैं। दहेजके लिये उपरा चढ़ी अर्थात् लड़कोंको नीलामपर चढ़ा देना कि जो सबसे अधिक दहेज देगा उसीके

घर लड़का व्याहा जायगा तथा लड़कियोंका बेचा जाना आज भी किसी किसी समाजमें प्रचलित है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंमें दहेजका इतना जोर है कि कितनी स्त्रियां आजन्म अविवाहिता रहकर मर जाती हैं। भूमिहार ब्राह्मणोंकी और भी दुर्दशा है। इनमें आधेसे अधिक गरीब वंशके नवयुवक अविवाहित रह जाते हैं और बड़ी बड़ी स्त्रियां धोखा देकर बड़े घरोंके छोटे छोटे बालकोंके साथ व्याह दी जाती हैं। इसका परिणाम पुरुष तथा स्त्री दोनों समाजके लिये हानिकर हो रहा है। सरयूपारी ब्राह्मणों-के किसी फिरकेकी भी यही कैफियत है। इसी तरह अनुसन्धान करनेपर प्रगट होता है कि प्रत्येक जातिके फिरकोंमें कोई न कोई इस प्रकारकी बुरी प्रथा चल गई है जो उस जातिको निर्जीव और मृत बनाती चली जा रही है और उसका सुख आनन्द सब मिट्टीमें मिलाती जा रही है।

यही जीवनके तीन महत् उद्देश्य हैं। इनके लिये मनुष्यको सबसे अधिक प्रयास करनेकी आवश्यकता है, सबसे अधिक विचेष्टित रहनेकी आवश्यकता है, सबसे अधिक विचारसे काम करनेकी आवश्यकता है। क्योंकि इसी पर जीवनका सारा भविष्य निर्भर है, इहलोक और परलोकका यही मार्ग है पर हम भारतवासी इसके लिये इतना कम प्रयास करते हैं, इतने लाप-रवा रहते हैं, इतनी उदासीनता दिखाते हैं कि हमारा दिन प्रति-दिन पतन होता चला जा रहा है और हमारा जीवन भार होता जा रहा है।

इन सैकड़ों फिरकोंका होना, जातिपांतिका इस प्रकारका भेद भावही इस बातका पक्का प्रमाण है कि आत्माकी एकता अर्थात् मनके साथ शरीरका संबंध—जिसका दिग्दर्शन एक विचार, एक ज्ञान, एक भाव, एक धर्म, सामाजिक आचार विचार एक भाषा, एक साहित्य, एक रीति रिवाज, एक आकांक्षा, एक वेष, पहनावा (भारतवर्षका सबसे उत्तम परिधान उत्त-रीय था जिसका एक भाग कटि प्रदेशमें बांधा जाता था, दूसरा गर्दनमें और तीसरा सिरमें—इसमें एकता होते भी प्रत्येक वर्गके विहित धर्मके अनुसार इसमें भेद होता था) था—यह आत्माकी एकता, जिसके कारण भारतवर्ष सबसे बड़ा राष्ट्र समझा जाता था, जिसकी शक्ति अतुल समझी जाती थी, आज इस देशसे लुप्त हो गया और उसके स्थानपर अनेक तरहकी नीच वृत्तियां—जिसके कारण ईर्ष्या, द्वेष, वैर, डाहका प्रादुर्भाव हुआ है—जन्म ग्रहण कर रही हैं और करती जा रही हैं। एक तन्तुमें बंधकर काम करनेके बजाय, पारस्परिक एकता बनाये रखनेके स्थानपर, अपनेको एक राष्ट्ररूपी शरीरका भिन्न भिन्न अंग न मानकर तथा उसको ही परिपुष्ट करनेके हेतु अपना अपना निर्दिष्ट काम न कर ये लोग पूर्ण स्वच्छन्दताके साथ मनमाने तौरसे काम कर रहे हैं और परस्पर संघर्ष, ईर्ष्या तथा द्वेषके वशीभूत होकर उसी एक शरीरका रक्त पी रहे हैं।

यह दशा निराशा पूर्ण है। इसके स्मरणसे ही चित्त विभ्रान्त हो जाता है। इसलिये आवश्यक है कि 'हमलोग इस मृतप्रायः

शरीरको सम्हालें इसे आवश्यक औषधि देकर इसका रोग दूर करें तथा इसमें बलका संचारकर, इससे शक्ति ग्रहणकर इन समस्त विभिन्नताओंको दूर कर दें और समवाय संबंधकी स्थापनाकर अपनी शक्ति अमोघ और अतोल बना लें। इसलिये पहले प्रधान जडको ही ठीक करना उचित है। उसके ठीक हो जानेपर शाखा और टहनियां आपसे आप ठीक हो जायगीं। यह किस तरह साध्य है! इसपर आगे वर्णव्यवस्थामें बतलाया जायगा।

अपव्यय—इसके साथ साथ अन्य कई एक छोटीमोटी सामाजिक बुराइयां है जिनका दूरीकरण समाजकी भलाईके लिये नितान्त आवश्यक है; जैसे शादी व्याहके अवसरोंपर बेपरिमाण रुपया लुटाना, अतिशय आनन्द मचाना तथा मरनीके दिनोंमें रुपया लुटाना तथा बेहद दर्जेतक शोक मनाना, जैसे, खत्रियोंमें स्यापा और अग्रवालोंमें हांसा तमासा है। इन कुरीतियोंको उठादेना नितान्त आवश्यक है।

वेश्यानृत्य—दूसरी प्रचलित बुरी प्रथा खुशीके अनेक अवसरोंपर वेश्यानृत्य है। जहां कहीं नाच उठा दिया गया है वहां बायस्कोप, थेटर या रास मनाया जाता है। इसमें भी सुधार होना चाहिये। गानविद्याके प्रचारके ख्यालसे रागकलाके परिवर्धनके ख्यालसे उसकी रक्षा होनी चाहिये पर इसके अन्तर्गत जो बुराइयां है उन्हे दूर करनेकी चेष्टा होनी चाहिये।

मादक वस्तुओंका प्रयोग—मादक वस्तुओंके प्रयोगको भी उठा देनेके लिये यत्न करना चाहिये। कितने ही वर्षोंसे इसके

लिये अनवरत परिश्रम किया जा रहा है पर किसी विशेष परि-वर्त्तनकी झलक नहीं दिखाई दे रही है। इधर असहयोग आन्दोलनके कारण इसपर प्रभाव पड़ा है पर इसे राजनीतिके दौरासे निकाल लिया जाना चाहिये और समाजके दौरामें इसे रखना चाहिये। इससे इतनी अधिक हानि होती है कि पाश्चात्य देशोंने भी इसके उठानेके लिये विकट आन्दोलन आरम्भ कर दिया है। इस विषयमें मुसलमानी आचार सबसे दृढ़ है क्योंकि मुसलमानी धर्मके अनुसार किसी तरहके नशेका प्रयोग हराम है।

समुद्रयात्रा—समुद्रयात्राका प्रश्न तो अब एक तरहसे हल हो गया है। इसके विरोधमें अब कहीं भी आवाज नहीं उठाई जाती। और हजारों हिन्दू—सब जाति और सब फिरकेके—गत पांच वर्षोंमें अनेक बार समुद्र लांघ चुके। पर अब भी कट्टर सनातनधर्मियोंकी हठवादिता दूर नहीं हुई है। और अपने स्वार्थमें अन्धे होकर उन विचारोंपर—जो समुद्रयात्रा कर आते हैं—अनेक तरहकी विपत्तियां ढहानेकी चेष्टा करते हैं। इस कठिनाईको दूर करनेका केवल एक यही उपाय है कि ऐसे लोगोंको विवाह शादीके लिये अपना अलग दल बना लेना चाहिये और उन हठवादियोंके साथ संबंध नहीं रखना चाहिये। तथा अनवरत चेष्टासे एक एक वर्गको अपने मतमें मिला लेना चाहिये। इस विपत्तिका सामना अधिकतर हिन्दुओंको ही करना पड़ेगा। जिन जातियोंपर इसका कोई असर नहीं पड़ता या जिनके यहां इसका कोई विचार नहीं है वे इस बातको सुन

सुनकर हंसते हैं। पर उन्हें भी इस तरफसे उदासीन नहीं रहना चाहिये क्योंकि उनकी सहायतासे आपसका मन मोटाव दूर होकर मेल हो जानेकी बहुत कुछ सम्भावना है। इस विरोध और द्वेषभावका एक कारण यह भी है कि विलायतसे लौटे हुए लोगोंने अपनी उद्दण्डता और दुराग्रहसे हठवादियोंको उभारा और वे स्वार्थान्ध होकर और भी हठी बन गये।

१०—वर्णव्यवस्था

यहां तक तो हमने सामाजिक और गार्हस्थ्य जीवनपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की है। अब हमें इसके आगे बढ़ना चाहिये और मनुष्य जीवनकी अवस्थाओंपर विचार करना चाहिये। इस अवस्थामें वर्णव्यवस्थाका प्रश्न सबसे अधिक महत्वका है क्योंकि उस देशके तीन चौथाई लोग इसके अधीन हैं। इस बातको अनेक बार दिखलाने और बतलानेका यत्न किया गया है कि जिस प्रकार वर्णव्यवस्थाका हमलोग प्रयोग कर रहे हैं उसमें उसकी अनेक प्रकारके गुणोंका लोप हो गया है और इसकी आड़में अनेक तरहकी बुराइयां की जा रही हैं तथा उन्नतिके मार्गमें यह प्रधान बाधक हो रही है और राष्ट्रीयताके ह्रासमें सहायता दे रही है। गौणरूपसे अन्य जातिके लोगोंपर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

हमने ऊपर कहा है कि "जिस प्रकार इस प्रथाका प्रयोग हो रहा है।" वास्तवमें सारी बुराई इन्हीं शब्दोंके अन्तर्गत है

क्योंकि यदि विवेकके साथ इसका प्रयोग हो तो भारत ही क्या सारे संसारका इससे महत् उपकार हो सकता है। इसके द्वारा शिक्षा संबंधी, राजनैतिक, आर्थिक, व्यवसायिक, गार्हस्थ्य, सामाजिक सभी प्रश्नोंका निपटारा हो जायगा जिनके कारण मानव समाज चक्करमें पड़ गया है।

यह बात सुननेमें असम्भवसी प्रतीत होगी। लोग कहेंगे कि हम बैठेबैठे सुख-स्वप्न देख रहे हैं। पर आजतक जिन वैज्ञानिक आविष्कारोंके द्वारा मानव समाजमें इस प्रकारके विप्लव मच गये हैं सभी मनुष्यके निकाले हैं और पहले पहल जब इनकी चर्चा चलती थी तो ये भी असम्भव बातें ही मानी जाती थीं। इससे यह मान लेना अनुचित न होगा कि इस दार्शनिक निरूपणसे भी समाजमें एक नया विप्लव मच जाय जिसका प्रभाव समाजपर स्थायी हो।

किसी फारसीके कविने कहा है—मनुष्य जातिका परस्पर अतिघनिष्ट सम्बन्ध है और वे आपसमें शरीरके अवयवोंकी भांति एक धागेमें बंधे हैं। वेदके एक मन्त्रमें इन अंगोंकी (मानव समाजके चतुर्वर्णरूपी चार अंगोंकी) उत्पत्तिका विवरण भी अत्यन्त मनोहर पारिभाषिक शब्दोंमें दिया गया है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहुः राजन्यः उरुस्तदस्यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।

अर्थात् ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, छातीसे वैश्य और पैरसे शूद्र उत्पन्न हुए। इस कथनसे इस वेदमन्त्रका

क्या अभिप्राय है ? केवलमात्र इतना ही कि मानव-समाज चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है, विद्वान, जिसका काम पढ़ना और पढ़ाना हो , कर्मवीर या योद्धा, जिसका काम लड़ना या संग्राम करना हो, वैश्य या इच्छुक, जिसका काम सदा द्रव्योपार्जन करना हो, मजूर जिसका काम सेवा टहल करना हो। अब इस मानव जातिको एक मनुष्य मान लीजिये जिसकी ये चार जातियां या अवयव हैं जैसे मस्तक, बाहु उरु और पाद।

यदि अनुसंधान किया जाय तो इसके अनुसार वर्ण व्यवस्थाका परिचय काल, समय और व्यवस्थाके अनुसार सभी जातियों और सभी समाजमें पाया जाता है, जिनका वर्णन भिन्न भिन्न नामसे हैं जैसे उर्दूमें आलिम, आमिल, ताजिर, मजदूर; अंग्रेजीमें, पादरी, कुलीन, सौदागर और मजूर अथवा आधुनिक शब्दावलीमें पठन पाठनका काम करनेवाले, राजनीतिज्ञ, शासक व्यवस्थापक और संग्रामिक, धनिकवर्ग या पूंजीवाले; और मजूर या हाथसे काम करनेवाले।

भारतवर्ष तथा अन्य देशोंमें—विशेषकर यूरोपमें—यही भेद है कि उन देशोंमें साधारण सम्पत्ति तो वंश-परम्परागत अवश्य है पर अपनी रुचि और इच्छाके अनुकुल काम ढूंढ निकालनेमें प्रत्येक व्यक्तिको पूर्ण स्वतन्त्रता है इसलिये जीविका निरूपणमें जो संघर्ष हो रहा है उसमें शक्तिका ह्रास हो रहा है और इस देशमें काम काजकी वंशपरम्परागत जो व्यवस्था चली

आ रही है उससे भी अनेक तरहकी हानियां हो रही हैं क्योंकि इसके कारण योग्यताके अनुसार काम काजमें लगाये जानेकी व्यवस्था सर्वथा रुक जाती है और लोग रुचिके भेद तथा अन्य पेशोंमें न जा सकनेकी कठिनाईके कारण आलसी हो रहे हैं।

हम हिन्दूलोग समयके फेरसे इस वर्ण-व्यवस्थाका महत्व, इसका असली तत्व भूल गये और स्वार्थके लोभमें पड़कर, निजी हित साधनके फेरमें तथा सदाचारिक पतन और अज्ञानके कारण इस वेदके मन्त्रका अक्षरशः पालन करने लगे और उसके निष्पत्तिको भूल गये। इस नियमका जिस प्रकार प्रयोग हो रहा है उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि जैसे फौजी कानूनमें किसी तर्ककी गुंजायश नहीं उसी प्रकार वर्ण-व्यवस्थाके नियम भी पुरोहितोंके आज्ञापत्र हैं जिनको बिना चूकिये मानना चाहिये।"

यह तो पूर्वकी खराबी है पर पश्चिम भी इससे बरी नहीं है। पश्चिममें भी अभीतक वंशपरम्परागत और रुचिभेदको एकत्वमें मिलाकर काम करनेकी व्यवस्था ठीक नहीं की जा सका है जिससे सामाजिक संगठन पूर्णताके साथ चल सके।

एक बात और है जिसपर ध्यान आकृष्ट करना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है। यद्यपि कर्मणा एक प्रकारका अनवस्थित पर आवश्यक प्रतिबन्ध समाजको एक सूत्रमें बांधनेके लिये बना है पर पश्चिम या पूर्वमें मनुष्यको कार्यमें परिणत

करनेके लिये जो शक्ति या कारण उत्साहित या उत्तेजित करती है उसमें स्फूर्ति लानेके लिये कोई विभाग नहीं है और न उसके पूरा करनेकी कोई व्यवस्था है। यही प्रधान कारण है कि आज-कल जाति जातिमें परस्पर घृणा, द्वेष, ईर्ष्या तथा झगड़े उत्पन्न हो गये हैं जिसका राष्ट्रीय शान्तिपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है और यदि इसका शीघ्र ही कोई प्रतिकार न किया गया तो इससे जो जातीय युद्ध उत्पन्न होगा उसका बुरा प्रभाव गत यूरोपीय सैनिक संग्रामसे कहीं विकट और संकटापन्न होगा जिसका कटुफल अभी रूस भोग ही रहा है।

सामाजिक जीर्णोद्धारके लिये अनेक उपाय बताये जा रहे हैं। कुछ लोगोंका कहना है किसमाजकी व्यवस्था प्रत्यक्ष प्रमाण और व्यवहारिक ज्ञानके आधारपर होनी चाहिये। यदि यह सम्भव है तो फिर किसी बातकी आवश्यकता नहीं रह जाती और यह नरक भूमि तुरत पुण्यभूमि बन जायगी। पर मानव समाजमें इस प्रकारका घोर परिवर्तन यदि असम्भव नहीं तो सहसा सम्भव भी नहीं है। दूसरे लोग, जिन्हें हम व्यवहारिक राजनीति-दक्ष कह सकते हैं और चतुर नेता हैं उनका कहना है कि सामाजिक संगठन और सुव्यवस्थाके लिये केवल जीवनकी आवश्यक वस्तुओंको समरूपसे विभाजन करनेसे ही काम चल जायगा। उनके प्रयासका फल, आजतक तो केवल निष्फल और निष्प्रयोजन हड़तालोंकी भरमार, कामके घंटेकी कमी, मजूरीमें बढ़ती और साथ ही साथ वस्तुओंके मूल्य और करोंमें वृद्धिका होना है

जिसका परिणाम फिर हड़ताल समझौता, वेतन वृद्धि आदि तथा वस्तुओंके मूल्यकी वृद्धि और: कर वृद्धि है। इसके कारण इस तरहका विषैला चक्र सदा चलता रहेगा और एक दिन वह आवेगा कि घुन लगकर सबके सब एक साथ गिर पड़ेंगे और वेकार हो जायंगे।

प्राचीन व्यवस्थामें मानसिक व्यवस्थाके अनुसार ही व्यवहारिक और स्वार्थकी दृष्टिसे नियम बनाया गया था। उस नियममें किसीके लिये नितान्त स्वार्थी बननेका स्थान नहीं था। उसमें स्वार्थकी सीमा थी। उसमें विद्वानोंके लिये नियम था—ठीक है, आपकी प्रतिष्ठा की जायगी, पर उसके लिये आपको अतिशय उदारताके साथ सबमें ज्ञानका प्रचार करना होगा और अधिकार, शक्ति, द्रव्य और आहार विहारसे आपका कोई संबंध नहीं रहेगा।" क्षत्रियोंके लिये नियम था—आप शक्ति चाहते हैं, आपको शक्ति मिलेगी पर उसका प्रयोग आपको विवेकके साथ करना होगा। 'सद्की रक्षा और असद्का नाश' की जिम्मेदारी आप पर रहेगी। आर्तों और शरणागतोंकी रक्षाका भार आपपर रहेगा। पर अपनी बड़प्पन या मर्यादा अथवा किसी प्रकारकी अभिलाषाकी पूर्ति तथा शक्ति दिखलानेके लिये आप इसका प्रयोग नहीं कीजियेगा।" वैश्योंके लिये नियम था—आप धन चाहते हैं तो आपको धन मिलेगा पर इसके संग्रहमें आपको बेइमानी, धोखा या दगाबाजी नहीं करनी होगी, किसीको ठगकर रुपया नहीं बटोरना होगा

और अर्जित धनका अधिक भाग आपको सत्कर्ममें लगाना होगा, जैसे सार्वजनिक लाभदायक काम, दान, सार्वजनिक उपयोगी संस्था और साथ ही साथ सब वर्णोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिका आपको प्रबन्ध करना होगा पर उसमें आपको अधिक लाभ नहीं उठाना होगा। इस काममें आपको मान, मर्यादा, अधिकार और विलासके लिये स्थान न होगा।" शूद्रोंके लिये नियम था—मनमाना खेल तमाशा करो, तुम्हारे अन्न वस्त्रकी व्यवस्था करदो जायगी पर तुम्हें सेवा कर्म स्वीकार करना पड़ेगा और अधिकार या धनकी लिप्सा त्यागना पड़ेगा।"

यही कारण है कि इस वर्ण व्यवस्थाकी प्रथाको न उठाकर मानवी प्राकृतिक अभिलाषाओंके अनुसार, उनके कामके अनुसार उनका बटवारा कर देना चाहिये। इस तरहके विभाजनमें केवल श्रम विभाग नहीं होना चाहिये बल्कि अधिकार और कर्तव्यका, विशिष्टताओं और जिम्मेदारियोंका, योग्यताओं और अयोग्यताओंका, भी साथ ही साथ विभाजन होना चाहिये। जिस प्रकार अन्य मानवी इच्छाओं और अभिलाषाओंको—जिनका विवरण फौजदारीके कानूनोंमें दिया गया है—रोकनेमें किसी तरहकी कठिनाई नहीं प्रतीत होती, इसी प्रकार इसको (वर्ण-व्यवस्थाको) नियंत्रित करनेमें भी किसी तरहकी कठिनाई नहीं उपस्थित हो सकती क्योंकि प्रत्येक नियममें मानवी इच्छाओंको प्रतिबन्धित या नियन्त्रित करनेका अधिकार रहता है।

कुछ लोगोंका अनुमान है कि यदि इस प्रकारसे विभाजन किया जाय अर्थात् वर्ण व्यवस्था प्राकृतिक अभिलाषाओं तथा उसके अनुरूप पुरस्कारके आधारपर हो और साथ ही साथ तदनुरूप पेशेकी शिक्षाकी भी व्यवस्था हो तो इसका परिणाम समाजके लिये अतीव सुखदायी हो। फिर वर्ण व्यवस्था शब्द अपने प्राचीन विलुप्त अर्थको सार्थक कर सकेगा और अपनी सरलता तथा उपयोगिताको स्थापित करनेमें पुनः समर्थ होगा। इससे प्रत्येक व्यक्तिको अपने इच्छानुरूप काम पसन्द कर लेनेका पूरा अवसर मिलेगा और उसीके अनुसार उसकी जाति कायम की जायगी और फिर वह उसी जातिका होकर रहेगा। दूसरी जातिमें जानेका उसे आजन्म अवसर नहीं मिलेगा। इस प्रकार वर्ण संकरका भय, मर्यादा, अधिकार उपयोगकी आशंका जाती रहेगी और अपने काम काजको समाज बन्धनके अन्तर्गत रहकर चलानेकी आकांक्षा बढ़ जायगी। मर्यादा और अधिकारका आधार धन और सम्पत्ति नहीं रहेगा इसलिये उसके लिये तृष्णा मिट जायगी। अति निर्धनता और अतिदरिद्रता दूर हो जायगी और जीवनकी आवश्यकताओंके अनुरूप बटवारा आरम्भहो जायगा। गृह कलह, राष्ट्रीयकलह, मालिक मजूरका झगड़ा, नरनारीका संघर्ष, पूंजी और श्रमका झगड़ा, पदाधि- कारी और गैरपदाधिकारीका झगड़ा, साधारण जन और विशिष्ट पुरुषोंका झगड़ा, राष्ट्र राष्ट्रका झगड़ा, जाति जातिका झगड़ा,—इन सब झगड़ोंका कारण; अभिप्राय और प्रेरणा एक तरहसे दूर हो जायगी।

यही स्वाभाविक भी है। यह इतना स्वाभाविक है कि मानव समाज आपसे आप अपना विभाजन चार वर्गों में कर लेती है। पर इस तरहके विभाजनमें शान्ति नहीं मिलती। इसका कारण यह है कि यह विभाजन विना समझे बूझे किया जाता है। प्रधान पुरोहित जो कि सबसे बड़ा विद्वान ही हो सकता है—सबसे अधिक प्रतिष्ठा पाता है। उदाहरणके लिये, कन्टर-बरीके आर्च विशप इङ्गलैण्डमें सबसे प्रधान पुरोहित माने जाते हैं। राजा और राजवंशके बाद इङ्गलैण्डमें उन्हींकी प्रतिष्ठा है। राजा, अर्थात् शान्तिके समयका सबसे प्रधान कार्यकर्ता और संग्रामिक सेनापतिको प्रत्येक देशमें यथासमय सबसे अधिक अधिकार रहता है। प्रत्येक देशमें सौदागर ही सबसे धनी हो सकता है। राजा भी धनमें उसकी प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। और मजूरोंके अतिरिक्त परिश्रम भी अन्य किसीसे अत्यन्त अधिक नहीं हो सकता। मध्ययुगमें जिस समय रोमन कैथ-लिक धर्मका विस्तृत प्रचार था यूरोपमें इस तरहके विभाजनका अधिकाधिक प्रचार था—जैसा कि इस देशमें हाल तक होता आया है। प्राचीन समयमें यह देश इस तरहके विभाजनका पूर्णतः पालन करता था। पर आज इस प्राकृतिक विभाजनके अन्तर्गत जो महत्व था और जिसके कारण लोग इसकी प्रतिष्ठा करते रहे उसका सर्वथा लोप हो गया।

इस व्यवस्थाको स्वीकार करना, व्यावहारिक रूपसे इसका प्रयोग करना, नैसर्गिक मानकर इसे कानून या अन्य प्रकारके

प्रतिबन्ध द्वारा इसे स्वीकृत करना या कराना, उतना ही सम्भव, उपयोगी और आवश्यक है जितना कि वैवाहिक प्रथा है।

थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि विवाहकी प्रथा उठा दी जाय। अब अनुमान कीजिये कि समाजमें कितना गोरख-धन्धा, कितनी गड़बड़ी, कैसा संग्राम गार्हस्थ्यजीवनमें मच जायगा। बालकोंका पालन-पोषण, सम्पत्तिकी देख रेख और प्रबन्धमें कैसा उत्पात मच जायगा। केवल वर्ण विभाजनका आधार कार्यकी क्षमता और नैसर्गिक झुकावको स्वीकार कर वर्ण व्यवस्था ठीक न कर देनेसे उसी तरहका संग्राम आज व्यवसायिक, कारबारमें, आर्थिक, राजनैतिक तथा शिक्षा विभागमें मचा हुआ है। जिस तरह शादी विवाहसे गृहस्थीमें एक तरहकी शान्ति और समताका साम्राज्य हो जाता है उसी प्रकार इस विभाजनसे समाजमें भी पूरी तरहकी शान्तिकी सम्भावना है।

आजकल अपने लाभके लिये लोग दूसरोंको धोखा देकर अनुचित लाभ उठाते हैं, अधिकारका दुरुपयोग करते हैं, मान मर्यादा तथा प्रतिष्ठाको बेंच देते और अनेक तरहके उचित तथा अनुचित आनन्द और विलासिताके शिकार बनते हैं। उसका एक मात्र कारण यही है कि प्रत्येक मनुष्यको पूरी स्वतन्त्रता है कि अपनी इच्छा, प्रवृत्ति और सुविधा तथा लाभके अनुसार चारों बातोंको धारण कर लेता है और रुपयेके बल अन्य तीन बातोंको अपना दास बनाये रखना चाहता है। इसका परिणाम यह हुआ

है कि लक्ष्मीकी उपासना और उनकी कद्र बढ़ गई और उसका परिणाम यह हुआ कि जीवनकी आवश्यकताओंका विषम रूपसे बटवारा हुआ है। यदि यह दुर्व्यवस्था दूर कर दी जाय और जिस प्रकार मनुष्यको वैवाहिक प्रतिबन्धके अनुसार एक पत्नी-त्वमें प्रवृत्त होकर रहना पड़ता है उसी तरह यदि सामाजिक नियमके अनुसार उसे एक व्यवसायको स्वीकार करनेका प्रतिबन्ध हो जाय तो सारी बुराई दूर हो जाय और समाज संगठित हो जाय, मानव समाज सुव्यवस्थित हो जायऔर संसार;समुन्नत हो जाय।

यदि यह विचार ;ठीक जचें, यदि इससे अच्छे सुधारकी सम्भावना प्रतीत हो तो हम लोगोंको उचित है कि हमलोग इसके प्रचारकी चेष्टा करें और भ्रम मूलक जातपातकी व्यवस्थाके स्थानपर इस उपकारी व्यवस्थाका प्रचार करें। इसके लिये सबसे सहज उपाय यही है कि हमें पहले प्रत्येक जातियोंके अन्तर्गत वर्गोंको एकमें मिलाकर वर्ग वर्गका भेद भाव दूर करना चाहिये और वर्ण व्यवस्थाकी जन्मना प्रथाको दूरकर कर्मणाके प्रथाका प्रचार करना चाहिये और साथ ही साथ शिक्षाका रूप भी बदलकर उसे जीवनके कार्यके अनुरूप बनाना चाहिये।

यदि विचार कर देखा जाय तो वर्ण व्यवस्था केवल कर्मके लिये ही बनायी गयी थी अर्थात् 'कर्मणा' इसका आधार था। पर आज कल इसका सर्वथा लोप हो गया है जिससे आजकल

अनेक तरहके भ्रमात्मक विचार, भाव और व्यवहार कार्य क्रममें आगये हैं। जान चली गई है पर ठठरी अब भी मौजूद है। प्रेमके जिस सूत्रने समाजके प्रत्येक व्यक्तिको दृढ़ और सुसंगठित बन्धनमें बांध रखा था, उसका तो लोप हो गया अथवा वह जल गया अब केवल ऐंठन रह गई है जो कि उद्दण्डता, ईर्ष्या और विशेष अधिकारोंका दम भर रही है।

आजकल इस देशकी क्या अवस्था है। सभी वर्णमें, सभी जातिमें सब तरहके लोग पाये जाते हैं अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णोंमें चारों फिरकेके लोग जैसे, पण्डित, योधा, व्यवसायी, सौदागर और कुली मजूर पाये जाते हैं। अन्तर्जातीय विवाह तथा प्रीति भोजनके अतिरिक्त अन्य सब बातोंमें सबलोग अपनेको दूसरोंसे उच्च और उत्कृष्ट मानते हैं। यही जन्मना वर्ण व्यवस्थाका फल है जिसका कुपरिणाम हमलोग प्रतिदिन भोग रहे हैं।

वर्ण व्यवस्थाके जो गुण बतलाये जाते हैं वे तभी चरितार्थ हो सकते हैं जब प्रत्येक वर्ण अपना अपना कर्तव्य पूरी तरहसे पालन करे और अपने अपने अधिकारों तथा कर्तव्योंकी रक्षा करते हुए दूसरोंके अधिकारोंसे जलन न करे और न अपने कर्तव्यका बोझ दूसरोंपर लाद दे जैसा कि सम्प्रति हो रहा है। पर यह तभी सम्भव है जब 'परम्परागत' बातोंको हम छोडनेके लिये तैयार हो जांय। यद्यपि परम्परागत व्यवस्थाका 'मनस' पर प्रभाव अवश्य पड़ता है और अकारण प्रवृत्तिके परिवर्तनका भी कम प्रभाव नहीं पड़त

तथापि देखनेमें आया है कि इसके कारण पिता पुत्रकी वृत्ति, झुकाव, कार्य क्षमता तथा अधिकार और कर्तव्यमें मतभेद हो जाता है। बहुधा कहा जाता है कि वर्ण व्यवस्थाके ही प्रसाद-से हिन्दू जाति अब तक जीवित रह सकी है। हम भी किसी हद तक इसे स्वीकार करते हैं। पर इसका एक विशेष कारण है। जहाँतक प्रत्येक वर्णके लोग अपने अधिकार और कर्तव्यकी रक्षा कर सके हैं, उसके ही अनुसार चले हैं वहां एक तो इसने हिन्दूजातिकी उचित सहायता की है और उसकी उचित प्रशंसा की जा सकती है पर जहां अन्तरंग मतभेद, दोषारोपण, ईर्ष्या और द्वेषको जन्म देकर इसने हिन्दू जातिके पतनमें, उसे गुलाम बनाकर दासताकी कठिन शृंखलामें बांध रखनेके लिये सहायता की है, जहां परम्परागत अधिकार और कर्त-व्यकी अवमाननाने बुरे प्रभावको जन्म दिया है, वहां इसकी जितनी निन्दा की जाय थोड़ी है। यह कहनेसे क्या अभिप्राय निकलता है कि वर्णव्यवस्थाने हिन्दू जातिको जीवित रखा? क्या यदि वर्ण व्यवस्थाको उठा दिया जाय तो हिन्दू कहलाने वाली जनताका अन्त हो जायगा? यह विचार भ्रमपूर्ण है। और वास्तवमें जो कुछ हो रहा है वह बिलकुल उलटा है। जिनमें जातपांत तथा वर्ण व्यवस्थाकी चलन नहीं है उनकी तो सीमातीत वृद्धि हो रही है। पर हिन्दू जाति दिन प्रति दिन घटती जा रही है। तो इसका यही अर्थ ठीक मालूम होता है कि हिन्दू संस्कृति, आचार, विचार और सभ्यताका लोप हो जायगा,

जिस प्रकार यूनान, रोम, ईराक, मिस्र और चाल्डियाकी प्राचीन सभ्यताका लोप हो गया यद्यपि उनकी औलाद अबतक जीवित है। अब प्रश्न यह उठता है कि जो स्वरूप वर्ण व्यव-स्थाका इस समय है, जिस रूपमें वह/प्रचलित है उसकी रक्षा करना उपयोगी और आवश्यक है पर उससे अनेक तरहकी सामाजिक हानियां हो रही हैं और इसमें सुधारकी आवश्य-कता है ?

हमलोग कार्य कारणका संबंध ठीक तरहसे नहीं समझ रहे हैं सदा उलटा समझ रहे हैं और कारणको कार्यके सामने रखना चाहते हैं। यह न कहकर कि अमुक व्यक्ति धर्मात्मा है, विद्वान है, बुद्धिमान है और त्यागी है इसलिये यह ब्राह्मण है; अमुक व्यक्ति कार्यदक्ष है, उत्साही है, साहसी है, शासनकी योग्यता रखता है, दीनोंका प्रतिपालक और सहायक है, इस-लिये यह क्षत्रिय है; अमुक व्यक्तिमें व्यवसायिक योग्यता और चतुरता है, दान शीलता है, इसलिये वैश्य है, अमुक व्यक्ति खिलवाड़ी है पर लगानेसे काम काज कर सकता है इससे यह शूद्र है—यह न कहकर हमलोग उलटे ही कहते हैं कि अमुक व्यक्ति ब्राह्मण है इसलिये यह विद्या बुद्धि और त्यागका अधि-कारी है; अमुक व्यक्ति जन्मना क्षत्रिय है इसलिये यह वीर है; योद्धा है। अमुक व्यक्ति वैश्य है, इसलिये यह धनी है, अमुक व्यक्ति शूद्र है इसलिये इसे आजन्म दासतामें ही जीवन बिताना होगा, चाहे इसमें किसी अन्य प्रकारकी भी योग्यता क्यों न हो।

यही स्वाभाविक और प्राकृतिक है। पर एक तरफ तो हम लोगोंने इसका रूप बदल दिया है अर्थात् उलटे तौरसे इसका प्रयोग करने लगे हैं दूसरे अधिकारकी तरफ तो हमलोग प्रबल वेगसे बढ़ते हैं पर कर्तव्यका नाम तक नहीं लेते, उसको बला समझकर सदा टालते रहनेकी चेष्टा करते हैं, इससे बड़ी बुराई फैल रही है। ईर्ष्या और द्वेष बढ़ता जा रहा है, जीवन संग्राम दिन प्रतिदिन भीषणरूप धारण करता जा रहा है। परस्पर विद्वेष, असन्तोष और अशान्तिकी मात्रा बढ़ती जा रही है जिससे सबमें दुर्बलता आ गई है।

इस ईर्ष्या, द्वेष और विद्रोहकी मात्रा कितनी बढ़ गई है इसको बतलानेकी आवश्यकता नहीं। यहां पर कुछ देशी राजाओंकी अवस्थाका वर्णन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। राजा जन्मना शूद्र है। इसलिये उसे धर्म कर्मका अधिकार नहीं है। कर्मणा उन्होंने क्षत्रिय वृत्ति ग्रहण कर रखी है फिर भी राज्यके पोषित पुरोहित भी धार्मिक कार्योंमें उन्हे अधिकार नहीं देता और न आप सम्मिलित होता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राज्यकी ओरसे पण्डितोंकी मर्यादा घटती जा रही है, उनके भरण पोषणकी व्यवस्था नहीं होती और जिस संस्कृत विद्याको आधार मानकर ये लोग इतनी हठ वादितामें पड़े हैं उसका भी धीरे धीरे लोप होता जा रहा है।

पर यदि स्वाभाविक रीतिके अनुसार चला जाय, यदि वर्ण व्यवस्थाका उचित रूपसे प्रयोग किया जाय अर्थात् कर्मणा

जैसा कि पहले जमानेमें था, क्योंकि इसके शब्दार्थसे यही बोध होता है—यदि मनुष्यकी मानसिक प्रवृत्ति और झुकावके अनुसार ही उसकी गति निर्धारित कर उसे जातिके बन्धनमें बांधा जाय, यदि जन्मनामें केवल स्वाभाविकताका ही ध्यान रहे, आवश्यकताका नहीं तो परस्पर कलह और ईर्ष्या द्वेषका अन्त हो जाय और मानव धर्मका विस्तार उचित रीतिसे सारे संसारमें फैल जाय। आदिमनु—जिसे अङ्गरेजीमें "ऐडम और ईव" तथा "उर्दूमें" आदम और हौवा कहते हैं, जो जातिके जन्मदाता हैं, जिन्होंने वर्ण व्यवस्थाको जन्म दिया, उनके हृदयमें केवल उन मुट्ठीभर मनुष्योंके कल्याणकी चिन्ता नहीं थी जो इस विस्तृत देशके उत्तर पश्चिमी स्थलपर निवास करते हैं बल्कि उन्हें अपनी समग्र सन्ततिके कल्याणकी चिन्ता थी जो वंश परम्परासे इस विश्वको बसाते आये हैं।

इस व्यवस्थाके अनुसार कोई कारण नहीं कि हमलोग ईसाई, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; मुसलमान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; बुद्ध और पारसी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र क्यों न मानें अर्थात् सभी फिर्केमें कार्य क्षमता और व्यवस्थाके अनुसार चारो वर्णोंका समावेश करें। यदि हमलोग यह कर सकें तो भिन्न भिन्न फिरकेवालोंको एक सूत्रमें बांधनेका इससे बढ़कर दूसरा कोई शस्त्र नहीं हो सकता। ऐसी अवस्थामें जात पांतकी हठवादिता उठ जायगी और सभी जातिके विद्वान ब्राह्मण सम्मिलित होकर सद्भावको बढ़ावेंगे और प्रगाढ़ विद्वत्ता तथा

सुयोग्य नियमकी व्यवस्था करेंगे जिससे सन्तान मात्रका कल्याण हो। इसी तरह सभी जातिके क्षत्रिय बिना भेदभावके आपसमें मिलेंगे, संसारके कल्याणकी व्यवस्था करेंगे, बुराईका नाश करेंगे और संसारमें शान्ति स्थापित करनेकी व्यवस्था करेंगे। इसी तरह संसार भरके वैश्य एकत्र होकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसायिक व्यवस्थाकी योजना करेंगे जिससे संसार भरके प्राणीकी जीवन यात्रा सुखमय बन जाय। इसी तरह सभी शूद्र सम्मिलित होकर कार्य करेंगे और जीवनकी आवश्यकताओंको अधिकाधिक उत्पन्न करनेकी चेष्टा करेंगे जिसका उपभोग संसारके सभी प्राणी कर सकेंगे। इस व्यवस्थाके अनुसार हमलोग मानव समाजका एक संगठन चरितार्थ कर सकेंगे।

यह करनेके लिये अन्तर्जातीय खान, पान और विवाह शादीका प्रश्न किसी भी अवस्थामें नहीं उठता। यह व्यक्ति विशेषकी मानसिक प्रवृत्तिपर निर्भर है। इससे केवल तमाम देशमें तथा जातिमें काम काजके लिहाजसे एक नाम करणहोगा। इसका परिणाम यह होगा कि वर्ण व्यवस्थाका महत्व पूर्ण रूपसे काम करनेकी योग्यता तथा तत्परताके अनुसार चरितार्थ हो जायगा और परस्पर भ्रातृभावका सञ्चार होगा। यह तो मानी हुई बात है कि नाम, आकार, भाषा और वेषमें बड़ी शक्ति है। वेदान्त तो कमसे कम यही कहता है कि समग्र विश्वनाम और रूपका ही भ्रम जाल है और एकनाम, एक भाषा, एक वेष, एक पेशासे एक भाव, एक विचार, एक स्वार्थ एक कार्यताका प्रादुर्भाव होता है।

सम्भव है ये भाव आप लोगोंको विचित्र मालूम हों। पर ये मेरे हृदयके सच्चे भाव हैं। सम्भव है कि मेरे भावको समझनेमें भूल की जाय क्योंकि इसका भी मुझे कुछ अनुभव है। एक वार मुझे किसी संस्कृत विद्यालयके पाठ्य क्रमको ठीक करते समय इन्हीं भावोंको स्थान देनेका अवसर पड़ा था। मैंने अपने भावोंको साफ साफ प्रगट करते लिखा था कि मेरा अभिप्राय अन्तर्जातीय खान पान तथा विवाह शादीसे कदापि नहीं है। मेरा अभिप्राय केवल काम काजके लिहाजसे भ्रातृभावका विस्तार करने तथा प्राचीन धर्मके क्षेत्रको विस्तीर्ण करनेका है जो इस समय अतीव संकुचित हो गया है। इसका परिणाम क्या हुआ? जिसका मैंने स्वप्नमें भी अनुमान नहीं किया था। विचारकी संकीर्णता और भी बढ़ गई और ब्राह्मण तथा ब्राह्मणोत्तरका झगड़ा इतने प्रबल वेगसे बढ़ गया और उसने इतना भीषणरूप धारण कर लिया कि जिसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। इसके लिये मुझे बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ। पर मैं भी लाचार था क्योंकि मेरा दृढ़ विश्वास है कि ये भाव सच हैं, इसलिये वर्तमान युगकी जनताके सामने इन भावोंको रखना मैं अपना परम धर्म समझता हूं। मेरी धारणा है कि यदि ये विचार कार्यरूपमें लाये जांय तो केवल भारतकी ही नहीं बल्कि सारे मानव संसारकी इसमें मुक्ति है जो कि अन्य उपायोंसे, जैसे राजनीतिक कल, बल, छल और चालें सुधार तथा नियमसे साध्य नहीं हैं। मैं इतना और कह देना चाहता हूं कि

ये मेरे स्वकीय भाव नहीं हैं बल्कि ये प्राचीन समयके उन अखण्ड विद्वानोंके मत हैं जिन्होंने दिव्य चक्षुसे मानव समाज-की हित-कामनाकी कल्पना पहलेसे ही करके ऐसे नियम बनाये थे। मैं तो केवल उन नियमों और उन भावनाओंको संग्रहीत कर मानव समाजके सामने रखनेकी चेष्टा कर रहा हूं।

जो लोग यह कहते हैं कि वर्ण व्यवस्थाकी प्रचलित वर्त-मान पद्धति मनुस्मृतिके वाक्योंके अनुकूल है उनसे मुझे केवल इतना ही कहना है कि मनु भगवानने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि मानवसमाजका ऐसा एक भी प्राणी नहीं है जो एकान्त एक वर्णमें समाविष्ट न हो। मनु भगवानने यहां तक लिखा है कि अधिकार तथा कर्तव्यका विभाग जीवन यात्राके उपकरण, उपहार तथा पारितोषक जो कि उसने एक मनुष्य, एक देश या एक जातिके लिये बनाया है; वह सब देश, सब समाज और सब जातिके लिये एक है क्योंकि जातीयता और देश, कालका भेदभाव इनपर किसी तरहका असर नहीं डाल सकता और वर्ण व्यवस्था व्यक्तिकी विशेषताके अनुसार होनी चाहिये।*

ईसाई नामका प्रादुर्भाव दो हजार वर्ष और मुसलमान नामका प्रादुर्भाव १४०० वर्षसे है पर हिन्दू नामकी उत्पत्ति तो और भी बादमें, केवल एक जाति विशेषको इन दोनोंसे अलग रखनेके हेतु हुई है। इस जातिका आदि नाम कुछ और

* मनु अध्याय २, श्लोक २० अध्याय १० श्लोक ६५, ७० ७१।

ही था जैसे, मानव, आर्य्य अथवा कृषक। समय और कालमें ये नाम भी लुप्त हो जायंगे पर मनुष्य समाज सदा रहा है और रहता जायगा। यदि मनुकी उक्तियोंका ठीक ठीक अर्थ लगाया जाय तो उससे स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण व्यवस्थाके लिये उनका क्या मत था और वे किस आधारपर वर्ण व्यवस्थाको चलाना चाहते थे।

१०—अछूत जातियां

यदि वर्ण व्यवस्थाका उपरोक्तरूप स्वीकार कर लिया जाय तो अछूतोंका प्रश्न भी सहजमें ही हल हो जाता है। यदि एक बार भी रीति रिवाजको किनारे रखकर विचार विवेकसे काम लिया जाय तो व्यक्त हो जायगा कि यह छूआछूतकी प्रथा कारण विशेष और अवस्था विशेषके ही कारण है। जिस तरह कारण विशेषसे उच्च कुलके लोग कुछ समयके लिये अछूत हो सकते हैं—जैसे मरनी आदिके कारण और मासिक धर्मयुक्त स्त्रियां—और जब तक वह कारण दूर नहीं हो जाता अछूते बने रहते हैं उसी तरह कोई भी वर्ग तब तक अछूता बना रहेगा जब तक कोई कारण विशेषके प्रतिबन्धमें वह पड़ा है। और वह कारण वर्तमान है। यदि कोई भी जाति या वर्ग सफाईसे रहता है, गन्दगीसे परहेज करता है तो कोई कारण नहीं है कि हम उसकी अवस्था और स्थितिके अनुरूप उसका आदर न करें।

इस संबंधमें एक बात सदा ध्यानमें रखने योग्य है। अछू-

तोंका उद्धार करनेके लिये सुधारकी योजना करते समय मोहक शब्दोंके फेरमें पड़कर हमलोग ऐसा कोई काम न कर बैठें जिससे अछूतोंके उद्धारके बदले ऊंच जातियोंको भी नीचे घसीट लावें, इससे समाजमें इतना घोर विप्लव मच जायगा कि इस सुधारका महत्व तो छिप जायगा और जीवन संघर्ष विकट रूपसे प्रगट होगा। इसका परिणाम यह होगा कि जो पेशा वे लोग आजतक जातिपरम्परासे करते आये हैं और जहां घृणा या नीच दृष्टिसे न देखे जानेपर सन्तुष्ट रहे हैं वहीं वे जबर्दस्ती और बलात् उसी कामको करनेके लिये बाध्य किये जायंगे।

समाजकी वृद्धि और शान्तिके लिये प्रत्येक जातिका एक दूसरेके प्रति सदिच्छा और सद्भाव नितान्त आवश्यक है। परम्परागत पेशे इस शान्ति और सन्तोष प्रदानमें बड़े सहायक होते हैं क्योंकि उनसे अनेक तरहकी चिन्तायें और क्लेशको सिरपर नहीं ओढ़ना पड़ता जो आज कल पेशोंको चुननेमें अभिभावक तथा नयी सन्ततिको उठाना पड़ता है। यदि इस सामाजिक योजनाके अनुसार—जिसका हमलोग प्रत्येक घरमें प्रचार करना चाहते हैं—इस बातका भय है कि नयी सन्ततिको भविष्यमें दरिद्रताके घोर विप्लवके कारण नये पेशोंको अख्तियार करना पड़ेगा ताकि अछूत जातियां असन्तुष्ट होकर अपने वर्तमान कारबारको छोड़ देंगी—तो हमलोग उपकारके बदले देशका बड़ा भारी अपकार करेंगे क्योंकि हमलोग इस

देशमें भी पश्चिमके उस प्रथाका प्रचार करेंगे जहां प्रत्येक समाजके लोग जिन्हें जीविकाका कोई निर्दिष्ट साधन नहीं मिलता उन पेशोंको ग्रहण करते हैं जिसको कोई भी व्यक्ति यथासम्भव ग्रहण करना स्वीकार नहीं करेगा।

पश्चिममें आर्थिक प्रश्न विकट रूपमें उपस्थित है। इसका असर पुरुषों और स्त्रियों दोनोंपर ही पड़ रहा है। गरीबीके कारण हजारों स्त्रियां उन देशोंमें व्यभिचारिणी बनती जा रही हैं। इसमें उनकी सामाजिक दुर्व्यवस्था भी सहायक हो रही है। क्योंकि वहांके प्रथाके अनुसार लाखों स्त्रियां अविवाहित और अरक्षित छोड़ दी जाती हैं। और मानसिक विकार इन कठिनाइयों और बुराइयोंके प्रसारमें और भी अधिक सहायक हुआ है। क्योंकि पश्चिमके लोगोंको ऊंच, नीच, पतित, मर्यादित पेशोंका बहुत विचार रहता है। भारतमें इस दुरवस्थाका एक मात्र कारण लोगोंके मानसिक विचारमें भ्रम है। क्योंकि आर्थिक दुरवस्थाका यहां कम प्रभाव पड़ता है, क्योंकि आर्थिक प्रश्न यहां प्रायः सबके लिये—सब वर्गके लिये—एकसा है। केवल इस मानसिक भ्रमके कारण जो लोग किसी पेशेमें अब तक सन्तुष्ट थे उसे भी धीरे धीरे छोड़ते चले जा रहे हैं क्योंकि उन्हें वही पेशा आज दिन नीच और हेय प्रतीत होने लगा है। पर यदि विचारकर देखा जाय तो जिसे कोई भी मनुष्य कर सकता है वह नीच या हेय कभी नहीं हो सकता और यही कारण है कि सामाजिक शृंखला ढीली पड़ती जा रही है क्योंकि इसी

विचारके कारण उच्च कुलकी स्त्रियां भी कभी घोर संकटमें अपनेको डाल देती हैं।

तो इस समय इस देशकी क्या आवश्यकता है। परम्परागत वर्ण व्यवस्थाकी हठवादितामें उदारता दिखलानी चाहिये न कि जात पातकी प्रथाका सर्वथा लोप होना चाहिये अर्थात् सब वर्गका, सब पेशेवालोंका मानसिक विचार उदारपूर्ण होना चाहिये और एक दूसरेके साथ भ्रातृवत व्यवहार करना चाहिये। यही 'मनस' विज्ञानका तत्व है। अछूत जातियोंके उद्धारका यही अभिप्राय है और न कि उन्हें उनके पेशेसे हटाकर दूसरे पेशेमें लगाना, क्योंकि जो काम वे कर रहे हैं उसे किसी न किसीको करना ही पड़ेगा और जो व्यक्ति वहां परम्परासे एक कामको करता आया है वह उस कामको अधिक सुविधा और सरलताके साथ कर सकता है। आवश्यकता इस बातकी है कि परिश्रमकी अधिकता और कठोरता, और घृणाके भाव प्रत्येक पेशोंमेंसे निकल जाने चाहिये और जहांतक संभव हो साफ सुथरा रहनेकी उनमें आदत डाली जाय और उन्हें उचित शिक्षा दी जाय—जैसा कि प्राचीन युगमें कथा वार्ता, अवकाश आदि उपायों द्वारा किया जाता था—उनके भोजन और वस्त्रकी पूरी व्यवस्था की जाय, विवाह, जन्म आदिके अवसरोंपर उन्हें खास तरहसे उपहार और पुरस्कार दिया जाय और उन्हें छुट्टियां दी जांय तथा उन अवसरोंपर दूसरोंसे काम लिया जाय, और जैसा कि गावोंमें अब तक प्रचलित है भाइपका संबन्ध प्रदर्शित किया जाय।

११-अन्तर्जातीय भोजन और विवाह

वर्ण व्यवस्थाके साथ ही साथ अन्तर्जातीय भोजन और विवाहका भी प्रश्न उठता है। वर्तमान समयमें वर्ण व्यवस्थाका महत्व केवल इसीमें रह गया है कि मैं अमुक व्यक्तिके साथ रोटी और बेटीका सम्बंध नहीं रखूंगा। जिस तरह अन्य बातोंमें उसी तरह यहां भी कार्य और कारणको हमलोग उलटी तरहसे सोचने लगे हैं और विवेकसे काम नहीं लेते।

मनुष्यका शारीरिक संगठन, स्वास्थ्य, बल, सौन्दर्य, चारित्रिक और मानसिक विकासका होना भोजनपर निर्भर है, जातिका वैवाहिक संबंधपर। इसलिये रोटी बेटीके सम्बन्धमें नियम बनानेका यही आधार भूत कारण होना चाहिये क्योंकि व्यक्तित्व और जातीयताकी रक्षा तथा उसे नाश होनेसे बचानेके लिये ईश्वरने यह प्राकृतिक नियम बनाया है। उन नियमोंका केवलमात्र अभिप्राय यही है :—भोजनमें लापरवाह और विवाहमें अविवेकी न हो। अच्छी आदतें डालो और उन्हीं अच्छी आदतवालोंके साथ खान पानका सम्बन्ध रखो। शरीर, मन तथा इन्द्रियोंका पूर्ण रूपसे, विशेष प्रकारसे संगठन करो और उन्हीं लोगोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध करो जो तुम्हारे अनुरूप हों। यह सब बात वर्णव्यवस्थाके अन्तर्गत कर दी गई है और यद्यपि जात पातका पूरा ख्याल रखा जाता है पर वैवाहिक सम्बन्धमें प्रायः करके अयोग्य जोड़ीका संबंध किया जाता

है और इसपर जरा भी ध्यान नहीं दिया जाता कि प्राचीन या आधुनिक समयमें जातीय सद्दाचारका क्या अभिप्राय था। और खान पानमें भी वही बात है। यदि जात एक है तो अन्य असमानताओंके रहते भी खान पानका सम्बन्ध रहेगा पर रुचि और विचार एक होते हुए भी भाई जात पातमें भेद हुआ तो खान पानका सम्बन्ध एक नहीं हो सकता चाहे उससे कैसी भी बाधा या हानि क्यों न उत्पन्न होती हो।

पर समयके प्रभावसे खान पानमें तो विवेकसे काम लिया जाने लगा है। उसमेंकी बहुतसी हठवादिता उठ गई है। पर इसका कारण वैज्ञानिक विचार नहीं है बल्कि नये भावोंका प्रचार और नई जागृति। इसका अधिकांश श्रेय रेलवेको है। पर इससे एक बात और चिन्ताजनक हो रही है। ऊंचे वर्गके लोग खान पानमें जितने उदार होते चले जा रहे हैं नीचे वर्गके लोग उतने ही संकुचित विचारके होते जा रहे हैं।

वर्गोंके एकीकरणपर लिखते हुए स्वर्गीय लाला बैजनाथने एक बार लिखा था कि इस खान पानमें बहिष्कारकी प्रथाको पुष्ट करनेका कलंक सबसे कुलीन और सबसे नीच कहलानेवाली जातियोंको है। पर नयी रोशनी और शिक्षाके कारण ऊपरकी जातियां तो हठवादिता छोड़कर बहुत कुछ उदार होती चली जा रही हैं पर नीच जातियां अपना पैर और भी समेटती जा रही हैं। इसके कई कारण हैं, पहले तो नई शिक्षा और नये प्रकाशका उनपर कम असर पड़ा है और दूसरे

ऊपरके लोग उनके साथ भ्रातृभावका व्यवहार रखनेमें प्रायः उदासीनसे रहे हैं। दस वर्ष पहले जो नौकर जूठा वर्तन माजा करते थे और घरकी स्त्रियोंका वनाया खाना खाया करते थे, आज वे ही ब्राह्मणका वनाया भोजन भी स्वीकार नहीं करते। यही नहीं लोग जो दस वर्ष पहले जूठा वर्तन माजनेमें किसी तरहकी वाधा नहीं उपस्थित करते थे आज वे ही यह कहकर कि उनकी जातमें चलन नहीं है, उन कामोंको करनेसे इनकार करते हैं। वे कहते हैं कि उनकी जात उन्हें नहीं करने देती। इस तरह गृहस्थोंके मार्गमें अनेक तरहकी कठिनाइयां और वाधायें उपस्थित हो रही हैं। यदि कोई कम काम करके अधिक मजूरी चाहे तो यह वात सहजमें ही समझमें आ सकती है और उसे उचित वताया जा सकता है। पर यह तो समझमें ही नहीं आता कि एक किस्मका काम तो कर सकते हैं पर दूसरी तरहका काम नहीं कर सकते? इस देशमें जीवनकी साधारणसी साधारण वातपर जात पातका असर पड़ता है। वर्ण व्यवस्थाका दुरुपयोग इतने हद तक पहुंच गया है। इसका क्या परिणाम हो रहा है। जहां पहले एक नौकरसे काम चल जाता रहा अव वहां चार नौकरोंकी आवश्यकता है। या तो चार नौकर रखिये और चारोंको वैठाकर वेतन दीजिये या विना नौकरके रहिये और घरका सारा काम काज अपने आप कीजिये। जिससे अपना व्यवसाय चलानेमें अनेक तरहकी असुविधा हो और समयका वहुमूल्य तथा उपयोगी अंश इस तरह

नष्ट किया जाय। उधर नौकर भी पूरा काम न करनेसे पूरा वेतन नहीं पावेंगे और आधे पेट भोजनकर आलस्यमें दिन बितावेंगे पर कुल काम करके गृहस्थको खुशकर अपने आपको सुखी नहीं करेंगे।

इस तरह वर्ण व्यवस्थाका प्रयोग विध्यात्मक और समीकरण न होकर निषेधात्मक और बहिष्करण हो रहा है। उच्च वर्ग और नीच वर्ग दोनोंमें इस प्रकारके भाव स्थान करते जा रहे हैं कि हम अमुक काम नहीं करेंगे, हमारे अमुक अधिकार हैं, हमारी अमुक सीमा तक मर्यादा होनी चाहिये, हमें इतने हैसियत तक धन आदि विलासिताका साधन मिलना चाहिये। वर्तमान युगकी हड़तालें तथा अन्य प्रकारके मजूरोंके झगड़ेके यही कारण हैं। सामाजिक संगठन किसी समुचित निर्धारित प्रणालीके अनुसार नहीं हुआ है और अधिकारके लिये प्रत्येक पागल हो रहा है तथा कर्तव्यका पालन करनेमें सदा जी चुराता है।

१२---अन्तर्जातीय विवाहः पटेल बिल

अन्तर्जातीय विवाहके निमित्त यदि वर्ण व्यवस्थाके प्राचीनरूपके अनुसार काम किया गया होता तो आज पटेल और गौड बिलकी आवश्यकता न पड़ती। और यदि आज भी इसकी उपयोगिता और आवश्यकताको देखते हुए इसे स्वीकार कर लिया जाय तो देशमें जो घोर विरोध इसके विरुद्ध उठ रहा है वह न उठे। यद्यपि अनेक तरहके सुधार इसमें किये जा सकते हैं।

कितने ही प्रतिष्ठित और माननीय लोगोंने यह मत प्रगट किया है कि इस तरहके प्रश्नोंका निपटारा स्वयं जातिको कर लेना चाहिये और इसके लिये विदेशी व्यवस्थापककी सहायता लेना उचित नहीं। पर यदि गवेषणासे देखा जाय तो विदित होता है कि प्राचीन युगमें भी इस तरहके सामाजिक प्रश्न राज्यके ही अधीन थे। धर्मशास्त्र तथा स्मृतियोंके पाठसे इसका स्पष्ट पता लग जाता है। विदेशी व्यवस्थापकको इस तरहके प्रश्नोंपर विचार करनेके लिये सचेष्ट करना और जागृत सामाजिक विचारके अनुसार उन्हें इन प्रश्नोंपर निर्णय करनेके लिये नियंत्रित करना ही उनकी विदेशीयताको दूरकर उनमें स्वदेशीयताका भाव भरना है। इसका कारण यह है कि व्यक्तित्व और वर्गीय जीवन परस्पर संबद्ध हैं और उनके बीचमें किसी तरहकी खाली दीवार खड़ी करनेकी गुंजायश नहीं है।

इस तरहके संगठित समाजमें प्रचलित रीति रिवाज या राजकीय नियम ही सफलता पूर्वक अपना काम कर सकते हैं। भारतकी वर्तमान दशामें जहां सामाजिक एकता, जातीय बन्धन, मानवी संबंध, वर्गीय भेद भावके कारण चरितार्थ नहीं होने पाता, वहां अस्वाभाविक पर दृढ़ चार दीवारी खड़ी कर दी गई है जो दोनोंको अलग कर रही है। सामाजिक वन्धन और व्यवस्थापकीय नियममें समताका भाव प्रत्यक्ष हो जाता है जब हम इस तरहसे विचार करते हैं। व्यवस्थापकीय नियमसे समष्टिका संचालन होता है और सामाजिक नियमसे विवाह शादी तथा

सन्तान आदिकी बातें नियन्त्रित हैं। पर उत्तराधिकारित्वके प्रश्नका दोनोंसे संबंध है। अब यदि कोई ऐसा सर्व व्यापी नियम न हो, जिससे कि दोनों बातोंका नियन्त्रण हो सके जैसा कि प्राचीन युगमें था, तो इस प्रश्नको एकमात्र समाजके हाथमें छोड़ देनेसे तो उत्तराधिकारित्वका प्रश्न बड़ी ही भयानक स्थितिमें रह जाता है।

इस तरहके उदाहरण भी मौजूद हैं जहां राजकीय आज्ञाके अनुसार अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित हुआ है और अबतक जारी है। कुमायूँ पहाड़ीके आसपास पहाड़ी ब्राह्मण जातियां रहती हैं जो अपनेको जोशी, पन्त, तिवारी, पाण्डेय, उप्रेति आदि उपाधियोंसे व्यक्त करती हैं। इनके आदि पुरुष गुर्जर महाराष्ट्र कान्यकुब्ज और सरजूपारीण थे। इन जातियोंपर अन्तर्जातीय विवाहकी प्रथा प्रचलित नहीं है। पर जब ये जातियां इतनी दूर पहाड़ोंपर बस गईं तो शादी विवाहमें बड़ी कठिनाई पड़ने लगी। निदान उन्होंने राजाकी आज्ञा लेकर आपसमें विवाह शादी करना आरम्भ किया जो आजकल प्रचलित है। इसके अतिरिक्त विधवा विवाह आदि सामाजिक प्रश्नोंपर राजकीय नियम बन भी चुके हैं।

यदि इस तरहके नियम बन जायं तो अन्तर्जातीय संबंधसे उत्पन्न हुई सन्ततिके उत्तराधिकारित्वका प्रश्न हल हो जाय। पर जबतक वर्ण-व्यवस्थाका आधार व्यक्तिगत पेशा नहीं निर्दिष्ट कर दिया जाता तबतकके लिये सामाजिक प्रश्न और

शिक्षाके हेतु माता और सन्ततिके जातके विषयमें कुछ विवाद उठेगा। पर इन प्रश्नोंसे अधिक बाधा पड़नेकी सम्भावना नहीं होनी चाहिये क्योंकि पश्चिमी देशोंमें भी जहां सामाजिक स्वच्छन्दता पूर्णरूपसे अपना काम कर रही है, विवाहिता स्त्री अपने पतिके नामसे पुकारी जाती है। भारतमें भी उसका समावेश पतिके गोत्रमें हो जाता है। इसलिये उसकी जातीयता पतिकी जातीयताके अनुसार होगी और सन्तति तो पिताकी जातिके अनुसार होगी ही।

ये सब बातें जादू मालूम होंगी और लोग इसके खिलाफ शोर गुल अवश्य मचावेंगे पर देखनेमें यही आ रहा है कि जात पातमें परिवर्तन प्रतिदिन होता चला जा रहा है पर यह परिवर्तन बड़ी ही भद्दी तौरसे हो रहा है। कितनी ही नीच जातियां हैं जो ऊंच बनती चली जा रही हैं। इसको चरितार्थ करनेके लिये वे अपनी जन्म भूमिको त्यागकर सुदूर देशमें चली जाती हैं और वहां वे अपनी जाति वही बतलाती हैं जिनमें उन्हें सम्मिलित होना रहता है। इस तरह उसमें सम्मिलित होकर वे खान पान और विवाह शादीका संबंध उनके साथ स्थापित कर लेती हैं, अपनी असली जाति छोड़कर ऊंच जातिमें जा मिलती हैं। इसका प्रमाण अनेक ग्रन्थ, मर्दुमशुमारी तथा अन्य सरकारी कागजोंसे भली भांति मिलता है। अभी थोड़े दिन हुए एक राजाने स्वार्थान्धप्रकाशिका नामकी पुस्तक प्रकाशित करायी थी, उसमें उन्होंने दिखाया था और साबित किया था कि कितनी

ही नीच जातियां ब्राह्मण बन गईं और आज दिन ब्राह्मण करके मानी जाती हैं।* इसके अतिरिक्त पुराणोंमे वर्णित अग्निकुल क्षत्रियोंके प्रमाण भी पाये जाते हैं जिनको उस समयके ब्राह्मणोंने अग्नि संस्कार द्वारा सीदियन जातिसे क्षत्रिय बनाया था। आज कल हम लोगोंकी आंखोंके सामने ही इस तरहके परिवर्तन हो रहे हैं जहां नीच जातियां ऊंच बनती जा रही हैं। शूद्र कुर्मी अपनेको कूर्म क्षत्रिय, कहार भी क्षत्रिय और नाई ब्राह्मण बननेकी दावा करने लगे हैं। इसी तरह भार्गव वैश्य थे और कायस्थ शूद्र थे पर वे अब अपनेको ब्राह्मण और क्षत्रिय बतलाते हैं और उन्हींमें गिने जाते हैं। और यही ठीक भी है क्योंकि जबतक वर्ण व्यवस्थाका आधार वृत्ति और पेशा न हो जाय तबतक इस तरहका घमलौर सदा होता रहेगा। और जब वह बात हो जायगी तो गरोहकी बात ही उड़ जायगी और व्यक्तित्वका प्रश्न आ जायगा। रहन सहनमें परिवर्तन लाकर शनैः शनैः जातपातमें परिवर्तन ठीक है और वृत्ति तथा पेशेके अनुसार वर्ण व्यवस्थाकी स्थापनाके सर्वथा अनुरूप है और धर्मत्यागसे जो जातका परिवर्तन होता है वह ठीक नहीं है। आवश्यकता इस बातकी है कि अन्ध विश्वास और सामाजिक भीरुता जो इसके पीछे लगी हुई है उसका स्थान वैज्ञानिक उपयोगिताको मिलना चाहिये और यह बतलाना चाहिये कि

* मिर्जापुर जिलेमें तेलीकुंको ब्राह्मणोंकी एक जाति है, जो किसी समय तेली थी पर अब ब्राह्मण करके मानी जाती है।—अनुवादक

उच्चताके भावके अतिरिक्त इस तरहकी व्यवस्था उपयुक्त और अनुकूल है।

पटेल तथा गौड़ आदिके बिलोंमें अन्तर्राष्ट्रीय विवाहकी भी योजना है जिसका कि आजकल कहीं कहीं उदाहरण देखनेमें आता है, जैसे हिन्दुस्तानियोंके साथ अंग्रेज, यहूदी, अमरीकन ईसाई आदिके साथ वैवाहिक संबंध।

इसके संबंधमें आर्य समाज कुछ कुछ कार्य कर रहा है अर्थात् गैर भारतीय अथवा गैर हिन्दू जातियोंको शुद्ध करके हिन्दू बना रहा है, पर सनातन धर्मके अन्तर्गत इस बातकी आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि सनातन धर्मके अन्तर्गत सारा मानव समाज आ जाता है।

अन्तमें हमें उन लोगोंसे—जोकि शास्त्र या धर्म ग्रन्थोंको मानते हैं—यह कहना है कि यदि आप विचार कर देखेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि हर समय और हर अवस्थामें शास्त्रोंने इस तरहके सुधारके लिये आयोजना की है।

१३—सार्वजनिक कार्य्य

सामाजिक प्रपञ्चको थोड़ी देरके लिये यहीं छोड़कर हमें राजनैतिक प्रश्न पर भी थोड़ा विचार करना चाहिये। इसमें सबका जड़ चरित्र संगठन या मनोबल है जो कि सार्वजनिक काम करनेवालोंकी योग्यता और अयोग्यताको दिखला सकती है चाहे वे वेतन भोगी हों या अवैतनिक, चाहे निर्वाचित हो या नियुक्त।

दीन भारत आज शैतान और अगाध समुद्रके विचित्र पञ्जेमें फंसा है। शैतानका रूप धारण किये तो हमलोगोंकी अयोग्यतायें—स्वार्थ, परस्पर ईर्ष्या द्वेष, जात पांतके निष्प्रयोजन झगड़े, जातीय हीनता, अनुत्साह, त्यागकी अयोग्यता—एक तरफ खड़ी है और अगाध समुद्रके रूपमें—विदेशियोंकी व्यवसायिक स्वार्थान्धता अधिकारका मद—खड़ा है जो अधिकार सम्पन्न होकर इस अभागे देशको दिवालिया बनाकर रखनेमें ही अपना श्रेय समझता है।

हमलोग स्वायत्त जिम्मेदार शासनके लिये शोर गुल मचा-रहे हैं पर स्वायत्त शासनका मूल आधार निर्वाचन प्रथा है। पर क्या भारतमें क्या विदेशमें प्राय: करके यही देखनेमें आता है कि योग्य व्यक्तियोंका निर्वाचन प्राय: नहीं होता। नि:स्वार्थ सेवा करनेवाले, योग्य, अवकाश रखनेवाले, उस कामकी ओर जिनका झुकाव हो, मानसिक योग्यता रखनेवाले, अधिकारका दुरुपयोग न कर सकनेवाले—ऐसे लोगोंका निर्वाचन प्राय: करके नहीं होता। इस देशमें निर्वाचन किस तरह होता है उसका वर्णन यहां नहीं किया जा सकता। इस देशमें वर्तमान अवस्थामें जो लोग निर्वाचनके लिये खड़े होते हैं वे अपनी स्वार्थ सिद्धिके लिये, अपनेको जनताका विश्वासपात्र न समझकर चारों नीतियों— साम, दाम, दण्ड, भेद—का प्रयोग करते हैं, अर्थात् वोट देनेवालोंके पास जाकर मिन्नतें करते हैं, घूस देकर उन्हें अपने वशमें करते हैं, डराते धमकाते हैं और

असंगत दबाव उनपर डालते हैं। और जो लोग इस योग्य हैं कि जनता उनपर विश्वास कर सकती है और वे पूर्ण योग्यताके साथ जनताका कार्य निस्पादन कर सकते हैं वे प्रगट होनेमें संकोच करते व हिचकिचाते हैं और वर्तमान राजनैतिक चालोंको चलनेमें अपनी हीनता समझते हैं। इसलिये वे क्षेत्रमें अवतीर्ण होनेका विचार ही नहीं करते। यही दशा निर्वाचकोंकी सूचीकी है। जो लोग निर्वाचक होनेकी योग्यता—कानूनके अनुसार—रखते हैं उनका नाम ही नहीं पाया जाता और जिन्हें इसकी योग्यता नहीं है वे निर्वाचक बनाये जाते हैं। इसका कारण उम्मेदवारोंका स्वार्थ है। वे अपना मतलब गाठनेके लिये मनमानी लिस्ट तैयार करते हैं।

लीफाकने अपनी पुस्तक राजनीतिक विज्ञानमें शासनके स्वरूपपर विचार करते हुए लिखा है—"जबतक शासकोंकी अन्तरात्मा शुद्ध न हो, शासनका कोई भी स्वरूप किसी कामका नहीं हो सकता। इतने दिनोंके अनुभवसे एक बात तो अवश्य विदित हो गई है कि निर्वाचनकी व्यवस्थासे सदा अच्छे लोगोंका ही चुनाव नहीं होता। संगठनके स्वरूपके लिये तो यह व्यवस्था देखनेमें बहुत अच्छी प्रतीत होती है। विश्वास यही होता है कि शासन व्यवस्थाको प्रतिनिधिरूप देनेके लिये इससे उत्तम कोई दूसरी व्यवस्था हो नहीं सकती। पर कार्य क्रमको देखनेसे यही प्रतीत होता है कि इसके द्वारा राजनैतिक जीवनमें भी बड़ी बड़ी बुराइयां आ गई हैं। दलबन्दीके कारण ईमानदार और

सदिच्छावाले तो इससे दूर रहते हैं और चालबाज तथा बेइमान इसमें शामिल हो जाते हैं। सीली नामक एक दूसरे लेखकने लिखा है—"यदि उत्तमसे उत्तम आदमी भी निर्वाचित किये जायं तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान दशामें अधिकार और सम्पत्तिका वे दुरुपयोग न करेंगे।" इससे पहले ही कार्लाइलने इसी बातको निम्नलिखित शब्दोंमें रखा था–"तुम्हारा काम सुयोग्य व्यक्तिको तलाश करना है। इसके लिये देश देशान्तरमें भ्रमण करो। जहां कहीं तुम्हें सुयोग्य व्यक्ति मिल जायं उन्हें लाकर अपना शासन कार्य सिपुर्द कर दो—शासनका कार्य पूर्ण योग्यतासे चलने लगेगा। पर निर्वाचन, पार्लामेंट आदिसे किसी तरहका लाभ नहीं है। सबसे योग्य आदमीकी बात करना व्यर्थ है। सबसे योग्य आदमीकी तलाश करना जरा कठिन काम है जबकि आपके पास उसके योग्य कोई अस्त्र नहीं है। इस युगका यही निराशा पूर्ण अनुभव है। यह क्रान्तिका युग है। प्राचीन या अर्वाचीन युगकी क्रान्तियोंका इतिहास इन्हीं शब्दोंमें लिखा गया है।" यदि शासनाधिकारपर बैठे मनुष्यकी सदिच्छा भी हो तो वर्तमान संकुचित नीतिमें वह उदारतासे काम नहीं कर सकता। हर्बर्ट स्पेंसरने लिखा है—"१०० निर्वाचकोंमेंसे ९९ और दस उम्मेदवारोंमेंसे नव, निर्वाचन और शासनकी बातोंपर विचार करते समय सदा निकटवर्ती परिणाम पर ही दृष्टि रखते हैं, स्थानान्तर परिणामोंपर तो उनकी दृष्टि जाती ही नहीं। बिना अनुभव प्राप्त किये व्यवस्थापक

मानव समाजके दुःखोंको दूर करनेकी चेष्टामें सदा उन्हें बढ़ाते रहे हैं।"

यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इस देशको इस अधोगतिमें पहुंचानेका काम इसकी सन्तानका ही काम है और यही बात अन्य देशोंकी भी है। भूतमें हमने आपसमें दगा की है, आज भी हम नाचीजके लिये लड़ जाते हैं, एक दूसरेके विरोधी बनकर झूठी गवाहियां देकर जेल भेजते हैं, मौका पाकर जान तक ले लेते हैं। आज तक भारत पर जितनी आपदायें आयी हैं, जो जो अत्याचार किये गये हैं, उन सबकी जिम्मेदारी उसकी सन्तानके ही उपर है। चरित्र हीनता और बेइमानीके अवगुणमें पड़कर हमलोग आपसे ही अपना नाश करते हैं। अपना चरित्र सुधारकर राष्ट्र अपनी उन्नति आपसे आप कर सकते हैं। वर्तमान युगके व्यवस्थापक और सार्वजनिक हितेच्छुओंके लिये ये विषय अत्यन्त विचारणीय हैं।

प्रत्येक नये कानूनके साथ उसके प्रयोगके लिये नये अधिकार देने पड़ते हैं। यदि व्यवस्थापकका चरित्र शुद्ध नहीं है और स्वार्थमय है तो उस नये अधिकारमें भी वह अपना व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करनेकी चेष्टा करेगा और अधिकारका दुरुपयोग करेगा और जिन बुराइयोंको दूर करनेके लिये कानूनका निर्माण किया गया है उन्हींको वे बढ़ावेंगी। इसीमें इस बातकी सत्यताका भी नाश हो जाता है कि केवल शासनके परिवर्तनसे ही सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था स्थापित हो जायगी। इस अनुमानमें हम लोग कारणको कार्यके आगे लाकर रख देते हैं।

तो निर्वाचक और निर्वाचितके चरित्र सुधार कर उनकी अवस्था सुधारनेका क्या उपाय है? इसका उत्तर इस देशकी प्राचीन शुद्ध प्रणाली स्वयं दे देती है :—सार्वजनिक शिक्षाकी व्यवस्था कीजिये, शिक्षाको चरित्र सुधारनेका आधार बनाइये, विश्वव्यापी धर्ममें दीक्षित कीजिये, और साथ ही साथ प्रत्येकके कामको उचित व्यवस्था और तदनुरूप उपहारका प्रबन्ध कर दीजिये। फिर इस बातकी चेष्टा कीजिये कि निर्वाचित वे ही लोग हों जो जीवनमात्रके संघर्षसे अलग हो गये हैं। जबतक एक मनुष्य सांसारिक बन्धनमें पड़ा है, उसे अपनी हानि लाभकी चिन्ता रहेगी और ऐसी दशामें वह जनताकी निःस्वार्थ सेवा नहीं कर सकेगा और बिना इसके सच्चा व्यवस्थापक मिलना अति दुस्तर है। जिसके मनमें अपना किसी तरहका स्वार्थ नहीं रह गया है वही दूसरोंके स्वार्थपर गवेषणा पूर्ण विचार कर सकता है और ठीक मन स्थिर कर सकता है।

१४—व्यवसायिक तथा अन्य प्रसंग

जिस तरह श्रम करनेवालोंकी संख्या दिनपर दिन बढ़ती जायगी त्यों त्यों व्यवसायिक वृद्धि-जो अभी विश्वासी तथा ईमानदार सञ्चालक, मनेजर तथा अन्य प्रकारके कर्मचारियोंके अभावमें उन्नत नहीं है—अनिवार्य है। इसलिये हम लोगोंको अभीसे व्यवसायके अन्तर्गत बुराइयां तथा मजूरोंके प्रश्नको अभीसे हलकर रखना चाहिये जिससे पश्चिम त्रस्त है।

इसका एक विशेष कारण यह है कि वर्तमान युगमें असमानताका इतना प्रबल साम्राज्य हो गया है कि एक तरफ तो अमीर विलासिताके भवन बने हैं और दूसरी ओर गरीब हर तरहसे सताये तथा उत्पीड़ित किये जाते हैं, उनसे अधिकसे अधिक काम लेकर कमसे कम मजूरी देनेकी चेष्टा की जाती है। एक ओर फ़ज़ूलखर्चीका बाजार गर्म है और दूसरी ओर आवश्यकताओंकी पूर्तिका कोई साधन नहीं है। व्यवसायिक उन्नति और विकास होना चाहिये पर साथ ही साथ उसके विकासमें मनुष्यत्वको किनारे नहीं धर देना चाहिये।

गृह शिल्पके पुनरुत्थानकी अत्यन्त आवश्यकता है। भारतका प्राचीन इतिहास हमें बताता है कि यहांका सम्पूर्ण व्यवसाय गृह शिल्पके रूपमें था। इससे अलग कल कारखानों तथा खानोंका सर्वथा अभाव था। पश्चिमका इतिहास भी हमें यही सिखाता है कि वर्तमान युगकी व्यवसायिक स्पर्धासे हमें सदा बचकर रहना चाहिये।

इस समय व्यक्तित्व व्यवसायिक चेष्टा, जैसे विना किसीके संग अथवा सहायताके व्यक्तियोंका व्यवसायमें घुसना तथा कल कारखानोंकी प्रथा, अर्थात् समुदायका इस तरहके व्यवसायिक काममें प्रवृत्त होना—यह दोनों एक साथ देखनेमें आ रहा है। पर इस दूसरी व्यवस्थाके अन्तर्गत एक प्रकारकी पोल है। इसके प्रधान तो व्यक्ति विशेष ही हैं और वे ही सारा नफा खाते हैं। ये विचारे मजूर तो लाचार होकर, हीनावस्थासे

बाध्य होकर साथमें काम करनेके लिये लाचार हो जाते हैं। इससे बलिष्ठोंको तो लाभ है पर गरीबोंकी मरन है। गृहशिल्प—जिसमें हर तरहके प्रयोगकी छोटी छोटी मशीनें घरोंमें बैठा दी जायंगी—से प्राचीन गार्हस्थ्य सौम्य जीवनकी पुनः स्थापना होगी और उसके साथ वर्तमान व्यवसायिक सभ्यताका संयोग होगा अर्थात् व्यक्तित्वके साथ समाजका सम्मेलन होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति—चाहे वह कितना भी कमजोर क्यों न हो—अच्छी तरहसे रहने तथा अपनी व्यक्तिगत अभिलाषाओं और योजनाओंकी अपनी रुचिके अनुसार पूर्ति करानेका हकदार होगा और न कि बलिष्ठ सबकी आवश्यकताको दबाकर मसलता जायगा। इससे यह अभिप्राय नहीं है कि सबकी अवस्था एकसी नीच या ऊंच हो जायगी। इससे तो सामाजिक अस्तव्यस्तताकी अधिक सम्भावना है। उपरोक्त समीकरणमें धनिकोंको अपनी धन लिप्सा बढ़ानेका पूर्ण अवसर मिलेगा पर वे दूसरोंके भी यथेष्ट रूपसे सहायक होंगे। इसके लिये हमें जापानसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। व्यवसायिक विकासके साथ ही साथ उसने व्यवसायिक तथा शिल्पिक शिक्षाकी भी पूरी योजना की है।

१५—सेवा समिति

हम ऊपर लिख आये हैं कि जो लोग जीवन यात्राके संघर्षसे अलग हो गये हैं वे ही सार्वजनिक हितके कामोंमें सफलता पूर्वक हाथ दे सकते हैं। यही बात उन नवयुवकोंके लिये है

जो अपनी जीवनयात्राके संघर्षमें पड़े ही नहीं हैं। पर अनुभवके अभावमें वे दूसरोंकी देखरेखमें ही कामकाज कर सकते हैं। इस तरह बूढ़ों और नवजवानों दोनोंका मेल एक स्थानपर होता है जिसमें एक तो सलाहकार और दूसरा आज्ञापालकका काम करता है। इस तरहके सामाजिक सत्कार्यमें दोनोंके सहवाससे बालकोंको अच्छी शिक्षा मिलेगी यदि उनका संचालन ठीक तरहसे हो और उनकी पढ़ाईमें किसी तरहकी बाधा न हो। इस तरहकी सबसे प्रथम संगठित संस्था सेवासमिति है। इस संस्थाका जन्म सबसे पहले प्रातःस्मरणीय देशप्राण महात्मा गांधीके प्रयत्नसे हरद्वारके कुम्भके अवसरपर १९१५ में हरद्वारमें हुआ था। स्वर्गीय महात्मा गोखलेकी भारतसेवक-संघने इसमें सबसे प्रथम योग दिया था। तबसे यह संस्था लगातार काम करती चली आरही है। जिस तरहकी सामाजिक सेवायें इन नवयुवकोंद्वारा की जाती हैं उसे देखकर पूरी आशा होती है कि भविष्यमें वे और भी अच्छे काम कर सकेंगे यदि उन्हें उचित प्रोत्साहन मिला।

प्राकृतिक मनोविज्ञानका इस देशकी प्राचीन चार वर्ण और चार आश्रमकी पद्धतिमें पूर्णरूपसे समावेश है। सामाजिक जीवनके संचालनके नियम उन्हींके अन्तर्गत हैं और समाज-सुधारकोंका सबसे प्रधान काम यही होना चाहिये कि वर्तमान युगकी संकीर्णता और संकुचित हृदयताके भावको दूरकर वे इन पद्धतियोंको प्राचीन व्यवस्थाके अनुसार संवर्धित करें।

शिक्षा, समुचित शिक्षा, सदाचारिक शिक्षा, शिल्पिक शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा ही साध्य और साधन है। इसके संवारनेसे सबकी प्राप्ति सम्भव है। सभ्यताका प्रसार सत् शिक्षाद्वारा होना चाहिये। ब्राह्मणका स्थान सब वर्णोंमें सर्वश्रेष्ठ होता चाहिये कि वह सच्चा शिक्षक है। उसका काम है सबको शिक्षा देना, तथा समाजका निर्माण, संगठन और नियोजन करना। मनु महाराजने अपनी पुस्तक मनुस्मृति सारे संसारके उपयोगके लिये बनाया था न कि भारतवर्षके मुट्ठीभर लोगोंके लाभके लिये। यदि वर्णाश्रम धर्मकी उपयोगिता नयी सन्ततिके हृदयमें एक बार जमा दी जाय तो समाज-सुधारकोंकी सारी आशायें बहुत ही शीघ्र पूरी हो जायं।

भारतमें, संगठन करनेवाली शक्ति अर्थात् शिक्षित समाज जो राष्ट्रका प्राण है पुनर्जीवित और पुष्ट हो जायगा जो इस समय इतना जीर्ण शीर्ण हो गया है कि हर तरहके कायिक और मानसिक रोग उसे घेरे रहते हैं। तब तो उत्थान, पुनः संगठन, और सुधार आरम्भ हो जायगा। पाश्चात्य विचारको विवेकपूर्ण तथा सुव्यवस्थित रूपसे अपनाकर और उन्हें भारतीय जीवनके अनुकूल बनाकर हमलोग वर्तमान समयकी असमानता असंगठित विचारोंको दूर करके उनके स्थानपर सद्विचारोंका प्रचार करेंगे। अनेक प्रथायें तथा रीति रिवाजें जिन्हें हम लोगोंने संकीर्णताके साथ प्रयोगमें लाकर भ्रष्ट और खराब बना दिया है वे ही वैज्ञानिक आधारपर उपयोगी और लाभदायक प्रतीत होने लगेंगी,

जब उनका विचार और प्रचार हमलोग आधुनिक रीतिके अनुसार करने लगेंगे।

इसी तरह धर्मग्रन्थोंका अर्थ और व्याख्या उदार हृदय और सद्विचारवाले विद्वानोंद्वारा किये जानेपर उसका भी प्रयोग उचित रीतिसे होने लगेगा और आजतक जिन बातोंको हमलोग पौराणिक सत्य मानते आये हैं उनका असली तत्व हमलोगोंके दृष्टिगोचर होने लगेगा, और जीवनका महत्व उतना ही बढ़ जायगा जितनी आत्माका शरीरके साथ संसर्ग होनेसे।

भावी मातायें और पिता यदि इस प्रकार वैज्ञानिक रीतिसे काम करेंगे और मानसिक तथा शारीरिक सौन्दर्यकी उपासना, ऋषियों वीरों तथा देव देवियोंकी उपासना, योग्य विवाह आदिकी यूनानवालोंकी तरह व्यवस्था करेंगे तो भावी सन्ततिका क्रमागत विकास अवश्यम्भावी है और इसी प्रकार खानपान, रहन सहन, कर्तव्य आदिका ज्ञान भी ठीक हो जायगा।

इस देशमें आज भी गुप्तदानकी प्रथा जोरोंमें चल रही है, जैसे, गरीब कुटुम्बियों या सम्बन्धियोंकी सहायता करना, मन्दिरमें चढ़ावा चढ़ाना, ब्राह्मण भोजन करना, दीन दुःखियोंको भीख बांटना, सड़कोंपर कुआं, मन्दिर तालाब बनवाना, तथा पेड़ लगवाना, घाट बंधवाना, धर्मशाला बनवाना, शादी ब्याह तथा मरनी करनीमें अपव्यय करना—इन सब कामोंसे धनका एक तरहसे बटवारा हो जाता है।

पर यह अव्यवस्थित और फजूलखर्चीसे भरा है और कभी कभी इससे हानियां भी होती हैं। सर्वव्यापी शिक्षा संगठनसे लोगोंको दानकी पूर्ण उपयोगिताका पता लग जायगा और वे अपने द्रव्यको सदुपयोगमें लगाने लग जायंगे।

स्त्रियों तथा बच्चोंका उपयुक्त स्थान लोगोंके समझमें आजायगा और लोग उसका उचित प्रयोग करने लग जायंगे। गार्हस्थ्य विज्ञान और गृह प्रबन्धशास्त्र जिसकी पश्चिममें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और स्त्रीशिक्षामें जिसका प्रधान स्थान है, उतना ही बल्कि किसी किसी अंशमें पुरुषोंके पाठ्य विषयोंसे अधिक महत्वशाली हैं। इस कलामें स्त्रियोंको विशेष तौरसे प्रवीण बनाया जायगा जिससे वे गृहस्थीका स्वस्थ बनाये रह सकें तथा सन्तानोत्पत्तिकी मात्रा सीमान्त रख सकें।

ब्रह्मचर्याश्रमतक अर्थात् जबतक बालक पाण्डित्य, बल और साहसका सञ्चय न कर ले तबतक विवाह बन्धनमें उसे न बांधनेसे कितनी ही सामाजिक जटिल समस्यायें हल हो जाती हैं। बाल विवाहके उठा देनेसे विधवाओंकी संख्या कम हो जायंगी और विधवा विवाहका प्रश्न सरल हो जायगा। स्त्रियोंको धार्मिक और शिल्पिक शिक्षा दी जायगी जिससे गृहनिर्माणमें सौन्दर्यका समावेशकर गार्हस्थ्य जीवनको सुखमय बना सकेंगी। इससे हानिकर नाच आदिकी प्रथा उठ जायगी और हठवादिता तथा कट्टरपन दूर हो जायगा।

कर्तव्य तथा अधिकारके विभागसे तथा प्रत्येकवर्गमें

समताकी स्थापनासे सहयोगिताकी वृद्धि होगी और घातक ईर्ष्या द्वेषका नाश होगा।

सफल गृहस्थ गृहस्थीके कार्यों से समयपर अलग होकर सार्वजनिक कामोंमें योग दे सकेंगे और इसी प्रकार स्त्रियां भी पतियोंके साथ ही गृहस्थीके कार्यको दूसरोंपर सौंपकर अलग हो जायंगी और अपनी योग्यताके अनुसार पुरुषोंका हाथ बटावेंगी और सार्वजनिक जीवनमें अपने हिस्सेका काम करेंगी जिससे सार्वजनिक जीवन और भी सुखमय हो जायगा।

इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि प्रकृतिमें नर और नारीमें कोई व्यक्त विभाजन नहीं है और साधारण नियम यही है कि यह विभाग उन्नत गुणोंके साथ होता है। पुरुषों और स्त्रियोंमें कामका बटवारा इस लिये नहीं है कि एकको (पुरुषको) गृहस्थीके कामसे कोई सरोकार नहीं और दूसरे (स्त्री) को घरके बाहरके किसी कामसे सरोकार नहीं। प्राकृतिक विभाजनका अभिप्राय यही है कि एक (नर) को घरके बाहरके कामोंमें अधिक दत्तचित्त होना चाहिये और दूसरे (नारी) को घरके भीतरके कार्योंमें अधिक दत्तचित्त होना चाहिए पर दोनोंकी संयुक्त चेष्टायें दोनों तरफ होनी चाहिये। इसी तरह आश्रमधर्मका यह अभिप्राय नहीं है कि ब्रह्मचर्यकालमें केवल शिक्षामें ही सारा समय बिताना चाहिये, गार्हस्थ्य जीवनमें गृहस्थीमें, वाणप्रस्थमें परोपकारमें और सन्यासमें मुक्तिका मार्ग खोजनेमें। आश्रमधर्मका अभिप्राय यही है कि एक आश्रममें उसके लिये जो काम बताया

गया है उसकी प्रधानता होनी चाहिये जिससे अन्य (गौण) कामोंका संघर्ष नहीं आ पड़े नहीं तो समीचीन तौरपर कार्यका निस्पादन नहीं हो सकेगा और आश्रम धर्मका पालन कठिन हो जायगा तथा उसी तरहकी आपत्तियोंसे घिर जायगा जिस तरहकी आपत्तियां वर्ण व्यवस्थाका पालन न कर वर्णसंकरके आविर्भावसे हो जाता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति केवल अधिकारके लिये युद्धकी तैयारी कर देता है और कर्तव्यसे सदा जी चुराता है। इसी तरह पेशेकी विशेषतापर भी ध्यान रखना होगा, जैसे पठन पाठनका काम करनेवाला प्रत्येक आश्रममें पठन पाठनमें अधिकाधिक समय लगावेगा।

संसारकी शान्तिके लिये विश्वव्यापी ब्रह्मविद्या तथा आत्म-विद्याकी नितान्त आवश्यकता है क्योंकि इससे लोगोंके हृदयमें समता और समानताका भाव उदय होता है और वर्ग तथा जातिकी संकुचित हृदयताका भाव लुप्त हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें पूर्णता या सन्तोषका कुछ भाव रहता है। पूर्णताका यही भाव, या हृदय प्रत्येक नर नारीके हृदयमें—उपासनाके स्थूल पदार्थके लिये, नेह तथा, प्रेमके लिये, इज्जत तथा मर्यादाके लिये, भक्ति और आराधनाके लिये-आन्दो-लन करता है। यह स्थूल आदर्शकी गणना भूतप्रेतोंकी उपा-सनासे लेकर ईश्वरकी सूक्ष्मतर भावतक प्रचलित है। इसीमें पेड़ पल्लव, पत्थर, पशु पक्षी, मूर्ति, चित्र, विविध प्रकारके देव तथा उपदेव, इतिहास पुराणोंके वीर, छोटे अवतार, ईश्वरके दूत,

पैगम्बर, भविष्यदर्शी ऋषि मुनि, ईश्वरसे प्राप्त धर्म ग्रन्थ, अप, तेज, वायु, आकाश, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रगणोंकी उपासना आजाती है और इसीके अन्तर्गत पिता, माता, भाई बहिन, इष्ट मित्रका स्नेह है। इस तरहके स्थूल पदार्थों बिना जो मनुष्यके सूक्ष्मतम भावको आकृष्ट करता है, और जो पूजा तथा उपासनाके उद्गारके कारण हैं, हृदय शून्य रहता है। इस-लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक नर तथा नारीको किसी न किसी धर्मका अनुयायी होना चाहिये।

पर साथ ही साथ मनुष्यके हृदयमें अपूर्णताकी मात्रा अधिक रहती है और यह सदा अनन्तकी प्राप्तिके लिये लालायित रहता है अर्थात् यह सदा इस बातको जाननेकी चेष्टा करता है कि उसके शरीरकी आत्मा अमर है, निराकार है, अनन्त है और सर्वश्रेष्ठ है। इस एकताके विश्वास बिना, इस धारणाके बिना कि हमारी आत्मा ईश्वरका अंश है, मनुष्यका हृदय सदा असन्तुष्ट रहता है, उसको कभी चैन और शान्ति नहीं मिल सकती और भीतर तथा बाहर सदा घोर संग्राम होता रहेगा।

वंशकी भांति व्यक्तिगत धर्म भी मनुष्यके हृदयका अंग है। प्रत्येक मनुष्यके 'अहं' भावका यह अंश है। जिस प्रकार इस 'अहं' के भावके लिये एक अलग शरीर है, इसी प्रकार यह हृदय विशेष संबंधियोंकी तरफ, विशेष धर्मकी तरफ, विशेष पूजापाठकी तरफ, विशेष रीति रिवाजोंकी तरफ झुकता है और प्रत्येक झुकावसे एक विशेष प्रकारके भावके जन्म होते

हैं। पर इसके अतिरिक्त हम लोगोंके हृदयमें एक दूसरा 'अहम्' है जो संसारके सभी जीवोंमें सभी प्राणियोंमें सम भावसे पाया जाता है और यही विश्वव्यापी धर्मका आधार है। यही मानव जीवन अथवा विश्वका केन्द्र है। और ये जातियां, वर्ग आदि इसी केन्द्रके आधारभूत छोटी गोल रेखायें हैं। इसलिये यदि विश्वव्यापी इस 'अहम्' का कोई स्थान न हो तो छोटी गोल रेखाओंका कहीं पता ही नहीं चल सकता।

इसलिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति—जो अपनेको किसी भी धर्म या जातिके अन्तर्गत मानता या समझता है उसे इस भावको जागृत रखना चाहिये कि एक विश्वव्यापी, सम्पूर्ण मानव समाजका धर्म है जिसके अन्तर्गत सबका समावेश है। और इसी भावनाके आधारपर उसे बहिरंग बातोंपर, शरीरपर अधिक भक्ति न रखकर अन्तरंग बातोंपर, आत्मापर, सूक्ष्म पदार्थपर अधिक भक्ति दिखलानी चाहिये।

इस प्रकारके ज्ञानके प्रसारसे, जोकि केवल सुव्यवस्थित और सुसंगठित शिक्षा और उदार हृदय, परिपक्व बुद्धि और विश्व-प्रेमी विद्वानोंके—जिन्हें मर्यादा सबसे अधिक प्रिय है—सह-योग द्वारा ही सम्भव है—जिससे संसारमें शान्ति, मनुष्यजातिमें परस्पर प्रेम, काम काज तथा खेल कूदकी समानता, कर्तव्यका आचरण और जीवनका आनन्द प्रत्येक व्यक्तिके लिये तथा प्रत्येकके प्रयोगके लिये बहुमूल्य सार्वजनिक सम्पत्तिका उद्गम होगा। पर यह केवल इसी प्रकार तहमें जानेसे सम्भव है न कि

केवल ऊपरी दृष्टि डालनेसे, बराबर चालबाजीसे काम करनेसे कानूनी बारीकी निकालनेसे, तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कुटिल चालोंकी व्यवस्थासे कुछ हो सकता है।

१७—विविध धर्मोंमें समता

सामाजिक सुधारके लिये सबसे आवश्यक कार्य इस देशके भिन्न भिन्न मतों तथा धर्मोंके माननेवालोंको एकमें शामिल करना अत्यावश्यक है। यदि यह साध्य हो जाय तो इससे बढ़कर दूसरी समाजसेवा नहीं हो सकती। यहांपर ब्राह्मणोंको सर्वोच्च पद देनेकी आवश्यकता है। पर वह ब्राह्मण वंश परम्परागतका पुरोहित नहीं हो सकता, जिसे जातिकी हठवादिता, कट्टर संकीर्ण हृदयने स्वार्थी, बनाया है बल्कि सच्चा ब्राह्मण, चाहे वह हिन्दू ब्राह्मण हो, ईसाई ब्राह्मण हो, मुसलमान ब्राह्मण हो, पारसी ब्राह्मण हो अथवा बुद्ध ब्राह्मण हो उसमें, दया, स्वार्थत्याग, शमन, शान्तिस्थापन, और संसारके सभी धर्मोंके प्रति प्रेम व सद्भावके भाव हों, जिसका सारा जीवन व्यवहारिक आत्मज्ञान या ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिमें बीता हो, जो मनुष्यको सदा अनन्त विश्वव्यापी परब्रह्मकी ओर ले जा सके, जो परब्रह्म सर्वव्यापी होनेपर भी दृष्टिगोचर नहीं है और विविध प्रकारकी उपासनाओं और पूजाओंके स्वरूपमें वर्तमान है जैसे विविध भाँतिके पोशाकके अन्दर मनुष्यकी एकसा शरीर छिपा है, जो देश या राष्ट्रको इस बातकी शिक्षा दे सके कि वह अपनी

चारों अवस्थाओं—शिक्षा, राजनीति, व्यवसाय और कल कार-खाने—का संगठन किस प्रकारसे करके उन्हें अन्य अवस्थाओंके लिये उपयोगी बना सकता है जिससे सबका स्वार्थ आत्मविद्या और ब्रह्मविद्याके आधारपर उचित प्रकारसे सिद्ध हो।

इन धर्मोंके अनुयायियोंका पालन पोषण एक ही देशमें एक ही पृथ्वी माताके अन्नसे होता है। इन्हें केवल अपने भेद भावों-पर ध्यान न देकर समता और एकताके विषयोंपर अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता है। वर्तमान समयमें इस देशके दो प्रधान वाशिन्दों, हिन्दू और मुसलमानोंमें घोर मतभेद हो गया है, भीषण विरोध भावने स्थान ग्रहण कर लिया है। इसका कारण निराधार भय और तुच्छ राजनैतिक कारण हैं। प्राचीन कालसे ये लोग एक साथ रहते आये हैं। एक ही तरहके सुख दु.ख संग रहकर दोनों भोगते आये हैं। हमलोगोंको आज उन पुरानी हजार पन्द्रह सौ वर्षके युद्धोंकी चर्चा छोड़ देनी चाहिये, उनको भूल जाना चाहिये, और नये भ्रातृभावमें संयुक्त होकर सुख तथा शान्तिसे रहनेका विचार और चेष्टा करनी चाहिये। जापानके निवासी कहते हैं कि देश तथा देशवासियोंके प्रति प्रेम और सद्भाव, "देश प्रेम" ही सर्व प्रधान धर्म है और यह सब धर्मोंमें समता तथा एकताको जन्म देसकता है। जापानके एक ही घरमें अपनी अपनी रुचिके अनुसार भिन्न भिन्न धर्मोंके लोग पाये जाते हैं। पर एक दूसरेमें किसी प्रकारका विद्वेष या भेद नहीं है, सभी परस्पर प्रेमसे रहते हैं। यदि जापानमें भिन्न

मतवाले तक एक ही गृहस्थीमें साथ साथ रह सकते हैं तो क्या हमलोग (हिन्दू और मुसलमान) एक साथ, एक शहर, एक कस्बा, एक गांव, एक महल्ला और एक गलीमें भी नहीं रह सकते ! आवश्यकता केवल इस बातकी है कि एक दूसरेके अवगुण देखना छोड़कर हमें गुणोंकी ओर दृष्टिपात करना चाहिये । मैं काशीका रहनेवाला हूं। यह नगर हिन्दुओंका तीर्थ-क्षेत्र है । इसमें मुसलमान भी बहुत रहते हैं। यहांके गंगाघाटका घुमावका दृश्य बड़ा ही मनोहर है । गये दिन जो कुछ हुआ हो पर यदि आज औरंगजेबकी मस्जिद जिसे साधारणतः लोग माधव रावका धवरहरा कहते हैं, तोड़ दी जाय तो घाटका आधा सौन्दर्य लुप्त हो जायगा । ताजबीबीका रौजा, भारत हीमें नहीं बल्कि सारे संसारमें एक दर्शनीय पदार्थ है ।

यदि अनुसन्धानको और कुछ दूर ले जाइये तो मालूम होगा कि भारतके हिन्दू निवासी, अधिकांश मुसलमान और तमाम हिन्दुस्तानी ईसाईके नसमें एक ही रक्तका प्रवाह है और यूरेशि-यनोंके कारण पाश्चात्य जातियोंसे भी उनका संबंध हो गया । पारसी जाति भी इसी भारतमाताकी गोदमें हैं और उनकी मातृ-भाषा भी आज गुजराती है ।

इस्लाम धर्मका सार क्या है ? एक ईश्वरमें विश्वास और उसीकी उपासना ईसाई धर्मका सार विश्वास, आशा, दान, अपराध क्षमा, प्रायश्चित्त, अपराध स्वीकार और पश्चात्ताप है और उनका उदार नियम है—दूसरोंके साथ वही करो जो तुम

दूसरोंसे अपने लिये चाहते हो। बुद्ध धर्मका सार दया और त्याग है। जोरोस्टर धर्मका सार आत्मशुद्धि है। वैदिक धर्मका सार ईश्वरकी एकता, सर्व व्यापकता, अनन्तता, मनुष्य तथा ईश्वरमें संबंध है। इस धर्ममें सब वस्तुका उसके अनुरूप स्थान है।

अब विचारकर देखिये तो इन बातोंमें किसी तरहका भेदभाव नहीं दिखाई देता बल्कि विचित्र समता देखनेमें आती है। भारतमें तो यह समता और भी व्यक्त होनी चाहिये, क्योंकि यहांके लोगोंका भाव मानव समाज न कि केवल एक राष्ट्रके लिये है।

समाज संगठनके लिये सबसे बड़ी आवश्यकता धार्मिक प्रेमके विस्तारकी है और यही प्रेम संसारकी सुख शान्तिका मूल है। इसी धर्मको किसी कविने इन शब्दोंमें कहा है:—

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु, सर्वः सर्वत्र नंदतु॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
ममेति बध्यते जंतुर्न ममेति विमुच्यते॥

हमारी कुछ चुनी पुस्तकें

स्त्री धर्म बोधिनी

सच्ची गृहणीके क्या लक्षण हैं, सच्ची गृहणी पद पर पहुंचनेके लिये हमारी माताओं और बहनोंको कैसा बनना चाहिये, सच्ची गृहणीसे गृहस्थीका सुख किस तरह दूना और चौगुना आनन्ददायक और सुखमय हो जाता है और इसके न होनेसे गृहस्थी कितनी भारमय हो जाती है इत्यादि बातोंका वर्णन इस पुस्तकमें बड़ी ही उत्तमताके साथ किया गया है। मूल्य ।=)

पद्यप्रदीप

धर्म, नीति, आदर्श शिक्षा और उपदेश पर चुने हुए पद्य इस छोटीसी पुस्तकमें संगृहीत हैं। बालकों और नवयुवकोंके लिये यह पुस्तक बड़ी ही उपादेय है। स्कूलोंमें पाठ्यविषयोंमें, उपहार देनेमें तथा पारितोषिक देनेके लिये यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। मूल्य ॥)

गांधी गौरव

पुस्तकका विषय नामसे ही स्पष्ट है। जिसकी उपासना आज संसार कर रहा है, जो ईसा मसीहका अवतार माना जा रहा है, जिसके न होनेसे आज भारतवर्षमें अंधेरा छा रहा है उसी नरपुंगवकी यह जीवनी है। मू०॥)

इसके अतिरिक्त हमारे कार्यालयसे हर तरहकी पुस्तकें मिलती हैं। बड़ा सूचीपत्र मुफ्त।

भारत बुक डिपो

अलीगढ़।

वणिक् प्रेस १, सरकार लेन कलकत्ता।

सूरजमल जयचन्द्र लोहन बयोद

हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर-सीरीजका
बारहवाँ ग्रन्थ।

सफलता और उसकी साधनाके उपाय.

लेखक—
रामचन्द्र वर्मा।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर सीरीजका १२ वाँ ग्रन्थ।

सफलता

और

उसकी साधनाके उपाय।

लेखक,

श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्म्मा

सम्पादक, नागरीप्रचारिणी पत्रिका और सहकारी

सम्पादक, हिन्दी-शब्दसागर।

प्रकाशक,

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

श्रावण, १९७५ वि०।

द्वितीयावृत्ति।] अगस्त १९१८। [मूल्य बारह आने।

Printed by M. N. Kulkarni at his Kanatak Press,
434, Thakurdwer, Bhmbay
and
Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain Granth Ratnakar
Karyalay, Hirabag, Bombay.

भूमिका ।

(पहली आवृत्तिसे)

संसार कर्म-क्षेत्र है। यहाँ आनेपर सभी लोगोंको कुछ न कुछ करना पड़ता है। ऐसी अवस्थामें सब लोगोंका अपने हाथमें लिये हुए कामोंको ठीक तरहसे पूरा उतारने और उसमें यथासाध्य यश प्राप्त करनेकी इच्छा रखना बहुत ही स्वाभाविक और योग्य है। इस पुस्तकमें उसी इच्छाकी पूर्तिके कुछ उपाय बतलाये गये हैं। ये बतलाये हुए उपाय कुछ नये नहीं, पुराने ही हैं। पुस्तकमें उनका संग्रह और दिग्दर्शन मात्र है। दिग्दर्शन इसलिए कि जिन अनेक आवश्यक उपायों, गुणों और दूसरे विषयोंका इसमें समावेश या उल्लेख किया गया है, वे इतने महत्त्वपूर्ण और प्रशस्त हैं कि उनमेंसे प्रत्येक पर एक स्वतंत्र बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती है।

अनेक प्रकारके सांसारिक पदार्थों और विषयो अथवा सुखके अनेक साधनोंमेंसे किसी एक या अधिकका सम्पादन और अधिकृत कर लेना ही कभी वास्तविक सफलता प्राप्त करना नहीं कहा जा सकता। जीवनकी वास्तविक सफलता वही है जो सर्वांगपूर्ण और एकदम निर्दोष हो। जो मनुष्य शारीरिक, साम्पत्तिक और आर्थिक दृष्टिसे सुखी न हो, जो विद्या और कलासे हीन हो, जो समाजका आवश्यक अंग और देशका पूरा सेवक न हो, जिसकी विद्यमानता किसीको वाछित न हो और जिसमें किसी मानवोचित गुणका अभाव हो, उसका जीवन ठीक ठीक अर्थमें कभी सफलतापूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टिसे देखते हुए संसारमें ऐसे लोग बहुत ही कम मिलेंगे जिनका जीवन वास्तवमें ' मानव जीवन ' कहा जा सके। यह पुस्तक बहुतसे अंशोमें इसी उद्देश्यसे लिखी गई है कि इससे लोगोंको वास्तविक मानवजीवनके एक साधारण आदर्शका अनुमान करनेमें सहायता मिले। पर साधारणतः 'सफलता' शब्दका जो अर्थ प्रचलित है उसका ध्यान रखते हुए और कई विशिष्ट कारणोंसे इस पुस्तकका विषयाधिकार कुछ संकुचित रक्खा गया है और इसी लिये उक्त उद्देश्यकी भली भाँति पूर्ति भी नहीं हो सकी है। पर तो भी जो कुछ हो सका है उसीसे यदि पाठकोंका थोड़ा बहुत उपकार या कल्याण

हुआ और यह पुस्तक पाठकोंको रुची तो मैं अपने आपको कृतकृत्य समझूँगा और शीघ्र ही इस पुस्तकके पूर्तिस्वरूप 'मानव जीवन' नामकी एक और पुस्तक पाठकोंकी सेवामें भेट करूँगा।*

आपत्ति की जा सकती है कि सफलताविषयक पुस्तक लिखनेका अधिकारी वही मनुष्य है जिसने विद्या या धन आदि उपार्जित करने अथवा किसी और शुभ कार्य्यमें अच्छी सफलता प्राप्त की हो; और बहुत संभव है कि इस दृष्टिसे मैं बिलकुल ही कोरा ठहरूँ और अनधिकारचर्चा करनेका दोषी समझा जाऊँ। ऐसी दशामें यह निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि सफलता-विषयक अँगरेजीके Success Secrets, The Secret of Success, The Art of Success आदि कई अच्छे ग्रंथोंको पढ़कर यह छोटी सी पुस्तक लिखी गई है। यथास्थान अपने अल्प अनुभव और ज्ञानकी सहायता लेकर उन ग्रंथोंमें प्रकट किये हुए बहुमूल्य विचारोंके सारांशको मैंने जैसे तैसे एक नया स्वरूप दे दिया है। आशा है, पाठक इस पुस्तकका आदर करके इससे कुछ लाभ उठानेका प्रयत्न करेंगे।

काशी।
१० मई १९१५

विनीत—
रामचन्द्र वर्म्मा।

---

* इस दूसरे संस्करणके निकलनेके पहले ही "मानव जीवन" इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो चुका है। —लेखक।

सफलता और उसकी साधनाके उपाय।

उपोद्घात।

सफलताकी व्याख्या—वैद्य और कवि—वास्तविक और कल्पित सफलता—चिकित्सक और कोठीवाल—वास्तविक मनुष्य कौन है?—धनका महत्त्व—कर्म्मठ और अयोग्य—जीवनमें लहर—साहस और अध्यवसाय—प्रत्येक मनुष्य उत्तम कार्य्य कर सकता है—मार्गकी कठिनाइयाँ—कर्त्तव्य-पालन—उच्चाकांक्षाके विभाग—अकर्मण्य मनुष्य—उद्देश्यका स्वरूप—दुनियाकी शिकायत—उपयुक्त अवसर और कार्य्य—स्वास्थ्य—साधारण बुद्धि और विचारशक्ति—एक निश्चित गुण—शुद्ध आचरण—भिन्न भिन्न कार्य्योंका सफलताके साथ सम्बन्ध।

किसी आरम्भ किये हुए कार्य्यको उत्तमतापूर्वक समाप्त करने और उससे यथेष्ट लाभ उठानेका ही नाम सफलता है। सफलता साधारण जूते बनानेमे भी हो सकती है और करोड़ों रुपयोंका व्यापार करने अथवा बड़ेसे बड़ा राज्य चलानेमें भी; क्योंकि जूता सीना भी काम ही है और राज्य चलाना भी काम ही है। पर साधारणतः नित्यके सासारिक व्यवहारोंमें सब लोग सफलताका इतना व्यापक अर्थ नहीं लेते। प्रायः लोग अधिक धन कमानेको ही सफलता प्राप्त करना समझते हैं। यदि कोई मनुष्य निरन्तर कठिन परिश्रम करके बड़ा भारी विद्वान् बन जाय तो वह संसारकी दृष्टिमें उतना सफल नही ठहरता जितना कि एक लखपती सेठ, साहूकार या महाजन। ऐसी दशामें सफलताकी की हुई व्याख्या कुछ अयुक्त ठहरती है। पर वास्त-

वमें यह बात ठीक नहीं है। यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय, तो मालूम होगा कि दोनोंने ही एक न एक उद्देश्य पर लक्ष्य रखकर परिश्रम किया है और अन्तमें उसकी सिद्धि भी की है। यदि दोनोंकी अवस्थाओं पर और भी सूक्ष्म विचार किया जाय तो जान पड़ेगा कि एक महाजनके धन कमानेकी अपेक्षा एक विद्वान्का विद्या उपार्जित करना अधिक उपयोगी और श्रेयस्कर है।

मान लीजिये कि एक वैद्यने नए प्रकारका एक चूरन निकाला, और एक कविने कुछ कविता की। अब विचारिये कि इन दोनोंमेंसे किसकी कृतिसे समाजकी अधिक सेवा हुई? किसके परिश्रमसे जन-साधारणको अधिक लाभ पहुँचा? चूरनसे शरीरका रोग दूर होगा और कवितासे आत्मा और बुद्धि संस्कृत और परिष्कृत होगी। अब चूरनके संबंधमें बड़े बड़े वैद्यों और रोगियोंके प्रशंसापत्र और कविताके संबंधमें बड़े बड़े समाचारपत्रोंकी आलोचनाएँ संग्रह करके लम्बे चौड़े विज्ञापन छापिये, तो उक्त प्रश्नका उत्तर सहजमें ही निकल आवेगा। कविजीकी कीर्ति तो बहुत हो जायगी, पर उन्हें आर्थिक लाभ बहुत ही कम, प्रायः नहींके बराबर होगा। लेकिन वैद्यराजका घर रुपयोंसे भर जायगा; और कीर्ति उनकी प्रायः उतनी ही कम होगी जितनी कि कविजीकी अर्थ-प्राप्ति। अर्थात् कविताकी अपेक्षा चूरनके अधिक प्रचार और आदरकी संभावना है। कैसे आश्चर्य्यकी बात है कि जन-साधारण कविताकी तो थोड़ी सी प्रतियाँ खरीदकर ही सन्तुष्ट हो जाते है और चूरनकी बिक्री उस समयतक बराबर जारी रहती है जबतक कि वैद्यराज उसका विज्ञापन देना बन्द न कर दें। पर दूसरे रूपमें समाज कविके उपकारोंका बदला चुका ही देता है,—उसकी स्मृतिको वह सैकड़ो हजारों वर्षोंतक बनाये रखता है।

लक्ष्मीके भक्तोंकी बात जाने दीजिए; पर विचारवानोंके निकट कविकी कृति और सफलता स्थायी और वास्तविक है और वैद्यकी कृति और सफलता अस्थायी और कृत्रिम। वैद्यको धन आदिके रूपमें संसारसे जो कुछ मिलता है उसकी अपेक्षा कविको होनेवाली प्राप्ति कहीं बढ़ चढ़कर है। गोसाईं तुलसीदासजीने रामायण लिखकर टके नहीं कमाये थे; पर सफलतापूर्ण जीवनका ठीक अनुमान करनेके लिये हमें गोसाईंजीकी साधुता और उच्चतम मनोवृत्तियोंसे ही अधिक सहायता मिलती है: जगतसेठकी सम्पत्तिसे मिलनेवाली शिक्षा और सहायता अपेक्षाकृत बहुत ही कम है।

यह तो हुई कृतिकी बात; अब उसके कर्त्ता मनुष्यको लीजिये। आपके सामने एक चिकित्सक और एक कोठीवाल है। चिकित्सकमें मनुष्यत्व है और साहित्य, प्रकृति और चिकित्सा-शास्त्र पर उसका अनुराग है। उसे जंगलों, पहाड़ों और नदियोंकी शोभा देखकर शान्ति और प्रसन्नता होती है, अच्छी अच्छी पुस्तकें उसे सच्चे मित्रोंसे भी बढ़कर उपदेश और सहायता देती है, वह चिकित्सा-शास्त्रका अध्ययन करके अपने ज्ञान और अनुभव द्वारा सर्वसाधारणको बहुत अधिक लाभ पहुँचाता है और अपने स्वार्थत्याग तथा सद्व्यवहारके कारण सर्वप्रिय बन जाता है। अन्तमें वह बहुत ही थोड़ी सम्पत्ति छोड़कर इस संसारसे बिदा होता है और उसके वास्तविक गुण जाननेवालोकी संख्या परिमित ही होती है। अब कोठीवालको लीजिये। उसे संसारमें धनके सिवा और कुछ अच्छा ही नही लगता। बाजार-भाव, दलाली, ब्याज-बट्टे और पड़ता बैठानेके सिवा उसे और कुछ सूझता ही नहीं। उसकी प्रवृत्ति सदा हर एक चीज और हर एक काममेंसे रुपया पैदा करनेकी ओर ही होती है और यही सबसे अधिक बुरी बात है। उसके

सामने विचारों और भावोंकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है और " सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति " ही उसका एक मात्र मूलमंत्र रह जाता है। हाँ, जब वह मरने लगता है तब अपने पीछे बहुत बड़ी सम्पत्ति अवश्य छोड़ जाता है।

अब इस चिकित्सक और कोठीवालकी अवस्थाओंकी तुलना करनेसे जान पड़ता है कि चिकित्सक तो वास्तवमें मनुष्य था और कोठीवाल रुपया पैदा करनेकी कल। चिकित्सकने अपने '**आप**' को बनाया और कोठीवालने केवल '**सम्पत्ति**' बनाई। चिकित्सकका जीवन शान्ति और सुखसे पूर्ण था और कोठीवालका जीवन झंझटों और चिताओंसे भरा हुआ। हमारे इस कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि चिकित्सक या कवि मात्र देवता है और कोठीवाल, सेठ, महाजन आदि दानव। इन दृष्टान्तोंसे हमारा तात्पर्य्य केवल यही है कि संसारमें एकका जीवन तो मानव-जातिका कल्याण, उपकार और अभ्युदय करनेमें व्यतीत होता है और दूसरेका केवल झगड़ों, बखेड़ों और झंझटोंमें। दूसरी ओर एक बड़े धनवान् द्वारा भी मानव-जातिका यथेष्ट कल्याण हो सकता है और एक कवि, चिकित्सक या दार्शनिक भी अपने जीवनका बड़े ही निन्दनीय रूपसे उपयोग या निर्वाह कर सकता है। पर यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि समाजका अधिक कल्याण और उपक़ार वे ही लोग कर सकते है जो सांसारिक सुख और वैभवके जालमें अधिक नहीं फँसते। लक्ष्मीके उपासक भी संसारका उपकार कर सकते हैं पर इस सम्बन्धमें उनका उद्देश्य गौण ही रहता है और उनमे धन उपार्जन करनेकी इच्छा ही प्रधान और बलवती होती है।

इस पुस्तकका उद्देश्य परोपकारव्रतधारी साधुओ तथा महात्माओ और कुबेरका अवतार बननेकी इच्छा रखनेवाले व्यापारियोंके गुणों

और दोषोंकी मीमांसा करना नहीं है। इसका वर्ण्य विषय केवल 'सफलता' है जो कि दोनोंके उद्देश्यों और कार्य्योंमें समान रूपसे प्रयुक्त और आवश्यक होती है। इसके अतिरिक्त संसारमें बहुत से लोग ऐसे भी होते है जो केवल प्रसिद्धि, सर्वप्रियता, मान-मर्य्यादा, अथवा इसी प्रकारकी और किसी बातके इच्छुक होते हैं। वे सब भी अपने प्रयत्नमें सफलता चाहते हैं। पर संसारमें बहुत अधिक संख्या उन्हीं लोगोंकी है जिनकी दृष्टि सदा धन पर रहती है और जो केवल धनवान् होनेको ही सफल-मनोरथ होना समझते हैं। उनका यह समझना बहुतसे अंशोंमें ठीक भी है; क्योंकि संसारके अधिकांश कार्य्य एक मात्र धनके अभावके कारण ही कभी कभी अधूरे या अछूते पड़े रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना चाहता है और यह स्वतंत्रता धनकी सहायतासे ही मिल सकती है। पर धनको ही हमें अपना सर्वस्व और देव-देव न समझ लेना चाहिये, बल्कि उसे संसारमे सुख और प्रतिष्ठापूर्वक जीवन व्यतीत करनेका साधन मात्र समझना चाहिये। जो धन संसार, मानव-जाति या समाजके कार्य्योंमे सुगमता उत्पन्न करने और उसके उपकार-साधनका कुछ भी ध्यान रखकर उपार्जित किया जाता है वही वास्तविक धन है और उसीका उपार्जित होना सबको अभीष्ट है। पर जो धन अपने शरीरको अत्यंत कष्ट देकर, गरीबोंका जी दुखाकर, समाजका अनिष्ट करके अथवा इसी प्रकारके किसी और अनुचित उपायसे एकत्र होता है, वह अत्यंत निन्दनीय और गर्हित है। इस प्रकार उपार्जित किये हुए धनसे संसारकी अशान्ति और कष्टकी वृद्धिके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता। अतः जो लोग केवल धन उपार्जन करनेको ही सफलता समझते हो उन्हे उक्त सिद्धान्त कभी भूलना न चाहिये।

स्थायी या वास्तविक और अस्थायी या कृत्रिम सफलताका भेद ऊपर दिखलाया जा चुका है। संभव है कि कोई मनुष्य बहुतसा धन एकत्र कर ले--रुपया पैदा करनेकी कल बन जाय--पर समाज या मानव-हितकी दृष्टिसे वह कौड़ी कामका न हो। संसारमें ऐसे लोगोंकी कमी भी नहीं है। इसके सिवा आपको बहुत से लोग ऐसे भी मिलेंगे जिन्हें और सब कामोंमे पूरी पूरी सफलता हो जाती है पर धन एकत्र करनेमें वे नितान्त असमर्थ होते हैं। कुछ लोग ऐसे भी मिलेंगे जिनके किये न तो धन ही संग्रह हो सकता है और न और दूसरा कोई काम। इसलिये वास्तविक सफलता वही है जो समस्त सांसारिक कार्य्योंमें समान रूपसे प्राप्त की जाय, जिसमे मनुष्यको आत्म-ज्ञान हो, जिससे संसारका अनुभव हो, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक शक्तियोंकी वृद्धिमें सहायता दे और जो समाजके लिये सुखद और शान्ति-प्रद हो। धन, बल, विद्या, परोपकार, उपदेश आदि जिन जिन बातोंसे उक्त फल प्राप्त हो सकें उन सबको सफलता-की सामग्री या अंग समझना चाहिये।

संसारमें ऐसे लोगोंकी बहुत कमी है जो स्वयं किसी प्रकारका व्यापार पेशा या नौकरी आदि न करते हों और केवल दूसरेके दान पर निर्भर रहकर संसारका कल्याण करना चाहते हों। अधिकांश संख्या ऐसे ही लोगोंकी है जो अपने पेटके लिये तरह तरहके धन्धे करते हैं और दया, समाज-हित, धर्म्म या प्रसिद्धि आदिकी लालसासे कभी कभी कोई शुभ कार्य्य कर बैठते हैं। ऐसे लोगोंकी सफल होनेकी इच्छाका भी ध्यान रखना इस पुस्तकमें आवश्यक है। यद्यपि हर एक व्यापार और पेशेमें कुछ न कुछ स्वतन्त्र विलक्षणता या विशेषता होती है और उन सब व्यापारों और पेशोंमें सफल होनेके लिये कोई एक ही निश्चित सिद्धान्त

नहीं बतलाया जा सकता, तथापि दो बातें ऐसी हैं जिनकी आवश्यता सभी कार्य्योंमें समान रूपसे होती है। उनमेंसे एक तो ज्ञान है और दूसरा कर्म्म। ज्ञानसे हमारा तात्पर्य अपने पेशे या रोजगार और समयके प्रवाहकी पूरी जानकारीसे है; अपने अनुभवकी सहायतासे भविष्यका कुछ कुछ अनुमान कर लेना भी इसी ज्ञानके अन्तर्गत है। अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये हम जो जो काम करनेका विचार करते है उनमें अपनी सारी शक्तियोंसे लग जानेका नाम ही कर्म्म है। इसके अतिरिक्त निश्चित उद्देश्य, विचारोंकी दृढ़ता, समयका सदुपयोग आदि और भी अनेक बातें ऐसी है जिनका होना सफलता-प्राप्तिमे वहुत बड़ा सहायक होता है और जिनका वर्णन आगेके प्रकरणोमे किया गया है। इस अवसर पर हम सफलताके सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंका मत दे देना और दो एक साधारण बातें बतला देना ही आवश्यक और यथेष्ट समझते है।

धनवानो और विद्वानोंके मतसे सफलताके रूप और लक्षणोंमे भेद होना बहुत स्वाभाविक है; पर हमारे मतलबके लिये दोनोंके मत और विचार उपयोगी और आवश्यक हैं। संसारमे अधिक संख्या उन्हीं लोगोंकी है जो एक मात्र धनको ही सब कुछ समझते अथवा कमसे कम धन पर ही सबसे अधिक दृष्टि रखते है और इसी लिये एक विद्वान्के मतकी अपेक्षा लोग धनवान्के मतका ही अधिक आदर कर सकते है। अतः पहले एक प्रसिद्ध धनवान्का मत देना ही उपयुक्त जान पड़ता है। इंलैंडमें राथ्सचाइल्ड (Rothschild) नामक एक बहुत बड़ा व्यापारी घराना है। उसके करोड़ो पाउंडके सैकड़ो कारबार और रोजगार होते हैं। उस घरानेके मूलपुरुषने अपने चार सिद्धान्त स्थिर किये थे। एक तो वह दोहरे और तेहरे मुनाफेका काम करता था। अर्थात्

बड़े बड़े कारखानेवालोंके हाथ कच्चा माल बेचता था और फिर उनसे तैयार माल खरीदकर साधारण ग्राहकोंके हाथ बेचता था। * दूसरे वह चटपट सौदा कर लेता था और अधिक लाभकी आशासे मालको रोक न रखता था। वह समझता था कि एक बार माल बेचकर फिर अवसर पड़ने पर किफायत दाममें माल खरीदा और अच्छे नफे पर बेचा जा सकता है। तीसरे वह अभागे लोगोंसे किसी प्रकारका संबंध न रखता था। वह कहता था—"मैंने बहुतसे ऐसे चतुर मनुष्य देखे हैं जिनके पास पहननेके लिये जूते भी नहीं हैं। मैं ऐसे लोगोंसे कभी कोई सम्बन्ध नहीं रखता। उनकी सम्मति तो बहुत अच्छी होती है पर भाग्य सदा उनके प्रतिकूल रहता है। वे स्वयं ही दुखी रहते हैं; मुझे वे क्या लाभ पहुँचावेंगे!" अपने चौथे सिद्धान्तका वर्णन वह इस प्रकार करता है:—"सदा सचेष्ट और साहसी रहो। धन संग्रह करनेके लिये बड़ी दूरदर्शिता और साहसकी आवश्यकता होती है; और जब धन मिल जाता है तब उसे बनाये रखनेके लिये दसगुनी बुद्धिकी आवश्यकता होती है।" एक विद्वान्का मत है कि इन सिद्धान्तोंके अनुसार चलनेसे मनुष्य चाहे धनवान् न हो सके, पर स्वार्थी अवश्य हो जाता है। जो हो, पर इसमें संदेह नहीं कि अयोग्य और अपात्रके पास धन नहीं ठहरता। एक बड़े अनुभवीने एक बार लेखकसे कहा था—"शेरनीका दूध मिलना बहुत कठिन है; और यदि

---

* अभी हालमें कलकत्तेकी एक ॲंगरेजी कम्पनीने ऐसा ही तेहरे मुनाफेका रोजगार आरम्भ किया था। वह ग्राहकोंके हाथ मोजे बनानेकी मशीन बेचती थी और साथ ही मोजे विननेके लिये ऊन आदि भी। इस दोनों चीजोंमें नफा लेनेके उपरान्त वह उन्हीं ग्राहकोंसे बने हुए मोजे खरीदती और फिर नफा लेकर दूसरे लोगोंके हाथ बने हुए मोजे बेचती थी और इस प्रकार तीन बार नफा लेती थी।

किसीको भाग्यवश वह मिल भी जाय तो सोनेके सिवा और किसी धातुके वरतनमें ठहरता ही नहीं, वहुत जल्दी फट जाता है। ठीक यही दशा धनकी भी है। पहले तो वह किसीको जल्दी मिलता ही नहीं; और यदि संयोगवश मिल भी जाय तो अयोग्य या अपात्रके पास ठहरता ही नहीं, तुरन्त निकल जाता है।" अतः यह सिद्ध है कि जो लोग धन प्राप्त करना चाहते हो, वे पहले उसके पात्र वननेका प्रयत्न करें।

एक और विद्वान् कहता है—"मैंने अपने जीवनमें जो कुछ देखा है उससे मुझे यही मालूम हुआ कि संसारमें अबतक जितने लोगोंने सफलता प्राप्त की है उनमेंसे अधिकांशने सदा अपने बाहु और विचार-वल पर ही भरोसा रक्खा है।" अर्थात् जो लोग बात बातमें दूसरोंसे सहारा या सहायता चाहते हों उनके लिये सफल होनेका बहुत ही कम अवसर है। प्रत्येक मनुष्यके जीवनमे एक या अनेक बार एक प्रकार-की लहरे आती है। उन लहरोंसे यदि ठीक ठीक काम लिया जाय तो वे बहुत शीघ्र मनुष्यको सफल-मनोरथ कर देती है—उन्हे मनोवाञ्छित स्थान तक पहुँचा देती है। ये लहरें और कुछ नहीं, उपयुक्त अवसर हैं; और जो लोग ऐसे अवसर पर चूक जाते है उनका जीवन सदा दुःखमय वना रहता है। यदि हमें कभी सौभाग्यवश कोई शुभ अवसर मिल जाय तो विना इस वातका विचार किये कि उसमें हमारी तवीयत लगेगी या नहीं, वह हमारे लिये उपयुक्त होगा या नहीं, हमें उससे लाभ उठानेके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो वहुत ही साधारण कामोंको देखकर हतोत्साह हो जाते है और उनके मनमे यह आशंका होने लगती है कि यह काम हमारे किये होगा या नहीं। वे लोग यह नहीं जानते कि वही मनुष्य कोई काम कर सकता

है जो यह समझता है कि—हाँ, मै इसे कर सकूँगा। यदि हम पहलेसे हिम्मत हारकर बैठ जाँय तो हमें समझना चाहिये कि हम सचमुच उस कार्य्यके अयोग्य है। मनुष्यके सामने छोटे और बड़े सभी प्रकारके काम आते है, पर उसके द्वारा होते वही काम है जिनके लिये वह अपने आपको समर्थ समझता है। यदि हम योग्य और साहसी हों तो बड़े बड़े कामोंको भी सहज समझकर उसमें लग जाते है और यदि हम अयोग्य और भीरु हों तो छोटे छोटे कामोंसे भी घबरा जाते है। यही साहस उद्देश्य-सिद्धिके पथमें पहला पग है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि, हमारे सामने जो काम आवे उसमें हम आँखे मूँद कर लग ही जाँय। हमे अपनी परिस्थितिका भी कुछ ध्यान रखना चाहिये। साधारण बल बुद्धिके मनुष्य कभी कभी बहुत बड़े कामोंमे हाथ डालकर अपनी भारी हानि कर बैठते है। ऐसे मनुष्य जबतक दृढ़प्रतिज्ञ, साहसी, धीर, सहिष्णु और परिश्रमी न हो तबतक उन्हे भारी कामोंसे यथासाध्य बचना चाहिये। एक कृतविद्यका कथन है—"मेरा नियम है कि किसी कार्य्यको आरम्भ करनेसे पहले मैं भली भाँति समझ लेता हूँ कि वह कार्य्यरूपमे परिणत किया जा सकता है या नहीं। जब मुझे इस बातका पूरा निश्चय हो जाता है कि वह कार्य्यरूपमे परिणत हो सकता है तब मैं उसे पूरा करनेमें कोई बात उठा नहीं रखता। जिस कामको मै एक बार आरम्भ कर देता हूँ उसे कभी बिना पूरा किये नहीं छोड़ता। मेरी सारी सफलताका मूल यही नियम है।"

बड़े बड़े बुद्धिमानों, विद्वानों और धनवानोंके कथनका सारांश यही है कि किसी कार्य्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको विचार और परिश्रमपूर्वक निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिये। जब

जार अलेकजेंडरने नेपोलियनसे उसकी सफलताका मूल मंत्र पूछा तव उसने उत्तर दिया कि इसके लिये किसी कार्य्यमे निरंतर लगे रहना ही आवश्यक और यथेष्ट है । वेन्जमिन फ्रैंकलिनकी सम्मति और भी अधिक उपयुक्त और ग्राह्य है । वह कहता है:—"कोई कार्य्य केवल इच्छा करनेसे ही नहीं वल्कि परिश्रम करनेसे होता है । जो मनुष्य केवल आशा पर जीता है उसे भूखो मरना पड़ता है । विना प्रयासके कोई फल प्राप्ति नहीं होती । × × × जो व्यापार करता है वह एक जागीरका मालिक है और जो पेशेपर है वह अच्छी आय और प्रतिष्ठा-का पदाधिकारी है । पर हमे अपने काममे अच्छी तरह और परिश्रमपूर्वक लगे रहना चाहिये । यदि हम परिश्रमी है तो कभी हमारे भूखो मरनेकी नौवत न आवेगी । × × × याद रक्खो, परि-श्रम करनेसे ऋण घटता है और हाथ पर हाथ रखकर वैठनेसे वढ़ता है। यदि तुम किसी वड़ी सम्पत्तिके उत्तराधिकारी नहीं हो तो कोई चिन्ता नहीं; क्योकि परिश्रम ही सौभाग्यका जनक है और परिश्रमीको ईश्वर सव कुछ देता है। × × × × आज परिश्रम करो; न जाने कल तुम्हारे मार्गमें कितनी रुकावटें आ पड़े। एक 'आज' दो 'कल' के वरावर है । जो काम तुम आज कर सकते हो उसे कलके लिये मत छोड़ो । × × × ऐसी दशामे जव कि तुम्हें अपने, अपने परिवार, अपने समाज और अपने देशके लिये वहुत कुछ करना है, तुम कभी हाथ पर हाथ रखकर सुस्त न वनो । × × × तुम्हे वहुत कुछ करना है और सम्भव है कि तुम्हारे पास यथेष्ट साधन न हों; तो भी तुम दृढ़तापूर्वक काममें लग जाओ और तव तुम देखोगे कि उसका कैसा अच्छा परि-णाम होता है । रस्सीकी निरन्तर रगड़से पत्थर घिस जाता है; निर-न्तर परिश्रम करके कीड़ा भी पत्थरमे घर वना लेता है और लगातार

आघात पड़नेसे बड़े बड़े पेड़ कटकर गिर पड़ते हैं।" एक दूसरे विद्वान्‌का कथन है—"संसारमें कुछ भी समझ रखनेवाला कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जिसमें सत्कर्म्म करनेकी शक्ति न हो। क्या तुम कह सकते हो कि संसारमें एक भी ऐसा साधारण किसान, मजदूर या कारीगर है जिसकी बुद्धि और ज्ञान तुमसे बढ़कर है? नाच-रंग और सैर तमाशेमें फँसे रहनेवाले निकम्मे और अकर्मण्य मनुष्य योग्यता और बुद्धिके अभावका बहाना नही कर सकते। मनुष्योमें योग्यताका अभाव नहीं है; अभाव है निश्चित उद्देश्यका। अथवा यों कहिये कि फल-सिद्धिकी शक्तिकी कमी नहीं है; कमी है केवल परिश्रममें मन लगानेकी।"

जो लोग सफल-मनोरथ होना चाहते हों, उन्हें कभी यह आशा न रखनी चाहिये कि कोई ऐसा जादू या मंतर हाथ आ जायगा जिससे वे विना परिश्रम किये ही कार्य्य सिद्ध कर सकेंगे। गुरु गोविंदसिंह और शिवाजीने हाथ पैर बाँधकर इतनी बड़ी शक्तियोंको जन्म नहीं दिया था। भारतवासियोंके हृदयमें नवीन जागृति उत्पन्न करनेके लिये महात्मा महादेव गोविन्द रानडे आरामसे मसनद पर नहीं पड़े रहते थे। बड़े बड़े धनवानों और व्यापारियोंने आसमानकी तरफ मुँह करके धन एकत्र नहीं किया है। विद्वानों और धनवानोंके पास जाकर पूछिये कि वे किस प्रकार अपने पद पर पहुँचे हैं। उनके उत्तरके शब्द भले ही एक दूसरेसे भिन्न हों, पर अभिप्राय सबका एक ही होगा। सफलतातक पहुँचनेके लिये आपको कोई ऐसी सीधी बढ़िया सड़क नहीं मिल सकती जिस पर आप दौड़ते हुए चले जायँ। सफलता देवीके मन्दिरका मार्ग, बदरिकाश्रमके मार्गकी तरह, बड़ा ही संकीर्ण, बीहड़, दुर्गम और कंटकाकीर्ण है। उसमें बहुत ही सँभाल सँभालकर कदम रखना पड़ता है और इसीमें यात्रीके

धैर्य्य और साहसकी परीक्षा होती है। एक वार एक आदमीने दूसरेसे कहाः—"मैं चाहता हूँ कि मैं भी तुम्हारे समान भाग्यवान् बन जाऊँ" उसने उत्तर दिया—" हाँ, तुम्हारा तात्पर्य धैर्यपूर्वक निरन्तर परिश्रम करनेसे है।"

प्रत्येक महान् पुरुपके जीवन-चरितसे हमें यही शिक्षा मिलती है कि सफल-मनोरथ होनेके लिये सबसे पहले हमें अपने कर्त्तव्योंका पालन करना चाहिये। यह कार्य्य देखनेमें भले ही सरल जान पड़े, पर वास्तवमें उसका करना बहुत ही कठिन है। इस उपायको जानते हुए भी मनुष्यके लिये उससे लाभ उा ना बहुत ही दुस्साध्य है। कर्तव्यपालन करनेमें हमें अपनी अनुचित इच्छाओंको रोकना पड़ता है, अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं और सब प्रकारसे अपने आपको वशमें रखना पड़ता है। इतना सब कुछ करके भी जब किसी कारणवश अथवा विशेप अवस्थामें हम अकृतकार्य्य होते हैं तब हमारा जी टूट जाता है, हमारे खेद और कष्टका पारावार नहीं रहता। एक विद्वान्ने तो अकृत-कार्य्यतासे होनेवाले दुःखको 'नरक-यातना' कहा है। और इसमें सन्देह नहीं कि जब हम दिन रात कठिन परिश्रम करके अपना उद्देश्य सिद्ध कर लेते हैं तब हमे स्वर्ग-सुखका ही अनुभव होता है। पर अकृतकार्य्य होने पर हमें कभी हताश या निरुत्साह नहीं होना चाहिये; वरन् उस अकृतकार्य्यताका मुख्य कारण ढूँढ़ निकालना चाहिये और उस कारणको दूर करके पुनः अपने प्रयत्नमे नये उत्साहसे लग जाना चाहिये। याद रहे, विफलतासे घबरानेवाला कभी किसी कार्य्यमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। संसारमें एक ही वार प्रयत्न करके बहुत बड़ी सफलता प्राप्त करनेके उदाहरण बहुत ही कम मिलेंगे। अधिकांश उदाहरण ऐसे ही होंगे जिनमे बहुत सी विफलताएँ

ही सफलताके आधार-स्तंभ हुई हैं। उद्योगी और साहसी मनुष्य सफलताके उच्च शिखर पर चढ़नेके लिये विफलताओंसे सीढ़ियोंका काम लेते है और अकर्मण्य मनुष्य उनसे घबराकर जहाँके तहाँ रह जाते हैं।

सफलता प्राप्त करनेके लिये हमे पहले अपना उद्देश्य निश्चित करनेकी आवश्यकता होती है और यह उद्देश्य निश्चित करनेमें हमें बुद्धिमत्तासे काम लेना चाहिये। उद्देश्य स्थिर करते समय हमें अपनी परिस्थिति और साधनोका पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये और अपनी उच्चाकांक्षाओको परिमित रखना चाहिये। यदि हम इस सिद्धान्तको भूल जायँगे और झोंपड़ेमें पड़े पड़े महलोंके स्वप्न देखेंगे तो संसार हमारी मूर्खता पर हँसेगा और हमें पागल कहेगा। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि बड़े बड़े आविष्कर्त्ताओंके प्रारम्भिक प्रयत्न देखकर लोग हँसते और उन्हे पागल समझते थे; अतः हमें लोगोंके कहने सुननेकी ओर ध्यान न देना चाहिए। पर यह बात विद्या और विज्ञानसम्बन्धी खोजोंके लिये ही अधिक उपयुक्त हो सकती है, सांसारिक वैभव और सम्पत्ति प्राप्त करनेके सम्बन्धमें नहीं। यदि हमारी उच्चाकांक्षा बहुत बढ़ी चढ़ी और असम्भव या पागलपनकी सीमातक पहुँची हुई हो और हम किसी प्रकार उससे पीछा न छुड़ा सकें तो हमें उचित है कि उसके कुछ विभाग कर लें। करोड़ रुपये पैदा करनेकी इच्छा रखकर केवल दस लाख रुपये पैदा करना अवश्य ही अकृतकार्य होना है। इसलिये हमें पहले ही केवल दस लाखकी आशा रखकर अपने काममें लगना चाहिये और जब हम एक बार दस लाख रुपये उपार्जित कर लें तब फिर करोड़ रुपयोको अपना लक्ष्य बनाना चाहिये।

हम लोग प्रायः देखते हैं कि बहुत ही साधारण बुद्धिके मनुष्य अच्छा धन या नाम पैदा कर लेते है और उनसे अधिक बुद्धि या

विद्याके लोग मुहँ ताकते रह जाते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि वे लोग अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओंको सीमावद्ध रखते हैं और शीघ्र ही सफलता प्राप्त कर लेते हैं। जो मनुष्य एक घोड़े पर सवार होता है वह भली भाँति अपनी यात्रा समाप्त कर लेता है; पर सरकसवालोंकी देखादेखी दो घोड़ों पर सवार होना चाहता है वह तुरन्त जमीन पर गिर पड़ता है और उसके हाथ पैर टूट जाते हैं। जिन लोगोकी इच्छाएँ उनके साधनोंसे वढ़कर होती हैं और जिनके उद्देश्य उनके विचारोंसे लम्बे चौड़े होते हैं उनकी सबसे अच्छी पहचान यह है कि वे स्वयं कभी कोई बड़ा काम नहीं करते। वे दिनमें जब घरसे बाहर निकलते हैं तब उन्हें किसी अच्छे साधु महात्मा या सिद्धसे मिलने और रसायन बनानेकी चिन्ता लगी रहती है और जब रातको बिस्तर पर लेटते हैं तब छतकी तरफ रुपयोंकी थैलियाँ गिरनेकी आशासे देखते रहते हैं। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने बाहुबलसे भी थोड़ा बहुत काम कर लेते हैं; पर उनका सारा जीवन बड़ी ही चिन्ता और निराशामें बीतता है। ऐसे मनुष्योंको यदि दुर्भाग्यवश अधिक बकने और कोरी डींगे हाँकनेका रोग हुआ तो फिर वे किसी अर्थके नहीं रह जाते। संसारमें ऐसे मनुष्य बहुत मिलेंगे जो यदि अपना सारा दिन लोगोंको अपनी उच्चकांक्षाएँ और लंबी चौड़ी इच्छाएँ सुनानेमें ही न बिताते तो वे अपने जीवनका थोड़ा बहुत सदुपयोग अवश्य कर सकते थे और अधिक उत्तमतासे अपनी जीविकाका प्रबन्ध कर सकते थे। ऐसे लोगोंके जीवनसे हमे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

अपना उद्देश्य स्थिर करते समय हमें इस बातका भी पूरा ध्यान रखना चाहिये कि एक मात्र धन ही उसका आधार न हो, एकान्त वैभव ही उसकी भित्ति न हो। सुखवृद्धिका सेहरा केवल धनके ही सिर नहीं

बँधा है। उत्तम विचार, परिवार और समाजके लोगोंके साथ प्रेम, दीन दुखियोंकी सहायता, अपने कर्त्तव्योंका ज्ञान आदि अनेक ऐसी बातें है जो धनकी अपेक्षा कहीं अधिक शुभ और प्रसन्न तथा सन्तुष्ट करनेवाली हैं। एकान्त धनकी उपासना दूसरोंके लिए छोड़ दो, तुम अपने जीवनको यथार्थ और सार्थक बनानेका उद्योग करो। यही वास्तविक सफलता है। धनकी बहुत अधिक लालसा मनुष्यको नीचे गिरा देती है, उसे उठते बैठते, सोते जागते धनका भूत सताया करता है। वास्तविक सुख उससे कोसों दूर रहता है। हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि लोग धनसे एकदम विरक्त हो जायँ। जो धन ईमानदारी, नेकनीयती और दूसरे अच्छे उपायोंसे एकत्र किया जाता है वही परोपकार और लोकोन्नति आदिमें लगकर हमें अधिक सुखी भी कर सकता है। इस लिये यदि हमारा लक्ष्य धन पर ही हो तो वह भी इसी दृष्टिसे होना चाहिये। पर साथ ही हमारा यह विश्वास अवश्य है कि शुद्ध, सत्यनिष्ठ और उच्च आशयोंवाला मनुष्य कभी धन-प्राप्तिको सच्ची सफलता न समझेगा।

संसारमे प्रत्येक मनुष्यका कुछ न कुछ कर्त्तव्य हुआ करता है और उसके पास उस कर्त्तव्यके पालनके साधन भी होते है। अतः किसी मनुष्यको इस बातकी कभी शिकायत न करनी चाहिये कि उसके लिये सफलता प्राप्त करना असम्भव है। अक्सर लोग यह कहते हुए देखे जाते है कि हमें कोई काम तो मिलता ही नहीं; हम उन्नति कैसे करें और अपनी योग्यता किस प्रकार दिखलावें? पर यदि वास्तविक दृष्टिसे देखिये तो जान पड़ेगा कि ऐसे लोगोंने काममें लगनेका कभी कोई सच्चा प्रयत्न ही नहीं किया। हम इस बातको स्वीकार करते हैं कि आजकल साधारण पढ़े लिखे लोगोंको नौकरी पानेमें बड़ी कठि-

नाइयाँ होती है, और इन्हीं कठिनाइयोकी लोग शिकायत भी करते है। पर कोई कारण नहीं है कि हम केवल नौकरीके लिये ही जान दें और जीविका-निर्वाहके लिये स्वतंत्र व्यापार करनेसे वैसी ही घृणा करें जैसी कि वास्तवमें नौकरीसे होनी चाहिये। उद्योगी, साहसी और परिश्रमी मनुष्योंके लिये सारा संसार खुला पड़ा है। जो मनुष्य अपना कर्त्तव्य भली भाँति पालन कर सकता है उसके लिए संसारमें किसी तरहकी कमी नहीं है; कमी केवल अपनी योग्यताकी है। योग्य मनुष्यको कामके लिये दूर जानेकी आवश्यकता नहीं होती। हाँ, यदि वह सीधा और उचित मार्ग छोड़कर दाहिने बाएँ मुड़ेगा तो अवश्य चूक जायगा। ऐसी अवस्थामे दुनियाकी शिकायत करना बिलकुल व्यर्थ है। कुछ लोग प्रायः कहा करते है कि दुनियामें रहना दिनपर दिन कठिन होता जाता है; हमारे ऐसे लोगोका अब गुजर नहीं। मानो यदि वे आजसे पाँच सौ वर्ष पूर्व जन्म लेते तो बड़ा भारी राज्य ही स्थापित कर देते। ऐसी बातें करनेसे बढ़कर और कौन सी मूर्खता हो सकती है? ईश्वरने हमें जिस कालमे उत्पन्न किया है, हमे उसी-में अपनी योग्यता दिखलानी चाहिये, उसीमें अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये। भूत या भविष्य काल पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। यदि समय और संसार आगेसे कठिन हो गया है तो हमें अपने आपको भी उसीके अनुकूल बना लेना चाहिये। यदि हम ऐसा न कर सकेगे तो समय और संसार तो हमारे लिये अपनी गति रोकेंगे ही नहीं, हम अवश्य पिछड़े रह जायँगे। संसार और समयको अपने अनुकूल बननेकी इच्छा रखना पागलपन है और स्वयं उनके अनूकूल बनानेका प्रयत्न करना बुद्धिमत्ता है। जो मनुष्य वर्त्तमान समयमे सफलता नहीं प्राप्त कर सकता, वह न तो भूत-कालमे ही कुछ कर सकता या और

न भविष्य कालमें ही कुछ कर सकेगा; क्योंकि उसमें कर्त्तव्य-परायणताकी कमी है, कार्य्य-पटुताका अभाव है।

कुछ लोगोंका विश्वास है कि यदि उपयुक्त अवसर पर मनुष्य कार्य्य आरम्भ करे तभी वह सफलता प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं। इसी लिये कुछ लोग ऐसे अवसरोंकी ताक लगाये बैठे रहते हैं। कभी कभी तो ऐसा भी होता है कि अवसर आता है और निकल जाता है; लोग ताक लगाये बैठे ही रह जाते हैं। हम मानते है कि उपयुक्त अवसरसे हमारे कार्य्यमे बहुत सरलता हो जाती है और हमें अपनी योग्यता प्रदर्शित करनेकी बहुत अच्छी सन्धि मिलती है। पर इसका यह तात्पर्य्य नहीं होना चाहिये कि जबतक कोई उपयुक्त अवसर न आवे तबतक हम कोई काम ही न करें। यदि सच पूछिये तो अधिक अवसर काम करनेवालोंको ही मिलता है, हाथ पर हाथ रखकर बैठनेवालोंको नहीं। इस समय जो काम मिलें, हमें उसीमें लग जाना चाहिये। संसारमें बहुत सी चीजें ऐसी हैं जो हमारे ध्यानमें केवल इसी लिये नहीं आतीं कि हम उनकी ओर देखते नहीं। एक बड़े विद्वान्का कथन है—"हमारा जन्म विश्वकी जटिल समस्याकी मीमांसा करनेके लिये नहीं बल्कि अपना कर्त्तव्य ढूँढ़ निकालनेके लिये हुआ है।"

ऊपर कहा जा चुका है कि संसारमे प्रत्येक मनुष्यका कुछ न कुछ कर्त्तव्य हुआ करता है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी विशेष कार्य्यके लिये उपयुक्त हुआ करता है। इस लिये जीवन-यात्रा आरम्भ करनेसे पहले अर्थात् बाल्यावस्थाकी समाप्ति पर ही प्रत्येक व्यक्तिके लिये उसकी रुचि और स्वभावके अनुकूल कार्य्यका निश्चय हो जाना चाहिये। युवा पुरुषोंके लिये यह कार्य्य बड़े महत्त्वका है। संसारमें ऐसे लोग बहुत कम होते है जो सभी प्रकारके

कार्य्य उत्तमतापूर्वक कर सकें; अधिकांश लोग ऐसे ही हैं जिनकी प्रवृत्ति और रुचि किसी विशेष कार्य्यकी ओर हो। संभव है, कुछ लोग ऐसे भी हो जिनकी कोई निश्चित रुचि न हो। ऐसे लोग आरम्भमें जिस कार्य्यको हाथमें लेते हैं उसीमें किसी न किसी प्रकार उनका जीवन बीत जाता है। इसलिये माता पिताका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे अपने लड़कोंकी रुचिका ध्यान रखकर उसीके अनुकूल उन्हें शिक्षा दिलवावे। सम्भव है कि अपरिपक्व बुद्धिके कारण युवकोंकी रुचि आगे चलकर कुछ अंशोमे हानिकारक प्रमाणित हो, पर वह हानि अपेक्षाकृत कम ही होगी। इस हानिसे वचनेके लिये यह आवश्यक है कि युवकोंकी रुचि और कार्य्यों आदि पर विशेष ध्यान रक्खा जाय, और यदि उनकी प्रवृत्ति किसी विशेप कार्य्यकी ओर जान पड़े तो उन्हे किसी अच्छे कार्य्यमें लगा दिया जाय। अच्छे कार्यसे हमारा तात्पर्य किसी ऐसे व्यापार या पेशे आदिसे है जो प्रतिष्ठित हो, जिसमें बहुत अधिक शारीरिक श्रम न करना पड़े, जिसमें जीविका-निर्वाहके लिये यथेष्ट आय हो सके, और जो अन्य दृष्टियोंसे उपयुक्त हो। नहीं तो निराशा और विफलताकी ही अधिक सम्भावना होगी, आशा और सफलताकी कम।

हमें यह वात भूल न जानी चाहिये कि सफलताके साथ स्वास्थ्यका भी वहुत कुछ सम्बन्ध है। एक हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ मनुष्य जितने दृढ़तापूर्वक कर्त्तव्यके पालनमें निरन्तर लगा रहता है उतना एक दिन-रात कराहनेवाला रोगी मनुष्य नहीं रह सकता। सफल-मनोरथ होनेके लिये स्वस्थ होना वहुत आवश्यक है। यदि शरीर स्वस्थ हो और मन किसी अंशमे दुर्वल भी हो तो किसी प्रकार काम चल सकता है। पर शरीरकी अवस्थताके कारण अधिक कठिनाइयोंकी संभावना हो सकती

है; इसलिये अपना व्यापार या पेशा निश्चित करनेसे पहले अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तिका भी ठीक ठीक विचार कर लेना चाहिये। जिन लोगोंकी मानसिक शक्ति निर्बल और शारीरिक शक्ति अधिक सबल हो वे व्यापारके लिये अधिक उपयुक्त होते है और जिनका शरीर दुर्बल और मस्तिष्क पुष्ट हो वे विद्या बुद्धि और विज्ञान आदिके कार्योंके लिये अधिक उपयोगी होते है। यदि हममें शरीर या मन सम्बन्धी कोई प्राकृतिक दोष या अभाव हो तो हमें यथासाध्य उसे दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये और यदि ऐसा करना असाध्य हो तो हमें अपनी प्राप्त शक्तियोसे ही काम लेना चाहिये। गोसाईं तुलसीदासजीने बाँहमें बहुत अधिक पीड़ा होने पर भी हनुमानबाहुक तथा अन्य कई काव्य लिखे थे। सूरदासने नेत्रहीन रहकर ही इतना काव्यामृत बरसाया था। रणजीतसिंहने काने होकर और तैमूरने लँगड़े होकर ही इतने बड़े बड़े राज्योंकी सृष्टि की थी।

यद्यपि सफलतामें शारीरिक स्वस्थताकी आवश्यकता होती है, तथापि अधिकांश प्रमाण इसी बातके मिलते है कि प्रायः विचक्षण बुद्धि-वालोंको ही अपने प्रयत्नोंमें श्रेय मिलता है। यदि हमसे तीव्र बुद्धिवाले और दूरदर्शी लोग सब कार्योंमें हमसे आगे बढ़े रहें तो हमें आश्चर्य न करना चाहिये। बल्कि वास्तविक आश्चर्य्यका स्थल तो वही है जब कि हम उन्हें पीछे छोड़कर उनसे आगे बढ़ जायँ। जिन लोगोंने अपनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता आदि गुणोंके कारण प्रतिष्ठित पद पाया हो, उनके बतलाये हुए 'परिश्रम' 'धैर्य्य' 'साहस' 'कर्त्तव्यपरायणता' 'उत्तम आचरण' तथा सफलता प्राप्तिके इसी प्रकारके अन्य अनेक मूलमंत्रोसे यदि हम किसी प्रकारका लाभ न उठा सकें तो इसमें भी आश्चर्य्यकी कोई बात नहीं है। इसलिये हमें

यही सिद्धान्त स्थिर करना चाहिये कि सच्ची सफलताके पूरे अधिकारी वही लोग होते हैं जिनकी बुद्धि तीव्र, विचार-शक्ति प्रबल और दूर-दर्शिता असाधारण होती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिनकी बुद्धि और विचार-शक्ति साधारण या अल्प हो वे अपना जीवन किस प्रकार सफल और श्रेष्ठ बनावें। ऐसे लोगोसे हमारा नम्र निवेदन है कि वे यथासाध्य अपनी बुद्धिको सबल और विचारोंको उन्नत बनानेका प्रयत्न करें। शिक्षा, सदाचरण और अच्छे लोगोंकी संगति आदि अनेक बातें ऐसी हैं जिनकी सहायतासे हमारी मानसिक निर्बलता बहुत कुछ दूर हो सकती है। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि ईश्वरने मनुष्यको जितनी शक्तियाँ दी है उन सबका, बहुत ही विशेष अवस्थाओंको छोड़कर, अच्छा सुधार और संस्कार हो सकता है। यह एक साधारण नियम है कि मनुष्य अपनी जिस शक्तिसे जितना ही अधिक काम लेता है वह शक्ति उतनी ही संस्कृत, पुष्ट और उपयोगी हो जाती है और जिस शक्तिका व्यवहार कम होता है वह आप ही आप मन्द पड़ जाती है। एकहीमे मिले हुए सैकड़ों आदमियोंके हजारों कपड़ोंको अच्छेसे अच्छा राजनीतिज्ञ या कवि उतने सरलतापूर्वक अलग नहीं कर सकता जितने सरलतापूर्वक एक धोबी कर सकता है। एक साधारण गड़रिया जितनी जल्दी हजारों भेड़ोंमे मिली हुई अपनी सेकड़ो भेड़ोंको पहचानकर अलग कर सकता है उतनी जल्दी अच्छेसे अच्छा शतावधानी भी नहीं कर सकता। न तो धोबीमें ही कोई असाधारण शक्ति है और न गड़रियेमे ही कोई लोकोत्तर गुण। दोनोने अपनी बुद्धि और स्मरण शक्तिका जिस कार्य्यमे अधिक उपयोग किया है उसीमें वे अधिक दक्ष भी हो गये है। इस प्रकार यदि आप भी चाहे तो बराबर काम लेकर अपनी किसी मन्द शक्तिको अधिक तीव्र कर सकते और उससे यथेष्ट लाभ उठा सकते है।

यदि आप किसी ऐसे मनुष्यके कार्य्यों पर भली भाँति विचार करें जिनसे आपकी समझमें सांसारिक अथवा अन्य कार्य्योंमें अच्छी सफलता प्राप्त की हो तो आपको शीघ्र ही ज्ञात हो जायगा कि उसमें केवल किसी एक निश्चित गुण या शक्तिके अतिरिक्त और कोई लोकोत्तर विशेषता नहीं है। साथ ही यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि अधिक विफल-मनोरथ वे ही लोग होते हैं जिनकी कई मानसिक शक्तियाँ अधिक तीव्र होती है। साधारण मानसिक बलवाले मनुष्यकी ही प्रवृत्ति व्यापार आदिकी ओर अधिक होती है। जिनकी मानसिक शक्तियाँ अधिक प्रबल होती है उन्हें व्यापार या शारीरिक परिश्रमका और कोई काम नहीं रुचता। ऐसी अवस्थामे कोई मनुष्य यह नहीं कह सकता कि मेरी योग्यता बहुत ही साधारण है और इसी लिये मैं सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि आर्थिक दृष्टिसे सफलता बहुधा साधारण योग्यताके लोगोंको ही होती है।

"अनुभवके द्वारा हमें जो सबसे मुख्य शिक्षा मिलती है वह यह है कि विचारशक्ति या योग्यताकी अपेक्षा आचरण पर सांसारिक सफलता अधिक निर्भर करती है, और यही बात प्रायः देखी भी जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ अधिक विचक्षण बुद्धिवाले लोग इस नियमको भंग करते हुए देखे जाते है और सफलता प्राप्त करानेवाले अनेक उपायोंकी गणना दोषों या दुर्गणोंमें ही हो सकती है, तथापि उक्त नियमकी सत्यतामें सन्देह नहीं किया जा सकता; और ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसकी यथार्थता प्रगट होती जाती है।" यह मत एक बड़े विद्वान् का है और उसकी सत्यतामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता। अत्यन्त दूषित और निन्दनीय उपायोसे धन संग्रह करके चैनसे जीवन बितानेवाले दो चार दस आदमी हर शहरमें मिल-

जायँगे, पर अधिकांश लोग ऐसे ही होगे जिन्होंने इच्छा और विचार शक्ति, साहस और धैर्य्य आदि गुणोके कारण ही सफलता पाई हो; और ये सब गुण आचरणकी व्याख्याके अन्तर्गत ही आ जाते हैं। जो कोठीवाल सदासे बेईमानी करता आया हो उसका कारबार बहुत अधिक दिनोतक नहीं चल सकता। जिस मनुष्यका हृदय कलुषित हो और जो दूसरोका धन अपहरण करनेके लिये सदा तैयार बैठा रहता हो उसकी आत्मा उत्तम फलोंकी प्राप्तिमे कभी उसकी सहायक नहीं हो सकती, उलटे उसके कामोंमे अड़चन डाल सकती है। हम यह तो नहीं कह सकते कि व्यापारिक सफलताका मूल केवल पूरी ईमानदारी ही है; पर यदि वास्तवमे ऐसा ही हो तो वह बहुत अधिक प्रशंसनीय और श्रेष्ठ है। जो कर्जदार अपने कर्जका आधा रुपया आज चुका दे और बाकी आधा रुपया आजसे दस बरस बाद ब्याज सहित चुकावे उसकी प्रशंसा लुच्चेसे लुच्चा व्यापारी भी करेगा। कार-बारमे लेन देनकी सफाईसे जितना अधिक लाभ होता है उतना बे-ईमानीसे नहीं। एक अनुभवी भारतीय व्यापारीका उपदेश है—"अपना ऋण ठीक समय पर चुका दो; सारे संसारके धन पर तुम्हारा अधिकार हो जायगा।" जो मनुष्य किसीका धन लेकर उसे वापस करना जानता है उसे कभी किसी चीजके अभावका कष्ट नहीं सहना पड़ता।

शुद्ध आचरण स्वाभावतः दूसरोकी श्रद्धा, भक्ति और प्रीति अपनी ओर खींचता है। यदि हम किसी बड़े नेताकी आचरणभ्रष्टताका हाल सुनते है तो हमारे हृदयमे उसके लिये वह उच्च स्थान और भाव नहीं रह जाता जो कि उसे शुद्धाचारी समझनेके समय था। यदि हमें किसी बड़े विद्वान्के मद्यप (शराबी) होनेका प्रमाण मिल जाय तो हमारी दृष्टिमे उसका आदर कम हो जाता है। यह मनुष्यका स्वभाव ही है, इसे कोई बदल नहीं सकता। बहुतसे लोग ऐसे होगे जिन्हें कोई

केवल इसी लिये नौकर नहीं रखता कि वे शराबी हैं, जुआरी हैं, कभी कभी मुजरा सुनते हैं, कमसे कम जमकर कभी कोई काम नहीं कर सकते, ठीक समय पर हाजिर नहीं होते, काम-चोर हैं, मालिकको जवाब दे बैठते हैं, या बहुत अधिक गप्पे लड़ानेके रोगी हैं। ये सब दोष आचरणकी हीनताके ही द्योतक है और इनसे मनुष्य-की उन्नतिमें बड़ी भारी बाधा होती है । जी लगाकर काम न करना भी वैसा ही दोष है जैसा कि गँजेड़ी, शराबी या जुआरी होना। ऐसे आदमी सचमुच सफल होनेके अयोग्य होते है ।

और आगे चलकर हम देखते हैं कि भिन्न भिन्न कार्य्यों, व्यापारों और पेशोंमें सफलताकी मात्रा भी एक दूसरेसे भिन्न होती है। अर्थात् कुछ कार्य्योंमे औरोंकी अपेक्षा शीघ्र और अधिक सफलताकी सम्भावना होती है। यदि सफलताका अधिक व्यापक अर्थ लिया जाय तो यह सिद्धान्त निरर्थक हो जाता है; क्योंकि साधारणतः यही कहा जाता है कि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक समय और कार्य्यमे परिश्रम करके पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है। पर फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि कुछ कार्य्योंमें सफलताका विशेष अवसर मिलता है। पानकी दूकान करनेकी अपेक्षा पंसारीका काम करने, और लेमनेड और शरबत बेचनेकी अपेक्षा बिसातबानेका काम करनेमें शीघ्र सफलता होती देखी गई है। आर्थिक दृष्टिसे एक लेखक या सम्पादकको सफलताका उतना अच्छा अवसर नहीं मिलता, जितना कपड़े या गल्लेके किसी व्यापारीको मिलता है। अधि-कांश नौकरी पेशेवाले सदा ज्योके त्यो बने रह जाते है और उनसे कम बुद्धि और ज्ञानवाले साधारण व्यापारी देखते देखते अच्छी हैसियत पैदा कर लेते हैं। यह बात ठीक है कि व्यापारीकी अपेक्षा नौकरी करने-वाला अपने सिर कम झंझटें लेता है और थोड़ी जोखिम सहता है और संभवतः इसी लिये सफलतासे भी वंचित रहता है। यह बात भी ध्यान

रखने योग्य है कि विद्वानों और विद्याकी सहायतासे जीविका निर्वाह करनेवालोंको आर्थिक दृष्टिसे अपेक्षाकृत बहुत ही कम सफलता मिलती है। बात यह है कि विद्या-व्यसनियोंको न तो धनकी अधिक परवाह ही होती है और न धन उपार्जित करनेकी अक्ल। और उनकी दरिद्रताका प्रायः यही मुख्य कारण हुआ करता है। अनेक प्रकारसे लोगोंसे रुपया खींचनेकी कल—लखपती लालची बैरिस्टरों और डाक्टरोंकी गणना सच्चे विद्या-व्यसनियोंमें नहीं हो सकती, हाँ उन्हे विद्याके व्यवसायी अवश्य कह सकते है।

इन पृष्ठोंमें कही हुई सब बातोंका मुख्य सारांश यही है कि यदि किसी मनुष्यमें साधारण योग्यता हो, उसका शरीर स्वस्थ हो और वह निरन्तर विचारपूर्वक उद्योग करता चला जाय तो साधारणतः उसे अच्छी सफलता प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त समयका सदुपयोग, निश्चित उद्देश्य, दृढता, मितव्यय, सदाचरण, सहिष्णुता, सुशीलता, दूरदर्शिता, बुद्धिकी विचक्षणता आदि अनेक ऐसी बातें हैं जो समय समय पर मनुष्यको उन्नत, अग्रसर और सफल बनानेमे बहुत कुछ सहायक होती हैं। अगले पृष्ठोंमें इन्हीं सबका सविस्तर वर्णन किया गया है।

पहला अध्याय।
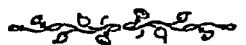
समयका सदुपयोग।

जीवनकी निःसारता—समयका नाश—समयका सदुपयोग ही मनुष्यको सर्वगुणसम्पन्न बनाता है—व्यवस्था—समय और अवसर—एक उदाहरण—बाल्यावस्थाके संस्कार—कुछ उपयोगी सिद्धान्त—प्रत्येक बातसे कुछ शिक्षा लो—सवेरे और देरसे दूकान खोलनेवाले दूकानदार—दोनोंकी तुलना—समयकी पाबन्दी।

यदि संसारमें कोई ऐसा पदार्थ है जो मनुष्यके हिस्सेमे बहुत ही थोड़ा आया है और जिसका सबसे अधिक अपव्यय और नाश होता है, तो वह समय ही है। जब हम इस बातका ध्यान करते हैं कि जीवनमे हमें कितना कम समय मिला है तो हमें उसके अपव्यय पर बड़ा ही आश्चर्य्य होता है। और बातोंमें तो हम लोग बहुत कुछ सचेत रहते हैं पर समयको बड़ी बुरी तरहसे नष्ट करते हैं। ऐसे लोग बहुत ही कम है जो इस बातका ध्यान रखते हों कि उनका कितना समय आवश्यक और उपयोगी कामोंमें लगता है और कितना हँसी-दिल्लगी, सैर-तमाशे और दूसरे व्यर्थके कामोंमें नष्ट होता है। यदि आप कभी अपने समयके सद् और असद् उपयोगका हिसाब लगावें तो लज्जित और दुःखी होनेके सिवा आपसे और कुछ भी न बन पड़ेगा।

सब लोग कहा करते हैं कि दुनिया एक सराय है, जीवन पानीका बुलबुला या स्वप्न है, आदमीकी जिन्दगीका कोई ठिकाना नहीं, आदि आदि। अधिकांश कवियोंने भी जीवनकी अल्पताके ही गीत गाये हैं और प्रकारान्तरसे समयका महत्त्व ही सिद्ध किया है। पर तो भी लोगोंको ज्ञान नहीं होता, वे समयका कोई मूल्य नहीं समझते। यह सब देखते हुए हमें यही समझना पड़ता है कि बड़े बड़े विद्वानो और महात्माओने हमें लाभ पहुँचानेके जो प्रयत्न किये थे वे सब व्यर्थ हुए; शताब्दियोंका प्राप्त किया हुआ अनुभव हमें कुछ भी लाभ न पहुँचा सका। संसारके अधिकांश लोगोंको देखते हुए यही कहना पड़ता है कि न तो अबतक उन लोगोने अपना उत्तरदायित्त्व समझा है और न समयका मूल्य। इसके दो कारण हो सकते हैं; एक तो विचारोंकी त्रुटि और दूसरा अपने कर्त्तव्योंके ज्ञानका अभाव। ये दोनो कारण बहुत-से अंशोमें एक एक दूसरेसे मिले हुए हैं और दोनोका फल या परिणाम

भी सम्मिलित ही है। यह विश्वास करनेको जी नहीं चाहता कि समय नष्ट करनेवाले लोग इतने अपरिणामदर्शी हो गये है कि ऐसे अमूल्य पदार्थका ऐसा दुरुपयोग करें। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे लोगोंमें न तो उच्च विचार ही होते है और न महान् उद्देश्य ही। उन लोगोको न तो समयका मूल्य मालूम रहता है और न उसके भली भाँति उपयोग करनेका ज्ञान। यदि सच पूछिये तो हम लोग अपने बालकोंको इस बातकी शिक्षा ही नहीं देते कि अपने वास्तविक धनका उपयोग किस प्रकार करना चाहिये। हम उन्हें भाषा, विज्ञान और कला आदिकी शिक्षा तो अवश्य देते है पर यह नहीं सिखलाते कि समयको किस प्रकार नष्ट होनेसे बचाना चाहिये।

पाठशालाको ही लीजिये। बालक वहाँ शिक्षा प्राप्त करनेके लिये जाते है; पर वहीं उनका बहुतसा समय व्यर्थ नष्ट किया जाता है। जब वे घर आते हैं तब वहाँ भी वही दशा उपस्थित रहती है। सवेरे, सन्ध्या, भोजन, या बातचीतके समय कभी इस समयका ध्यान नहीं रक्खा जाता। बालक अपने माता-पिताको प्रायः यही कहते हुए सुनते है— "आज हम अमुक कार्य्य करनेको थे, पर नहीं हो सका।" "आज हम अमुक परम आवश्यक कार्य्य करना बिलकुल भूल गये। अच्छा, कल देखा जायगा।" पर वह 'कल' कभी नहीं आता। न जाने इस 'कल' ने संसारमे कितनी मूर्खता फैला रक्खी है, कितनोके प्रण तोड़े है और कितने लोगोका सर्वनाश किया है। रोज एक दिन आता है और बीत जाता है; उसे हम वापस नहीं ला सकते और न बीते हुए 'कल' को 'आज' बना सकते हैं। जो दिन बीत गया उसके लिये पश्चात्तापके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता। उचित तो यह है कि उसका पीछा छोड़कर हम 'आज' का ध्यान रक्खें और उसे व्यर्थ नष्ट न करे।

पर जिस प्रकार शोर कम करनेके लिये सभा समितियों और थिएटरों आदिमे " चुप रहो, चुप रहो " करके ही लोग बहुतसा शोर मचाते हैं, उसी प्रकार बहुतसे लोग बीते हुए समयके लिये पश्चात्ताप करनेमें ही अपना बहुतसा वर्तमान समय भी नष्ट कर देते है। पर उचित यह है कि " बीती ताहि बिसारि दे, आगेकी सुधि लेय " को हम अपना मूल सिद्धान्त बनावें और वर्तमान कालके एक एक क्षणका पूरा ध्यान रक्खें; यथासम्भव उनमेंसे किसीको व्यर्थ न जाने दें।

मनुष्य ज्योंही समयकी उपयोगिता समझने लगता है त्योंही उसमें महत्ता, योग्यता आदि अनेक गुण आने लगते है। मनुष्यमें चाहे कितने ही गुण क्यो न हों पर जब तक वह समयकी कदर करनो न सीखे, उपस्थित अवसरोंका उपयोग न करे, तबतक उसे कोई लाभ नहीं हो सकता। यदि सच पूछिये तो समयका दुरुपयोग करने-वालोंको कभी अच्छे अवसर मिल ही नहीं सकते। जिस समयको मनुष्य व्यर्थ गँवाता है उसी समयमें प्रयत्न करके वह बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य अपना कर्त्तव्यपालन करना चाहता हो—जो युवक जीवनमें सफलता प्राप्त करनेका इच्छुक हो, उसे सबसे पहले यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अपनी योग्यता, शक्ति और साधनोकी शिकायत छोड़कर उसे यह समझना चाहिए कि समय ही मेरी ' सम्पत्ति ' है और उसीसे लाभ उठानेके लिये उसे प्रयत्नशील होना चाहिए। कितने दुःखकी बात है कि लोगोको व्यर्थ नष्ट करनेके लिए तो बहुतसा समय मिल जाता है पर काममें लगानेके लिए उसका एकदम अभाव हो जाता है। बहुतसे लोग ऐसे मिलेगे जो परोपकारमें हातिमसे भी बढ़ जाते, सैकड़ों रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करते और बहुतोंके कष्ट दूर करते। पर क्या करें, बेचारोंके पास समय

नहीं है ! वहुतसे लोग ऐसे भी होंगे जो अपनी वुद्धि और योग्यताके द्वारा वड़े वड़े दार्शनिकोंके कान काटते और अच्छे अच्छे विषयोकी पुस्तकोंके ढेर लगा देते। पर क्या करे, उन्हें समय नहीं मिलता। यदि आप ऐसे लोगोकी वातें सुने तो आप समझेंगे कि उनका सारा समय वड़े ही उपयोगी और आवश्यक कर्त्तव्योके पालनमे वीता है* । पर वे 'उपयोगी और आवश्यक कर्तव्य' समयके नाशके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। समयका दुरुपयोग ही उन्हें समयका इतना दरिद्र वना देता है कि वे जीवन-यात्राको निर्वाह करनेमें नितान्त असमर्थ हो जाते हैं।

सच तो यह है कि व्यवस्थासे ही समय निकलता है। प्रत्येक कार्य्यके लिए एक निश्चित समय होना चाहिए और हर एक काम अपने समय पर होना चाहिए। विना इसके किसी उत्तम फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती। समयका ठीक ठीक उपयोग करनेके लिये हमें उसका उचित विभाग करना चाहिए। हमारा यह तात्पर्य्य नहीं है कि मनुष्य इस प्रकारके वन्वनसे अपने आपको कसकर जकड़ ले। वास्तवमें मनुष्यको समय पर अपना पूरा अधिकार रखना चाहिए; स्वयं उसका गुलाम न वनना चाहिए। समय पर पूरा पूरा अधिकार रखनेके लिए कुछ निश्चित निय-

---

* इस अवसर पर लेखकको अपने एक ऐसे मित्रका स्मरण हो आया जो कि पढ़े लिखे और सम्पन्न होने पर भी कभी किसी प्रकारका काम नहीं करते। एक वार जव वे रास्तेमें मिले तव मैंने शिकायत की कि कभी तुम्हारे दर्शन नहीं होते। उत्तर मिला—"क्या करूं मित्र, वहुतसी झझटें रहती है, फुरसत विलकुल नहीं मिलती।" इधर उधरकी दो चार वातें करनेके उपरान्त मैंने फिर पूछा—"कहो, आजकल करते क्या हो!"—आप वोले—"कुछ नहीं, यों ही घरपर पड़े रहते हैं।" कहाँ तो—'फुरसत विलकुल नही मिलती' और कहाँ—'यों ही घर पर पड़े रहते है!'

-मोंका बना लेना आवश्यक है और फिर उन नियमोंका कभी व्यर्थ और निरर्थक अतिक्रमण न हो। कोई कोई आदमी उतना ही काम केवल एक दिनमें कर लेते है जितना कि और लोग एक सप्ताहमें भी नहीं कर पाते। विचार करनेसे ज्ञात होगा कि इस भेदका कारण समयका सदुपयोग ही है, उस मनुष्यकी असाधारण योग्यता या बुद्धि नहीं। कामकाजी आदमीके मुँहसे आप फुरसतका नाम भी न सुनेंगे, क्योकि उसे फुरसत है ही नहीं। फुरसत केवल निकम्मे और सुस्त आदमि-योंको ही होती है; और वह भी काम करनेके लिए नहीं बल्कि गप्पें लड़ाने, इधर उधर घूमने और सैर-तमाशे आदिमें जानेके लिए। उन्हें इतनी अधिक फुरसत होती है कि काम करनेका अवसर ही नहीं मिलता। फुरसतमें आप ही आप बढ़ जानेकी इतनी अधिक शक्ति है कि यदि उसे दबानेका प्रयत्न न किया जाय तो मनुष्यका सारा जीवनही उसकी नजर हो जाय। जिस मनुष्यको इस प्रकारकी बहुतसी फुरसत हो उसके जीवनको बड़ा ही दुःखपूर्ण समझना चाहिए। ऐसे मनुष्योंको समयके मूल्य और उसके सदुपयोगकी आवश्यकताका कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

संसारका सबसे अधिक उपकार उन्हीं लोगोके द्वारा हुआ है जि-न्होने कभी अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाया। ऐसे ही लोग बड़े बड़े कवि, महात्मा, दार्शनिक और आविष्कर्ता हुए है। सर्व साधारण जिस समयका कुछ भी ध्यान नहीं रखते उसी समयमें उन्होंने बड़े बड़े काम किये है—उन्होने एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने दिया। एक महात्माका मत है—“ हमें उत्तम अवसरोंके आसरे न बैठना चाहिए बल्कि साधारण समयको उत्तम अवसरमें परिणत करना चाहिए। ” और यही सफलता प्राप्त करनेका बहुत बड़ा सिद्धान्त है।

समयका सदुपयोग ही मानों अवसरका सदुपयोग है। अच्छा कार्य्य करने, उत्तम विषयों पर विचार करने और ज्ञानकी वृद्धि करनेका कोई अवसर कभी हाथसे न जाने देना चाहिए। जो लोग अपने पढ़ने-लिखनेकी कोई निश्चित व्यवस्था या प्रबन्ध नहीं कर सकते वे थोड़ी फुरसतके समय ही थोड़ा बहुत पढ-लिखकर धीरे धीरे अपना ज्ञान-भण्डार बढ़ा सकते हैं। जिन चीजोंको हम बहुत ही तुच्छ समझकर उनकी अवहेलना करते है उन्हींसे और लोग बहुत अच्छा लाभ उठाते है। इस अवसर पर हमे उस परिश्रमी होनहार बालकका ध्यान होता है जिसे एक महाजनके यहाँसे व्यापार करनेके लिए एक मृतप्राय चूहा मिला था। बिल्लीके खानेके लिये वह चूहा एक बनियेको देकर उसने दो मुट्ठी चने पाये थे और वे ही चने कुछ यात्रियोको खिला और पानी पिलाकर उसने कुछ पैसे जमा किये थे। धीरे धीरे उन्हीं पैसोसे उसने एक छोटा व्यापार आरम्भ किया और कुछ दिनोंके बाद लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति प्राप्त की। ऋण देनेवाले अपने महाजनको जब वह मृतप्राय चूहेके बदलेमें सोनेका चूहा देने गया तब महाजनने उसकी योग्यता और बुद्धिमत्तासे प्रसन्न होकर अपनी कन्याका विवाह उसीसे कर दिया और उसे अपनी अतुल सम्पत्तिका उत्तराधिकारी बनाया। इतना वैभव उसने केवल एक मृतप्राय चूहेके उपयोगसे पाया था! बहुत ही तुच्छ और निकम्मी चीजोंसे भी कभी कभी बहुत बड़ा काम निकलता है। संसारकी कोई वस्तु इतनी तुच्छ नहीं है कि उसका जरा भी उपयोग न हो सके। जरासा चिथड़ा ऐसे छेदको बन्द कर देता है जिसमेसे हजारों रुपयोंकी चीजें बह जाती है। कभी किसी चीजको व्यर्थ या तुच्छ न समझो, कभी न कभी उससे तुम्हारा बहुत बड़ा काम निकलेगा। फारसीमें एक कहावत है—“दाश्तः आयद बकार।”—रक्खी हुई चीज काम

आती है। अँगरेजीकी एक कहावतका तात्पर्य्य है—" किसी चीजको सात बरसतक अपने पास रक्खो, तब तुम्हें उसकी उपयोगिता जान पड़ेगी।" ये सब सिद्धान्त समय पर भी इसी प्रकार प्रयुक्त हो सकते है। जो घंटा आध-घंटा तुच्छ समझकर हम व्यर्थ गँवा देते है वही हमारे लिये बहुत कुछ उपयोगी हो सकता है।

बाल्यावस्थाके संस्कारोंका हमारे भावी जीवनपर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। यदि किसी छोटे वृक्ष पर कोई अक्षर या चिह्न अंकित कर दिया जाय तो वृक्षके बढ़नेके साथ ही साथ वह अक्षर या चिह्न भी बराबर बढ़ता ही जायगा। इसलिये हमें उचित है कि अपने बालकोंको आरम्भसे ही समयका महत्त्व बतला दें और उन्हें उसका सदुपयोग करनेकी शिक्षा दें। जो बालक आरम्भसे ही समयकी कदर करना न सीखेंगे उनके लिए आगे चलकर समयका मूल्य समझना बहुत ही कठिन हो जायगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है, सफलता प्राप्त करनेके लिये समयका महत्त्व जानना और उसका सदुपयोग करना बहुत ही आवश्यक है। समयकी व्यवस्थासे बहुत काम निकलता है। व्यवस्था एक ऐसी चीज है जिसके अभावमें बहुतसे गुण व्यर्थ हो जाते हैं और मनुष्यको उलटे दुखी होना और अपराधी बनना पड़ता है। जिस मनुष्यके सब कार्य्य व्यवस्थित हों उसके कामोंमे अड़चनोंकी बहुत ही कम सम्भावना होती है। चित्तको शान्त और प्रसन्न रखनेमें भी व्यवस्थासे बहुत बड़ी सहायता मिलती है। सब प्रकारकी व्यवस्थाओंकी अपेक्षा समयकी व्यवस्था बहुत ही आवश्यक और उपयोगी है। मनुष्य समयकी सहायतासे ही, जो चाहे सो कर सकता है। बुद्धिमान् मनुष्य समयसे लाभ उठाता है और मूर्ख उसीसे हानि सहता है। किसीके लिये वह बड़े कामकी चीज है और किसीके लिये बिलकुल निकम्मी। पर यदि

सब लोग उसका यथार्थ मूल्य समझकर उससे ठीक ठीक काम लेने लगें तो संसारके वहुतसे क्लेशोंका शीघ्र ही अंत हो जाय।

इस अवसर पर कुछ ऐसे सिद्धान्तोंका वर्णन कर देना आवश्यक जान पडता है, जो कि साधारण युवकोंके लिए वहुत ही उपयोगी है। (क) एक समयमें सदा एक ही काम करो। सरलतापूर्वक वहुतसे काम करने का सीधा उपाय यही है। जो लोग एक ही समयमें कई काम करना चाहते हैं उनके सभी काम प्रायः विगड़ जाते हैं। (ख) आवश्यक कामोंको तुरन्त कर डालो; उन्हें दूसरे समयके लिये टाल न रक्खो। जो लोग कामोंको टालते जाते हैं उनके वहुतसे काम सदा विना किये ही पडे रह जाते हैं और जिनसे कभी कभी भारी हानि भी हो जाती है। कहा है–" काल्ह करनको आज कर, आज करनको अव।" यदि हम कलका काम आज ही न कर डालें तो कमसे कम आजका काम तो जरूर निपटा डाले। कुछ लोग ऐसे अवसरपर " देर आयद दुरुस्त आयद " (देरसे होनेवाला काम अच्छा होता है) वाला सिद्धान्त उपस्थित करते हैं पर यह सर्व्वथा ग्राह्य नहीं हो सकता। वहुतसे कार्य्य प्रायः ऐसे ही होते है जो थोड़े विलम्वसे नष्ट या कमसे कम भ्रष्ट हो जाते हैं। यदि कोई वहुत वड़ा कार्य्य हो और उसके विषयमें सोचने विचारनेके लिये तुम्हें अधिक समयकी आवश्यकता हो तो उस समय विलम्व करना प्रायः लाभकारी प्रमाणित होता है। कंजूस लोग प्रायः ऐसे छोटे छोटे कामोंको जिनमे कुछ भी खर्चकी आवश्यकता होती है, विना किसी अन्य आवश्यक कारणके वहुत समयतक टालते चले जाते है और इसी वीचमें उसके कारण अपनी भारी हानि भी कर वैठते है। ऐसी करना वड़ी भारी मूर्खता है। (ग) आजके कामको कल पर कभी मत छोड़ो। जो लोग अपना काम रोज करते

चलते हैं उन्हें कभी बहुत अधिक कामकी शिकायत नहीं करनी पड़ती। यदि हम आज अपना काम न करें तो कल हमें दो दिनोंका काम करना पड़ेगा। यदि हम एक ही दिनमें दो दिनोका काम न कर सकें तो और भी कठिनता होगी। सारा क्रम बिगड़ जायगा और एक दिनकी जरा सी सुस्ती या असावधानीसे हमें कई दिनोंतक कठिनता सहनी पड़ेगी। (घ) जो काम स्वयं तुम्हारे करनेका हो उसे दूसरे पर कभी मत छोड़ो। कुछ लोगोंका मत है कि जो काम तुम स्वयं कर सकते हो उसे दूसरे पर मत छोड़ो; और कुछ लोगोंका सिद्धान्त है कि जो काम तुम दूसरोंसे ले सकते हो वह स्वयं मत करो। बहुत बड़ा काम करनेवालोंके लिए अन्तिम सिद्धान्त ही अधिक उपयुक्त हो सकता है; क्योंकि बहुतसे छोटे छोटे काम वे किसी प्रकार स्वयं नहीं कर सकते। बड़े बड़े कार्य्यालयों और दूसरी संस्थाओंके अधिकारी जब तक साधारण काम दूसरों पर न छोड़े तब तक वे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। ऐसे लोगोंका छोटेसे छोटे काम पर पूरी देख भाल रखना ही उस कामको स्वयं करनेके तुल्य हो जाता है। अतः इस सम्बन्धमें यही सिद्धान्त सबसे अधिक उपयुक्त जान पड़ता है कि जो काम आवश्यक और स्वयं तुम्हारे करनेका हो उसे कभी दूसरों पर न छोड़ो। बहुत सम्भव है कि दूसरे मनुष्य उस कामको उतने उत्तमता पूर्वक न कर सकें जितने उत्तमतापूर्वक तुम स्वयं उसे कर सकते हो। ऐसी दशामें उस किये हुए कामसे तुम्हारा सन्तोष न होगा और तुम्हें पुनः अपने हाथसे वह काम करना पड़ेगा। इस प्रकार एक ही काममें तुम्हारा दूना समय लगेगा। पर जिस कामके विषयमें तुम्हें दृढ़ विश्वास हो कि दूसरा मनुष्य उसे बहुत भली भाँति पूरा कर लेगा और साथ ही तुम दूसरे कामोंके लिये अपना समय निकालना चाहते हो तो स्वयं वह

काम करनेका कष्ट कभी स्वीकार न करो। (च) बहुत अधिक शीघ्रता कार्य्यको नष्ट कर देती है। आपको ऐसे बहुतसे लोग मिलेंगे जो नित्यके साधारण व्यवहारों, कार्यों और बातचीत आदिमें जरासी शीघ्रता करके बड़ी भारी हानि कर बैठते हैं। कुछ लोगोंका स्वभाव ही जल्दी करनेका होता है और जल्दीके कारण बार बार हानि सहकर भी वे अपनी उस प्रकृतिसे पीछा नहीं छुड़ाते। यह दोष बहुत ही बुरा है। लोग कहते हैं,—जल्दीका काम शैतानका होता है, अथवा जल्दबाज मुँहके बल गिरता है। दोनों ही बातें किसी न किसी हदतक बहुत ठीक हैं। कुछ लोग केवल अपनी चतुरता दिखलानेके लिये ही जल्दी कर बैठते है और तुरन्त मुँहके बल गिरते हैं। ऐसे लोग यदि इस रोगसे पीछा छुड़ाना चाहें तो उन्हें कुछ सोचनेका अभ्यास डालना चाहिए। यदि कोई साधारण कार्य्य सामने आवे तो उचित है कि उसके सब अंगो पर क्षण भर विचार कर लिया जाय। बहुतसी हानियो और दोषोंका इसीसे परिहार हो जायगा। एक पंजाबी मसलका अभिप्राय है कि किसी प्रकारका मन्तव्य स्थिर करनेके समय अपने सिरसे पगड़ी उतार लेनी चाहिए। क्यों ? इसी लिये कि उस पर शान्तिपूर्वक विचार करनेके लिये क्षण भर समय मिल जाय। पर इस सिद्धान्तका इतना बड़ा अनुयायी बन जाना भी ठीक नहीं कि सुस्ती और अकर्म्मण्यताका दोषारोपण होने लगे। (छ) किसी कार्य्यको आरम्भ करनेके उपरान्त बीचमें बहुत ही थोड़ा विश्राम लो जिसमें वह कार्य्य शीघ्र समाप्त हो जाय। किसी कार्य्यके मध्यमे थोड़ा विश्राम करनेकी अपेक्षा उसकी समाप्ति पर अधिक विश्राम करना बहुत अच्छा है। संभव है कि बीचमें विश्राम करनेके समय उसमे और कोई झंझट या विघ्न आ उपस्थित हो और तब हमें अपने विश्राम करने पर पछताना पड़े। यदि

किसी प्रकारकी झंझट या विघ्नकी बिलकुल संभावना न हो तो भी विश्राम नहीं करना चाहिये अथवा बहुत ही अल्प करना चाहिये। क्योंकि उसके बाद हमें और भी काम करने होंगे। यदि कछुएसे शर्त लगा-कर खरगोश आधे रास्तेमें ही विश्राम न करने लग जाता तो कछुएके पास उससे बाजी जीतनेका और कोई साधन या उपाय नहीं था।

ऊपर जिन सिद्धान्तोका वर्णन किया गया है उनमें यथासमय वि-चारपूर्वक किंचित् परिवर्त्तन भी किया जा सकता है। ये समस्त सिद्धान्त स्थूल है। केवल उनके शब्दोंको हृदयंगम करके लकीर पीटनेकी अवश्यकता नहीं; और न वैसा करना किसी दशामें लाभदायक ही हो सकता है। वास्तवमें आवश्यकता है उनका ठीक ठीक अभिप्राय समझनेकी। साधारणतः नित्यप्रतिके सांसारिक व्यवहारोंके सम्बन्धमें ऐसे सिद्धान्त बहुत ही कम मिलेगे जिनका सब अवस्थाओमें समान रूपसे प्रयोग हो सके। परिस्थिति आदिके विचारसे उनमें कुछ न कुछ परिवर्तन करनेकी आवश्यकता हुआ ही करती है। दूसरी बात यह है कि ऐसे कामोंमें हमे बहुत बड़े बड़े लोगोंको अपना आदर्श और पथदर्शक बना लेना चाहिए और यथासाध्य उनके कार्य्यों और प्रणालियोंसे अपने व्यवहारोंमे सहायता लेनी चाहिये। केवल बड़े बड़े लोगोसे ही क्यों, साधारण आदमियोसे भी कभी कभी बहुत अच्छी शिक्षा ग्रहण की जा सकती है। एक साधारण विचारशील मनुष्य यदि वास्तविक सफलता प्राप्त करनेके लिये सचमुच उत्सुक हो तो उसे उचित है कि वह संसारके प्रत्येक कार्य और मनुष्यसे कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करे। हमारे चारों ओर नित्य अनेक ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं जिन पर यदि हम थोड़ा सा भी ध्यान दें तो कई कामकी और जानने योग्य बातोंका पता लग जाय। प्रत्येक अच्छे या बुरे कार्य्यके गर्भमें ढूँढ़ने पर एक न एक शिक्षाप्रद

बात निकल सकती है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है कि यदि दो चार दिन इसके अनुसार कार्य्य किया जाय तो बहुत कुछ प्रत्यक्ष लाभ दिखलाई पड़ने लगता है। साधारण मनुष्यके आचार और कार्य्योंकी अपेक्षा बड़े बड़े विद्वानों और महान् पुरुषोंके जीवनक्रमसे मिलनेवाली शिक्षाएँ अवश्य ही बहुत अधिक बहुमूल्य और उपादेय होती हैं और साधारण व्यवहारिक उक्तियोंकी अपेक्षा उनका उपयोग भी कहीं अच्छा होता है। सम्भव है कि इस स्थल पर कुछ विषयान्तर होता जान पड़े; पर ऊपर जिन छः सिद्धान्तोंका वर्णन किया गया है उन सबका समयके साथ थोड़ा बहुत सम्बन्ध अवश्य है। पाठकोंको समयका सदुपयोग करनेमें उनसे अच्छी सहायता मिल सकती है और उनके कार्य्योंमें बहुत कुछ सफलता भी हो सकती है। किसी मनुष्यकी मर्य्यादा और पदवृद्धिमें समयका सदुपयोग ही सबसे बड़ा सहायक होता है। कोई ऐसा मनुष्य ढूँढ़ो जो अपने पुरुषार्थसे बहुत ऊँचे पद या मर्य्यादा तक पहुँचा हो, जिसने अपनी विद्या या बुद्धिसे संसारका उपकार किया हो, जिसकी देशहितैषितासे उसके देशको लाभ पहुँचा हो, जिसने परोपकार-बुद्धिसे बहुतोंका कल्याण किया हो; ऐसे मनुष्यके जीवन-क्रम पर थोड़ासा विचार करनेसे ही तुम्हें स्पष्ट जान पड़ेगा कि उसने समयका बहुत ही अच्छा और पूरा पूरा उपयोग किया है। उसने एक क्षणको भी कभी व्यर्थ नहीं जाने दिया है। व्यापार-क्षेत्रमे भी तुम्हे वे ही लोग सबसे अधिक सफलता प्राप्त करते हुए दिखलाई देंगे जिन्होंने कभी अपना समय व्यर्थ नहीं खोया है। साधारण दूकानदारोको ही लीजिये। उनमेंसे जो सफलताके वास्तविक और उपयुक्त पात्र होंगे वही सवेरे सबसे पहले अपनी दूकान खोलते हुए दिखाई देंगे और अधिक रात बीतेतक उन्हीकी दूकान पर चिराग जलता रहेगा। जो लोग सफलताके

वास्तविक पात्र नहीं है और जिनके भाग्यमें सदा दुःख भोगना बदा है उनकी दूकान कभी तो डेढ़ पहर दिन चढ़े खुलेगी और कभी केवल तीसरे पहर। साधारण मेले तमाशेके दिन तो वे कभी दूकान खोलना ही पसंद न करेंगे। और तिस पर मजा यह कि सवेरे दूकान खोलने और अधिक परिश्रम करनेवालोंकी हँसी भी उड़ावेगे ! ऐसे लोग स्वयं तो जहाँकि तहाँ पड़े ही रहना चाहते है; साथमें दूसरोंको भी अपना सहवर्ती बनानेके उत्सुक होते है। उनमें एक तो दोष होता है और दूसरी मूर्खता। ऐसे लोग यदि कभी उन लोगोंकी आर्थिक स्थिति से—जिनके कामोंकी वे हँसी उड़ाते है--अपनी धनहीनताका मुकाबला करें तो उन्हें तुरन्त अपनी भारी भूल माळूम हो जाय। अवसर पड़ने पर वही व्यापारी जिसकी वे हँसी उड़ाते हैं, हजारों रुपए नकद देकर बहुतसा माल किफायतमे खरीद और अच्छे दामोंमें बेच लेता है और हँसी उड़ानेवाले मुँह ही ताकते रह जाते हैं।

समयसंबंधी एक और बातका वर्णन कर देना भी बहुत ही आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्यको अपने समयका पूरा पाबन्द रहना चाहिये। हम जिस कामके लिये जो समय निश्चित करें उसमें उसी निश्चित समय पर लग जायँ। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, समयके पूरे पाबन्द नहीं होगे तो हमे एक दिनका काम समाप्त करनेमे कई दिन लग जायँगे। एक महीनेमें यदि हमें दस काम करने होगे तो उनमेसे हम केवल दो या तीन ही कर पावेगे; शेष सब पड़े रह जायँगे। इस प्रकार हमारी अनेक हानियाँ होंगी। जिन लोगोंके कार्योंका सम्बन्ध और कई लोगोसे भी हो, उन्हें तो इस बातका सबसे अधिक ध्यान रखना चाहिये, नहीं तो उनके साथ साथ दूसरोंके कामका भी हर्ज होगा; गेहूँके साथ घुन भी पिस जायगा। क्या आपको कभी किसी व्यापा-

रीके ठीक समय पर माल न भेजनेके कारण हानि नहीं सहनी पड़ी है? क्या आपको निश्चित किए हुए समय पर किसी मित्र या आगन्तुकके न आनेके कारण वहुत कुछ मानसिक और शारीरिक कष्ट नहीं सहना पड़ा है? यदि पड़ा है तो आप भी समयके पावन्द वनिये। ऐसा करनेसे आप स्वयं भी अनेक झंझटो और हानियोंसे वचेंगे और उन लोगोको भी वचावेंगे जिनका आपके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध या व्यवहार है। जो लोग ठीक और निश्चित समय पर काम करना जानते है वे कभी कभी दो या तीन आदमियोके काम भी कर सकते है। पर जो लोग इस वातका विचार नही करते वे अपना आधा काम करनेमें भी समर्थ नहीं होते। अमेरिकाके एक वहुत वड़े व्यापारीके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि लोग उसके काम पर आने और जाने आदिसे ही समयका अनुमान कर लेते थे; घड़ी देखनेकी उन्हे जरूरत ही न होती थी। और वास्तवमें सफलता भी ऐसे ही लोगोंके वॅटे आती है।

दूसरा अध्याय।
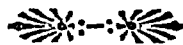
उद्देश्य और लक्ष्य।

उद्देश्य स्थिर न करनेवालोंकी दशा—"मैं क्या होऊंगा"—उद्देश्य ही सफलताका मूल आधार है—प्रवृत्ति या रुचिकी अनुकूलता—उद्देश्य और अन्तःकरण—वास्तविक प्रवृत्ति—योग्य पुरुषके चिह्न—नौकरी और रोजगार—अमेरिकाकी दुर्दशाका उदाहरण—"गोल छेद और चौकोर आदमी"—इच्छा और योग्यता—उद्देश्यकी कसौटी—परिणामका ध्यान छोड़ दो—गीताका निष्काम

धर्म्म—छोटी और तुच्छ बातें—परिस्थिति और परिवार आदिका प्रभाव—उत्तम संगति—उदाहरण और आदर्श—भलाई और बुराईका व्यापक प्रभाव—छोटी घटनाओंसे मानवजीवनमें बड़ा परिवर्त्तन—कुछ उपयोगी बातें।

प्रत्येक युवकको अपनी जीवनयात्रा आरम्भ करनेके पहले अपने उद्देश्य और लक्ष्य स्थिर कर लेने चाहिए। उनका अभाव जीवनके उपयोगोंके लिए बड़ा ही घातक होता है। जो मनुष्य बिना किसी उद्देश्य पर लक्ष्य किये जीवन आरम्भ कर देता है उसकी उपमा उस मनुष्यसे दी जा सकती है जो बिना कोई गन्तव्य स्थान नियत किये ही रेल या जहाज पर सवार हो लेता है। वह मनुष्य न तो यही जानता है कि उसे कहाँ जाना है और न उसे यही ज्ञात है कि रेल या जहाज उसे कहाँ पहुँचावेगा। उसका कहीं पहुँचना रेल या जहाजकी कृपा पर ही अवलम्बित है। रेल चाहे उसे काश्मीरकी सीमातक पहुँचा दे और जहाज चाहे उसे मिर्चके टापूमें उतार दे। रेल या जहाज उसे चाहे जिस स्थान पर पहुँचा दे, पर स्वयं उसे उस स्थानसे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। हाँ, काश्मीर पहुँचकर वह थोड़ी सी सैर जरूर कर लेगा और मिर्च देशमें संम्भव है कि कुछ कष्ट भी उठा ले। पर इन सबका कोई विशेष फल नहीं। वास्तविक फलकी प्राप्ति केवल गन्तव्य स्थान निश्चित कर लेनेसे ही होती है; व्यर्थकी जगहों पर जाकर झूठ मूठ टक्करें मारनेसे नहीं। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको सबसे पहले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि "मैं क्या होऊँगा?" इस प्रकार जब वह अपना उद्देश्य निश्चित कर ले तब उस मार्गमें अग्रसर हो। अपना उद्देश्य या लक्ष्य निश्चित करनेका सबसे अच्छा अवसर बाल्य और युवावस्थाकी सन्धि है। हमारा तात्पर्य उस समयसे है जब कि युवक अपनी शिक्षा आदि समाप्त करके सांसारिक व्यवहारोंमें लगनेकी तैयारी करता हो। उस-

समय वह जिस वात पर अपना लक्ष्य करे उसे विना पूरा किये न छोड़े। ऐसा करनेसे उसका जीवन सार्थक होगा और उसमें दृढ़ता, कर्त्तव्यपरायणता आदि गुण आपसे आप आने लगेंगे। जब एक वार वह अपना उद्देश्य पूरा कर लेगा तब उसे और आगे बढ़नेका साहस होगा और वह दूसरी वार आगेसे अधिक उत्तम विषयको अपना लक्ष्य बनावेगा। इस प्रकार एकके वाद एक, उसके कई मनोरथ पूर्ण होंगे और वह जीवनकी वास्तविक सफलता प्राप्त कर लेगा।

अपना उद्देश्य स्थिर करनेको सफलता शिखरकी पहली सीढ़ी समझना चाहिए। इसी पर मनुष्यका सारा भविष्य निर्भर है और इसी लिये यह उसकी सफलता या विफलताका निर्णायक है। इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि हमारा कथन केवल उन्हीं युवकों-के लिये है जो अपने पुरुषार्थसे जीविका-निर्वाह करना चाहते हों। जिन्होंने जन्मसे सदा मखमली विछौनों पर आराम किया हो वे यदि जीवन और उसके कर्तव्योंका यथार्थ महत्त्व समझते हों तो वे भी इन उपदेशोंसे अच्छा लाभ उठा सकते हैं। पर यदि वे इन पर यथेष्ट ध्यान न देकर कोई भूल भी कर बैठें तो उनकी उतनी हानि नहीं हो सकती; और यदि हो भी तो उसकी शीघ्र ही पूर्ति हो जाती है। पर अधिकांश लोगोंको अपने शरीर और मस्तिष्कसे ही परिश्रम करके रुपया पैदा करना पड़ेगा; और इसी कारण अपना उद्देश्य स्थिर करना उनके लिये सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अपने लिये ऐसा व्यापार, पेशा, नौकरी अथवा और कोई काम स्थिर करना चाहिए जो अपनी शारीरिक शक्तियों तथा परिस्थितिके बिलकुल अनुकूल हो। इसके विरुद्ध यदि वह अपने लिये कोई ऐसा काम सोचे जो उसकी योग्यता या शक्तिसे बाहर हो तो अवश्य ही उसे विफल-मनोरथ होना पड़ेगा। जिस आदमी-

की रुचि व्यापार करनेकी ओर हो उसे यदि रेलमें टिकट-कलक्टर बना दिया जायगा तो भला जीवनमें उसे क्या सफलता होगी ? जो जन्मसे तान उड़ानेका शौकीन हो वह ज्योतिष पढ़कर क्या करेगा ? एक हृष्ट पुष्ट, धीर और साहसी मनुष्य शारीरिक परिश्रमवाले कार्योंमे तो बहुत अच्छी सफलता प्राप्त कर लेगा पर विचारक या पत्रसम्पादकका काम उसके किये भली भाँति न हो सकेगा। पर ये सब विषय इतने गूढ़ हैं कि साधारणतः युवक लोग इन्हें भली भाँति नहीं समझ सकते। केवल वयस्क और अनुभवी लोगोंके ध्यानमे ही वे आ सकते है। अतः यह कर्त्तव्य प्रधानतः विचारवान् माता-पिताका होना चाहिए कि वे अपनी सन्तानके लिये ऐसा काम सोचें जो सब प्रकारसे उसकी रुचि, अवस्था और शक्तिके अनुकूल हो। यदि माता-पिताने अपने पुत्रकी रुचि समझनेमें कुछ भूल की तो परिणाम उलटा ही होगा। नानकशाहके पिता तो उन्हें सौदागर बनाना चाहते थे और बार बार सौदागरीके लिये रुपए देते थे पर बाबा नानक क्या करते थे ? सब रुपए साधु सन्तोंको खिलाकर स्वयं भगवद्भजनमें लग जाते थे।

युवकोंको उचित है कि वे अपने लिये वही काम सोचें जिसका करना उनकी शक्तिके बाहर न हो। जिस कामके लिये दिल गवाही न दे उसे कभी न करना चाहिए। पर साथ ही अनुचित भय या आशंकाके कारण अपनी शुद्ध इच्छा या प्रवृत्तिको कभी रोकना भी न चाहिए। युवावस्थामें मनुष्य स्वभावतः साहसी होता है और अच्छे या बुरे परिणाम पर उसका ध्यान नहीं रहता। इसी लिये कभी कभी वह निःशंक भावसे ऐसे ऐसे कामोंका बोझा अपने ऊपर ले लेता है जिनका पूरा उतारना उसकी शक्तिके बाहर होता है। अपनी शक्तिका ठीक ठीक अनुभव करनेमे सबसे अधिक सहायता उस अनुभव-जन्य

ज्ञानसे मिलती है जो कुछ कष्ट और हानि सहकर प्राप्त किया जाता है।' आरम्भिक अवस्थामे लोगोंको जल्दी ऐसा ज्ञान नहीं होता और प्रायः इसी लिये लोक अधिक धोखा भी खाते हैं।

इस अवसर पर एक और बात बतला देना परम आवश्यक है।' अपनी साधारण पसंदको ही हमें अपनी वास्तविक और शुद्ध रुचि या प्रवृत्ति न समझ लेना चाहिए। अगर किसीको गाना बजाना कुछ अच्छा लगता हो तो वह यह न समझ ले कि मैं संसारमे दूसरा तान-सेन बननेके लिये ही आया हूँ। यदि अपरिपक्व बुद्धिवाला कोई युवक किसी बड़े भारी वैज्ञानिकको देख अथवा उसका हाल सुन कर विना उसके परिश्रम और कठिनाइयोंका हाल जाने ही उसके समान बननेका प्रयत्न करे तो अवश्य ही उसकी गिनती मूर्खोंमे होगी। यद्यपि ऐसी भूलें बड़े-बूढ़ों और वयस्क मनुष्योसे भी हो सकती है—तथापि एक अज्ञानी युवककी भूलोंकी अपेक्षा वह बहुत ही कम हानिकारक होगी। इसी लिये सब कामोंमें बड़ोंसे सम्मति ले लेना और साथ ही उनकी सम्मतिका पूरा पूरा आदर करना बहुत ही लाभदायक होता है। आजकलके कुछ नवयुवक नई रोशनीके फेरमे पड़कर अपने बाप-दादा या दूसरे बड़े-बूढ़ोको निरा मूर्ख समझ-कर उनका निरादर और अपमान करने लगते है। ऐसे लोग प्रायः हानि ही उठाते हैं और अनेक प्रकारके लाभोसे वञ्चित रहते हैं। बड़ोंकी सम्मतिसे चलनेमें पहलेपहल भले ही कुछ कठिनता या अनुपयुक्तता जान पड़े; पर आगे चलकर शीघ्र ही अपना भ्रम प्रकट हो जाता है और तब बड़ोके आज्ञाकारी बननेमें और भी उत्तेजन मिलता है।

जो मनुष्य कठिनाइयों और विफलताओंकी कुछ भी परवा न करके अपने मार्गके कंटकोंको बराबर दूर करता जाता है वही संसारको कुछ

कर दिखलाता है। पर इतनी श्रेष्ठ योग्यता बहुत ही कम लोगोंमें होती है। जिन लोगोंमें ऐसी ईश्वरप्रदत्त योग्यता न हो उन्हें उचित है कि वे अपने विचारोंको उत्तमतर बनावें और राग, ईर्ष्या, द्वेष आदिसे सदा दूर रहें। ऐसा करनेसे उनका कार्य्य बहुत सरल हो जायगा और योग्यतावाले अभावकी कुछ अंशोंमें पूर्ति हो जायगी। जिस मनुष्यके प्रत्येक कार्य्यमें सत्यता और प्रत्येक विचारमें दृढ़ता होती है वही महानुभाव कहलानेके योग्य होता है। ऐसे मनुष्य पर अनुचित प्रलोभनोंका कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह कठिनसे कठिन विपत्तियोंको ईश्वरेच्छा समझकर धैर्य्यपूर्वक सहन करता है और सदा शान्त और निर्भय होकर आपदाओंका सामना करता है। ईश्वर और सत्यता पर उसका वहुत ही अटल विश्वास रहता है। इसलिये सदा सत्य पथका अनुसरण करो और अध्यवसायपूर्वक अपने काममें लगे रहो। संसारके सभी लोग बहुत बड़े विद्वान्, दार्शनिक, वैज्ञानिक, आविष्कर्ता या करोड़पति नहीं बन सकते। पर हाँ, सभी लोग अपने जीवनको प्रतिष्ठित और सुखपूर्ण अवश्य बना सकते है। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि अप्रतिष्ठा और विफलता छोटे अथवा तुच्छ समझे जानेवाले कामोंमें नहीं है बल्कि उन कामोंको अपनी शक्ति भर करनेमें है। जूता सीना निन्दनीय नहीं है, निन्दनीय है मोची होकर खराब जूता सीना।

इस देशके लोगोंमें सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि वे अपने बालकोको विद्यारम्भ करानेके समय ही निश्चय कर लेते है कि लड़का पढ़ लिखकर नौकरी करेगा। पर स्वतंत्रतापूर्वक घड़ीसाजी या बिसातखानेकी छोटी सी दूकान करनेकी अपेक्षा किसी दफ्तरमें १५) महिनेकी नौकरीको अच्छा समझना बड़ी भारी भूल है। १५) के मुहर्रिर-

को सवेरे दस बजेसे सन्ध्याके सात बजेतक दफ्तरमें पीसना पड़ता है और जब उतनी थोड़ी आयमें उसका काम नहीं चलता तब वह सवेरे और सन्ध्याके समय लड़कोंको पढ़ानेका अथवा इसी प्रकारका और कोई काम ढूँढ़ने लगता है। इस प्रकार उसका सारा जीवन बड़े ही कठोर परिश्रममे बीतता है और वह बड़ी ही दरिद्र और दुःखपूर्ण अवस्थामें इस संसारको छोड़कर चल बसता है। बहुतसे लोग ऐसे हैं जो नौकरीमें बहुत अधिक परिश्रम करते हैं। ऐसे मनुष्य यदि किसी स्वतन्त्र काममे नौकरीकी अपेक्षा आधा परिश्रम भी करें तो वे अपेक्षाकृत उत्तमतर जीवन निर्वाह कर सकते हैं। पर वे नौकरीके उस भूतसे लाचार रहते हैं जो उनके माता-पिता बाल्यावस्थामे ही उनके सिर पर चढ़ा देते हैं।

इधर कुछ दिनोंसे अमेरिकाके साधारण निवासियोंको वकील, डाक्टर अथवा पादरी बननेका खब्त बुरी तरहसे सवार है। उनका अनुमान है कि इन्हीं कामोंमे सबसे अधिक धन भी मिलता है और प्रतिष्ठा भी होती है। इसी खब्तके पीछे हजारों आदमी मर गये और हजारो असाध्य रोगोंसे पीड़ित हो गये। ऐसे लोग देहातियो और कृषकोंका उत्तम स्वास्थ्य देखकर दाँतों उँगली दबाते और मन ही मन पछताते हैं। यही नहीं, जो पेशे उन्होंने बहुत अधिक धनप्रद समझकर आरम्भ किये थे, उन्हींसे उनकी रोटीतक ठीक ठीक नहीं चलती; और दूसरे कामोंको जिनमें अच्छी आय हो सकती है, वे लोग अप्रतिष्ठाके विचारसे आरम्भ भी नहीं कर सकते। वहाँके एक विचारवान् लेखकने ऐसे लोगोंकी दुर्दशा पर शोक प्रकट करते हुए लिखा है कि अगर आप भिन्न भिन्न पेशों और व्यापारोंको एक टेबुलमें बने हुए भिन्न भिन्न आकारके—कोई गोल, कोई लम्बे, कोई तिकोने और कोई चौकोर—छेद समझें और

आदमियोंको उन्हीं सब आकारोंके लकड़ीके टुकड़े मानें तो आप देखेंगे कि चौकोर टुकड़े गोल छेदोंमें, गोल टुकड़े लम्बे छेदोंमें और लम्बे टुकड़े तिकोने छेदोमें रक्खे हुए हैं। अर्थात् एक दूसरेकी देखादेखी लोग ऐसे ऐसे कामोंमें लग जाते है जिनके लिये वे कदापि उपयुक्त नहीं होते। और यही उनकी विफलता और विपत्तियोंका मूल कारण है।

इच्छा मात्रसे ही हमारी योग्यताका कभी ठीक ठीक परिचय नहीं मिल सकता। अधिकांश लोग ऐसे ही होंगे जिनकी इच्छाओंकी कभी कोई निर्दिष्ट सीमा ही नहीं होती। हम नित्यप्रति जिन मनोराज्योंके स्वप्न देखते है वे अवश्य ही बहुत ऊँचे और दूर होते है। करोड़पति बननेकी हमारी इच्छा मात्र ही इस बातका पूरा प्रमाण नहीं है कि हम वास्तवमें करोड़पति बननेके योग्य है अथवा किसी समय बन जायँगे। संसारमें ऐसे लोगोकी कमी नही है जो किसी महाकविके दो एक काव्य पढ़कर ही स्वयं महाकवि बननेके स्वप्न देखने लगते हैं। पर वे कभी इस बातका विचार करनेकी आवश्यकता नही समझते कि काव्यमें थोड़ी सी गति या रुचि हो जाने अथवा केवल थोड़ेसे नीरस पदोंकी रचना कर लेनेसे ही मनुष्य सफलताके शिखर पर नहीं पहुँचे सकता और वास्तवमें महाकवि बननेके लिए हजारों बड़े बड़े ग्रन्थोंका ध्यानपूर्वक मनन करनेके अतिरिक्त किसी विशिष्ट दैवी गुणकी भी आवश्यकता होती है। यदि हम थोड़े वहुत जोशके साथ किसी काममें लग जायँ तो इतनेसे ही हमे यह न समझ लेना चाहिये कि हम उसमें सफलता प्राप्त ही कर लेगें जबतक हम अपनी सारी शक्तियोंसे उस काममे न लगें तबतक हमे सफलताकी कोई आशा न करनी चाहिये। इसी लिये केवल इच्छाको ही योग्यता समझ लेना बड़ी

भारी भूल है। यदि हमारी इच्छा बलवती होकर कार्य-रूपमें परिणत हो जाय, हम उसमें सफलता प्राप्त करनेका दृढ निश्चय कर लें, अपनी सारी शक्तियोंसे और अध्यवसायपूर्वक उस काममें लग जायँ और उसे विना पूरा किये न छोड़नेका दृढ संकल्प कर लें तभी हम सफल-मनोरथ होनेकी आशा कर सकते हैं; अन्यथा नहीं। सच्ची सफलता प्राप्त करनेके लिये उत्कट इच्छा, दृढ़ संकल्प, पूर्ण अध्यवसाय और वास्तविक योग्यताकी आवश्यकता होती है।

अपने जीवनके उद्देश्य स्थिर करनेके समय हमे इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि वे एक सत्यनिष्ट मनुष्यके अयोग्य अथवा अनुपयुक्त न हो। यदि हम अपनी आकांक्षाओ और उद्देश्योंको पूरा करनेके लिये अनुचित और उचित सभी उपायोका अवलम्बन करने लग जायँ, तो मानो हम आत्मप्रतिष्ठा, सत्यता आदि गुणोंको तिलांजली दे देते है और ईश्वरप्रदत्त शक्तियोंका बड़ा बुरा उपयोग करते है। अपने आपको बड़ा भारी व्यापारी और कमाऊ समझने-वाले एक भले आदमीने एक वार एक मित्रसे अपने व्यापा-रके सिद्धान्तोंका वर्णन करते हुए कहा था—“ मैं किसी राह चलते भले आदमीको देखकर उसके पाँचों कपड़ों पर हाथ डालता हूँ और उनमेंसे दुपट्टा, टोपी, रुमाल आदि जो कुछ मिल सके, लेनेकी चेष्टा करता हूँ। यदि वह होशियार हो और बचकर भागना चाहे तो मै उसके अंगे-का बन्द लेकर ही सन्तुष्ट हो जाता हूँ। यदि कुछ भी न मिले तो भी मैं कभी दुखी नहीं होता; क्योंकि ऐसे व्यापारमें हानिकी कभी कोई सम्भावना ही नहीं होती।” कैसे श्रेष्ठ और प्रशंसनीय विचार है! ऐसे लोग यदि कभी अपनी धूर्ततासे हजार दो हजार रुपए जमा भी कर लें तो भी वास्तविक सफलता कभी उनके पास नहीं फटकती। उलटे दिन

पर दिन लोग उनकी धूर्त्ततासे अवगत होते जाते हैं और शीघ्र ही उन्हें अपने कुकर्म्मोंके लिये भारी प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप करना पड़ता है। यदि वे बहुत अधिक धूर्त हुए और उनके लिये प्रायश्चित्त या पश्चात्तापकी नौबत न आई तो भी उनकी आत्माको कभी शान्ति नहीं मिलती; दुष्कर्म्म उनके हृदयको सदा कचोटते रहते है। उनके कुकर्म्मोंका संसारके अन्य लोगों पर जो विषाक्त प्रभाव पड़ता है और उनसे देश, समाज और व्यापार आदिको जो धक्का पहुँचता है, वह अलग।

मनुष्यमें उच्चाकांक्षा होना बहुत ही स्वाभाविक है और इसके लिये कोई उसकी निन्दा नहीं कर सकता; बल्कि वास्तवमें निन्दनीय वही है जिसमें उच्चाकांक्षा न हो। पर वह उच्चाकांक्षा सत्य और न्यायके गले पर छुरी फेरनेवाली न होनी चाहिये। सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टिसे उन्नति और वृद्धिकी इच्छा रखना बुरा नहीं है, पर शुद्ध और संस्कृत आत्मा ऐसी उन्नतिको कभी अपना लक्ष्य नहीं बनाती। हमें उचित है कि हम न्यायपूर्वक इस बातका विचार कर लें कि जीवन, परिश्रम, अध्ययन और कार्य्य आदिका वास्तविक परिणाम क्या होना चाहिये। कोरी प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी इच्छा बहुत ही बुरी और निन्दनीय है। जो मनुष्य ज्ञान, परिश्रम और जीवनके उपयोग आदि-का ध्यान नहीं रखता उसे मनुष्य न समझना चाहिये। सच्चा परिश्रम और प्रयत्न ही हमें वास्तवमें मनुष्य बना सकता है; परिणाम या फल-का उतना महत्त्व नहीं है। जो मनुष्य केवल परिणामके लिये ही लाला-यित रहता है वह कभी पूरा पूरा प्रयत्न नहीं कर सकता। उसके विचारोंमें उच्चता और शुद्धि नहीं हो सकती और इसी लिये मार्गमें पड़नेवाली कठिनाइयोंसे वह घबरा जाता है। इसी लिये भगवान्

श्रीकृष्णने गीतामें निष्काम कर्म्मका उपदेश करते हुए कहा है—"केवल कर्म्म करना तुम्हारे अधिकारमें है, उसके फलाफल पर तुम्हारा कोई वश नहीं। किये हुए कर्म्मोंके फलोंकी आशा मनमें कभी न रक्खो। साथ ही यह समझकर चुपचाप भी न बैठ जाओ कि संसारमें अच्छे फलोंका एकदम अभाव है। पूर्ण ईश्वरनिष्ट होकर अपने कर्त्तव्य करते रहो। यदि कार्य्य सिद्ध हो जाय तो भी वाह वा और न सिद्ध हो तो भी वाह वा। यश और अपयशको समान समझना ही ईश्वरनिष्टा है। फलकी इच्छा रखकर कोई काम करना बहुत ही बुरा है और जो लोग ऐसा करते हैं वे क्षुद्र है।" वास्तवमें यश और अपयशकी कुछ भी परवा न करके अपना कर्त्तव्य बराबर पालन करते जाना ही सबसे अधिक बुद्धिमता है।

कभी कभी बहुत ही छोटी और तुच्छ बातोंसे भी मनुष्यका सारा जीवन उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार एक छोटी सी चिनागारीसे सारा शहर। थोड़ीसी जल्दबाजी नासमझी या सुस्तीसे बहुत कुछ अनर्थ होसकता है। छोटेसे छोटे दोष या रोगको कभी अपेक्षाकी-दृष्टिसे न देखना चाहिये और उन्हें यथा साध्य शीघ्र समूल नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आज हम जिस दोषको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं वही कुछ दिनों बाद हमारे लिये बड़ा घातक हो सकता है और उस समय उससे पीछा छुड़ाना भी हमारी सामर्थ्यसे बाहर हो जाता है। आज यदि हम थोड़ा सा ऋण ले लें तो कल हमें और भी भारी रकम लेनेका साहस हो जायगा और चार दिन बाद उसीकी कृपासे हमारी सारी सम्पत्ति नष्ट हो सकती है। इसलिये जहाँतक हो सके सब प्रकारके दुर्गुणों और दोषोंसे बहुत बचना चाहिये।

अपना व्यापार या पेशा निश्चित करनेसे पहले हमें अपनी वास्तविक रुचि और शक्तिका पता लगा लेना चाहिये। सम्भव है कि गृहशिक्षा,

मित्रोंके आचरण, परिस्थिति अथवा अन्य ऊपरी बातोंका हम पर बहुत कुछ प्रभाव पड़े और उसके कारण हम अपने उचित पथसे हटकर दूर जा पड़ें। कभी कभी इन कारणोंसे मनुष्यकी वास्तविक रुचि बहुत कुछ दब जाती है। जिस प्रकार प्रातःकालसे ही दिनका पता लग जाता है उसी प्रकार बाल्यावस्थासे ही मनुष्यके सम्बन्धकी बहुतसी मुख्य मुख्य बातें जानी जाती हैं। इस वास्ते प्रत्येक व्यक्तिके लिये यह परम आवश्यक है कि बाल्यावस्थासे ही वह ऐसी परिस्थिति और साधनोंसे घिरा रहे जो उसकी मनोवृत्तियोंको शुद्ध, उच्च और सबल बनावें और उसमें सरलता, सुजनता, सत्यनिष्ठा और सात्त्विक भावोंका आरोपण करें। मन और वासनाओंको वशमें रखनेका अभ्यास बाल्यावस्थामें ही पूर्ण रूपसे हो सकता है, आगे चलकर नहीं। बाल्यावस्थामे हृदय अपनी कोमलताके कारण सब प्रकारके सद्गुणों अथवा दुर्गुणोंको ग्रहण करनेके लिये सदा प्रस्तुत रहता है। बाल्यावस्थाके संस्कार ही युवावस्थामें प्रबल रहते और हमारे भविष्य जीवनके विधाता होते हैं। वृत्तियाँ उसी समय हर तरहके साँचेमें ढाली जा सकती है। ऐसे महानुभाव बहुत ही कम मिलेंगे जिनका बाल्य-कालका आचरण अपवित्र और दूषित रहा हो। बाल्यावस्थामें प्रकृति अनुकरण-प्रिय होती है और आसपासके लोगोंको जो कुछ करते देखती है उसे तुरन्त ग्रहण कर लेती है।

प्रकृतिपर प्रभाव डालनेके सम्बन्धमें एक और बात ध्यान रखने योग्य है। पुरुष मात्रपर जितना अधिक प्रभाव स्त्री-जातिका पड़ता है उतना और किसीका नहीं पड़ता। इस प्रभावकी प्रधानता उस समय और भी बढ़ जाती है जब कि माता और पुत्रका सम्बन्ध उपस्थित होता है। मनुष्य प्रायः वही बनता है जो उसकी माता उसे बनाना

चाहती है । जो शिक्षाएँ हमें माता द्वारा मिलती है वे चितातक हमारा साथ देती हैं। एक विद्वान्ने वहुत ठीक कहा है—" एक माता सौ शिक्षकोंके वरावर है।" राजमाता जिजावाईने ही शिवाजीको वास्तविक शिवाजी वनाया था। विना माता देवल देवीकी शिक्षाके आल्हा और ऊदलको हम उस रूपमें नहीं देख सकते थे जिसमें कि अव देखते हैं। ध्रुवने अपनी माताके कारण ही इतना उच्च स्थान पाया था। परशुरामसे उनकी माता रेणुकाने ही इक्कीस वार क्षत्रियोका विध्वंस कराया था। नेपोलियन, पिट, जार्ज वाशिंग्टन आदि सभी वड़े वड़े लोगोंने अपनी अपनी माताओंकी वदौलत ही इतनी कीर्ति पाई है। ऋषिकल्प दादाभाई नौरोजी भी सवसे अधिक अपनी माताके ही ऋणी थे।

माताके उपरान्त मनुष्यपर दूसरा प्रभाव उसके साथियोंका पड़ता है। किसी मनुष्यकी वास्तविक योग्यता या स्थितिका वहुत कुछ परिचय उसके साथियोकी योग्यता और स्थितिसे ही मिल जाता है। एक कहावत है—" तुख्म तासीर सोहवत असर "। उत्तम संगतिसे मनुष्यमें सद्गुण आते हैं और बुरी संगतिसे दुर्गुण। प्रसिद्ध फारसी कवि शेख सादीने एक स्थलपर कहा है—" मैने मिट्टीके एक ढेलेसे पूछा कि, तुझमें इतनी सुगन्ध कहाँसे आई? उसने उत्तर दिया, यह सुगन्ध मेरी अपनी नहीं है; मैं केवल कुछ समयतक गुलावकी एक क्यारीमें रही थी, उसीका यह प्रभाव है।" उसी कविने एक और स्थलपर कहा है—" अगर देवता भी दानवोके साथ रहे तो कपटी और दोषी हो जायगा।" अर्थात् मनुष्यमें स्वयं जिन बातोंकी कमी हो, उसकी पूर्ति मित्रोंद्वारा हो जाती है। इसलिये यदि हममें उत्तम गुणोंका अभाव हो और हम उस अभावकी पूर्ति करना चाहें तो हमें उचित है कि ऐसे लोगोंका साथ करें जिनमें वे गुण उपस्थित हों। अपने जीवनको

परम पवित्र और आदर्श बनानेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि हम सदा ऐसे लोगोंका साथ करें जो विद्या, बुद्धि, प्रतिष्ठा और विचार आदिमें हमसे कहीं अच्छे हों।

एक पुराने लेखकका कथन है—" जब तुम किसीसे मित्रता करना चाहो तो पहले उसकी परीक्षा कर लो; क्योंकि बहुतसे लोग बड़े स्वार्थी हुआ करते हैं और आपत्तिके समय कभी काम नहीं आते। + + + + एक सच्चा मित्र बहुत अच्छा सहायक और रक्षक होता है। जिसे सच्चा मित्र मिल जाय उसे समझना चाहिये कि मुझे कुबेरकी निधि मिल गई। " यद्यपि फारसीके प्रसिद्ध कवि सादीने एक स्थानपर स्पष्ट कह दिया है कि इस संसारमें सच्चा मित्र नहीं मिल सकता; और सम्भव है कि किसी विशेप आदर्शको देखते हुए उक्त कथन किसी अंशतक सत्य भी हो; तथापि इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें बहुतसे लोग ऐसे मिलेंगे जिन्होंने अपने मित्रोंको घोर विपत्तिके समय पूरा सहारा दिया है। और यथासाध्य सब प्रकारसे उनकी सहायता करके उन्हें अनेक प्रकारके कष्टोंसे मुक्त किया है। तो भी ऊपर जो चेतावनी दी गई है वह सदा ध्यानमें रखने लायक है; क्योंकि तुम्हारे जीवनकी उपयोगिता बहुतसे अंशोंमें तुम्हारे मित्रोंकी योग्यता और विचारोंपर ही निर्भर करती है। उत्तम गुणोंवाले लोगोंसे मित्रता करो, तुम्हारा जीवन भी उत्तम हो जायगा। ऐसे आदमियोंको अपना आदर्श और पथ-दर्शक बनाओ जिनका अनुकरण करनेमे तुम्हारी प्रतिष्ठा हो। जिस प्रकार उत्तम या निकृष्ट खाद्य पदार्थोंका शरीरपर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार मनपर अच्छी या बुरी सोहबतका भी असर होता है। इसके अतिरिक्त सुयोग्य मनुष्यकी संगतिके कारण लोगोका महत्त्व भी बढ़ जाता है और अनेक अवसरोंपर उनके उत्तम

गुणोंके विकाशकी बहुत अच्छी सन्धि मिलती है। यदि रामचन्द्र न होते तो सुग्रीव या विभीषणका इतना महत्त्व कहाँसे बढ़ता ? विना श्रीकृष्णके सुदामाको कौन पूछता ? विना चाणक्यके चन्द्रगुप्त और विना चन्द्रगुप्तके चाणक्यकी कीर्तिका इतना विस्तार कब सम्भव था ?

बात यह है कि उदाहरण या आदर्शका उत्तम मनोवृत्तियों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। बड़े बड़े देशहितैषियों, विद्वानों और परोपकारियोंके जीवनचरित इसी लिये पढ़े जाते है कि उनसे हमारी मनोवृत्तियोंका संस्कार होता है और उनके उच्च विचारों तथा उदार आशयोंसे हमें अच्छे अच्छे काम करनेकी उत्तेजना मिलती है। उदाहरण ही सबसे अच्छा शिक्षक है। शब्दोंमें दी हुई शिक्षाकी अपेक्षा कृतियों द्वारा मिलनेवाले उपदेशोंका प्रभाव और महत्त्व कहीं अधिक होता है। बाल्यावस्थामें उर्दूकी एक पाठ्य पुस्तकमे मैंने इस आशयके कुछ पद्य पढ़े थे कि एक वार बहुत अधिक गरमीके कारण सारी पृथिवी सूख गई थी और सब जीव वर्षाके लिये व्याकुल हो रहे थे। आसमानमें बादल आकर इकट्ठे हुए और सब आपसमे मिलकर बरसने और पृथिवीका ताप हरनेकी सलाह करने लगे। सलाह ही सलाह होती रही, पर स्वयं बरसकर दूसरेको मार्ग दिखलानेका साहस किसीको न हुआ। यह देखकर एक साधारण बूँदको कुछ आवेश आया और वह पृथिवीकी ओर अपने साथियोंसे यह कहती हुई बढ़ी कि यदि तुम लोगोमे भी कुछ साहस हो तो आओ और पृथिवीको शीतल करो। उस एक बूँद-को बरसते देखकर उसके पीछे सारे बादल बरस पड़े और पृथिवीमें लहर बहर हो गई। इस वर्णनसे जो चमत्कारपूर्ण ध्वनि निकलती है उसकी सत्यतामें तिल भर भी सन्देह नहीं किया जा सकता। हम नित्य-प्रति देखते है कि बहुतसे लोग केवल साथियोंकी देखादेखी ही अपनी

प्रबल इच्छा न होनेपर भी, कुमार्गमें फँस जाते और अपना सारा जीवन नष्ट कर देते हैं। हम यह भी देखते हैं कि एक बहुत ही साधारण योग्यता और स्थितिका मनुष्य अच्छे अच्छे लोगोंके साथ रहकर अपनी मर्य्यादा बढ़ा लेता और अपने आदर्श साथियोंका समकक्ष हो जाता है। मौखिक उपदेश हमें चुपचाप दूरसे मार्ग दिखला देता है और उदाहरण अपने साथ साथ हमें मार्गमें ले चलता है। उत्तम उपदेशोंका महत्त्व अवश्य अधिक है; पर जबतक उनके साथ उत्तम उदाहरण न हों उनका कोई विशेष फल नहीं हो सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण और बुद्ध, वीरशिरोमणि महाराणा प्रताप और शिवाजी, भक्तकुलतिलक तुलसी और सूरकी जीवनघटनाओंका विचारपूर्वक अध्ययन करनेसे हमें जान पड़ेगा कि वास्तवमें हमारा जीवन अपेक्षाकृत कितना हीन और नीच है और उसे उन्नत और सार्थक करनेकी हमें कहाँतक आवश्यकता है। क्या इससे यह शिक्षा नहीं मिलती कि यदि हम अपने जीवनके उद्देश्योंको उच्च बनाना चाहे तो हमें ऐसे श्रेष्ठ लोगोका साथ करना चाहिये जो सदा हमारी उन्नतिमें सहायक होते रहे और जिनके साथसे हमारी प्रतिष्ठा और मर्य्यादा बराबर बढ़ती रहे ? एक आदर्श महान् पुरुष हमारे लिये संसार-सागरमें दीपालयके समान है जो कि हमें विपत्तिजनक स्थानकी, सूचना ही नहीं देता, बल्कि हमें सुरक्षित मार्ग दिखलाता है; जो कि हमें केवल चट्टानें ही नहीं दिखलाता, बल्कि बन्दरतक पहुँचा देता है। उत्तम विचारोंसे हृदय प्रकाशित होता है और उत्तम कार्य्योंसे उसे उन्नत होनेमें उत्तेजना और सहायता मिलती है। इसलिये सदा ऐसे लोगोंका साथ करना चाहिये जो हमें ऊपरकी ओर उठा सकें; और जिनमें हमें केवल नीचे ढकेलनेकी शक्ति हो उनसे सदा दूर रहना चाहिये। एक

विद्वान्का कथन है—"संसारमें भलाईसे ही वहुतसा उपकार हो जाता है। भलाई और बुराई केवल अपनेतक ही नहीं रहती, बल्कि जिनका उनके साथ संसर्ग होता है, उन्हें भी वह भला या बुरा बना देती है। इसकी उपमा तालावमें फेंके हुए पत्थरसे दी जा सकती है जो एकके वाद एक, इतनी लहरें उत्पन्न करता और उन्हें वढ़ाता जाता है कि अन्तमें वे किनारोंतक पहुँच जाती हैं।" बुरे मनुष्यका साथ आपको कभी दूसरोंका उपकार करनेके योग्य नहीं रख सकता। आचरणका सूत्र तो पलीतेके समान है; जहाँतक उसका संसर्ग रहेगा वहाँतक उसका प्रभाव बराबर चला जायगा।

अपने जीवनका उद्देश्य स्थिर करनेमें हमें अनेक प्रकारके कारणोंसे सहायता मिलती है। कभी कभी तो एक साधारण घटना ही हमारे लिये विस्तृत भाग्यका द्वार खोल देती है। ऐसी घटना हमारी प्राकृतिक प्रवृत्तिको किसी ऐसे काममें लगा देती है जो हमारे लिये वहुत उपयुक्त होता है। सप्तर्षियोंके उपदेशसे वाल्मीकि कुछ ही क्षणोंमें डाकूसे साधु हो गये थे। इब्राहीम अहमद वादशाह अपनी लौंडीके इसी कहने पर—"मैं थोड़ी देर इस मसनद पर सोई तो मेरी यह दशा हुई; जो इस पर नित्य सोता है, उसकी क्या दशा होगी!" अपना सारा राज्य छोड़कर फकीर हो गया था। गोस्वामी तुलसीदासको उनकी स्त्रीके एक ही मर्म्मभेदी वाक्यने इतना वड़ा महात्मा और कवि वना दिया था। भाग्य-चक्रको पलटनेके लिए थोड़ासा सहारा ही यथेष्ट होता है। पर हममेंसे अधिकांश न तो ऐसे सहारेकी प्रतीक्षा ही कर सकते हैं और न उसकी प्रतीक्षाकी कोई विशेष आवश्यकता ही है। जिस काममें हम लगे हैं वह यदि निन्द्य न हो और हमारी प्रवृत्ति उसकी ओर हो तो हमें अपनी सारी शक्तियोंसे उसीमें लगे रहना चाहिये। ऐसा करनेसे हमें कभी पश्चात्ताप

करनेका अवसर न मिलेगा। जो कार्य्य हमारे सामने उपस्थित है उसके पूरा करनेमें सारी शक्तियाँ लगा देना ही हमारा परम कर्त्तव्य है। ध्यान केवल इसी बातका रखना चाहिये कि हमारा वह कार्य्य, वह उद्देश्य पवित्र और प्रशंसनीय हो और हम उसमें बराबर ईमानदारी-से लगे रहें।

अपने लिये कोई ऐसा काम ढूँढ़ निकालना जिसमें हमें पूरी सफलता हो सके, बहुत कठिन नहीं है। हमारी प्राकृतिक प्रवृत्ति कई प्रकारसे अपना परिचय दे देती है। बहुतसे लोगोंकी प्राकृतिक प्रवृत्ति-का परिचय तो उनकी बाल्यावस्थामे ही मिल जाता है। जो लोग अधिक प्रतिभा-शाली होते है उनकी प्रवृत्ति किसी प्रकार दबाये दब ही नहीं सकती। उसीसे सम्बन्ध रखनेवाले विचार उनके हृदयमें आते हैं और उसीके वे स्वप्न भी देखते है। सब अवस्थाओंमें वे उसीमें तन्मय रहते हैं। जो मनुष्य किसी संभावित उद्देश्यकी पूर्तिके लिये दिन रात चिन्ता और प्रयत्न करता रहता है उसके लिये निराश होनेका कोई विशेष कारण नहीं है। हाँ, पहले उद्देश्य निश्चित करनेमें किसी प्रकारका उतावलपन न करना चाहिये। जब एक बार उद्देश्य स्थिर हो जाय तब शीघ्र ही यह न समझने लग जाना चाहिये कि यह अयुक्त अथवा कष्टसाध्य है। सदा नम्र, साहसी और धीर रहना चाहिये। कुछ लोग जल्दी जल्दी अपने काम बदला करते हैं। फल यह होता है कि वे एकमें भी कृतकार्य्य नहीं होते। इसके अतिरिक्त अपने पेशे या कामसे कभी घृणा न करनी चाहिये। कुछ लोग शारीरिक श्रम अथवा किसी प्रकारकी छोटी मोटी दूकान करना अपनी शानके खिलाफ समझते हैं। यह बड़ी उपहासास्पद भूल है। तुम अपने कामको अपना कर्तव्य समझकर करो; और कर्त्तव्य-पालनसे बढ़कर प्रशंसनीय और कोई

चीज हो ही नहीं सकती। याद रक्खो, परिश्रम कभी मनुष्यका महत्त्व नहीं घटा सकता; केवल मूर्ख ही परिश्रमका महत्त्व घटा देते हैं। कीर्ति प्राप्त करनेका उपाय कर्तव्य-पालन ही है, निकम्मे बैठे रहना नहीं।

तीसरा अध्याय।
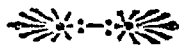
कुछ आवश्यक गुण।
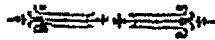
एक ही लक्ष्यपर सारी शक्तियां लगाओ—'लकीरके फकीर'—शक्तिका विकाश—स्वास्थ्यका सदा ध्यान रक्खो—बहुतसे काम एक साथ छेड़नेकी हानियां—धैर्य्यकी आवश्यकता—अपने विचारपर अटल और दृढ रहनेका फल—निरन्तर अभ्यास—आत्म-संयम—कुछ उदाहरण—विपत्तियोंका सामना—परिस्थिति और साधन—योग्य मनुष्य हर एक चीजसे अपना काम निकालता है—आत्म-निर्भरता—योग्यता और आवश्यकता—अपना कर्त्तव्य जानो—कुछ आवश्यक बातें—स्वार्थी होना बड़ा भारी पाप है—सदा परोपकारी बनो—कार्य्यपटुता—उसका महत्त्व और आवश्यकता—भोंडेपनके कुछ उदाहरण—प्रतिभा और पटुता—आपत्तिके समय कर्त्तव्य निश्चित करना—कुछ उदाहरण—उपस्थित-बुद्धि—उत्तमअभ्यास—सर्वप्रियता—धनके इच्छुक चैन नहीं कर सकते।

कोई उत्तम उद्देश्य स्थिरकर लेनेके बाद सफलतापूर्वक उसकी पूर्ति करनेके लिये यह बात बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य दृढ़ता, एकाग्रता और अध्यवसायपूर्वक उसमें लगा रहे। बहुतसे कार्य्योंमें हाथ लगाकर सबमे विफल-मनोरथ होनेकी अपेक्षा किसी एक कार्य्यको योग्यतापूर्वक समाप्त करके उसमें यश और सफलता प्राप्त करना कहीं अच्छा है। जो मनुष्य विना लक्ष्य-भ्रष्ट हुए निरन्तर परिश्रम करता रहता है उसके यशस्वी होनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता। यदि

किसी कारणवश हम उसमें पूर्ण विजय न प्राप्त हो, तोभी हम बुरी तरह परास्त होनेके दोषसे अवश्य बच जायँगे। युद्धमें बुद्धिमान् सेनापति एक ऐसा स्थान ढूँढ़ निकालता है जहाँ शत्रु निर्बल या विवश हो, और फिर उसी स्थानपर अपनी सारी शक्तियाँ एकत्र करके वह आक्रमण करता और बहुधा विजय प्राप्त करता है। यही दशा अपने जीवन और सांसारिक व्यवहारोंकी समझनी चाहिये। एक बार जब हम उपयुक्त कार्य्य, अवसर या स्थान ढूँढ़ लेंगे और उसीपर अपनी सारी बुद्धि और शक्ति लड़ा देंगे तो हमारे कृतकार्य्य होनेमें बहुत ही थोड़ा—बल्कि नहींके बराबर—सन्देह रह जायगा। प्रत्येक महान् पुरुषने उसी मानमें महत्ता प्राप्त की है, प्रत्येक सफल मनुष्यने उसी मानमें सफलता प्राप्त की है जिस मानमें उसने अपनी सारी शक्तियोको किसी विशिष्ट मार्गमें लगाया है। इस बातको प्रायः सभी बड़े बड़े लोगोने स्वीकृत किया है कि किसी कार्य्यको हाथमें लेकर उसे पूरा करनेमें कोई बात उठा न रखना ही सफल होनेका मूलमन्त्र है। एक विद्वान्का कथन है—'मेरा यह विश्वास नित्यप्रति दृढ़ होता जाता है कि महान् और तुच्छ, बलवान् और निर्बल मनुष्योंमे केवल एक ही भेद है और वह भेद 'दृढ़ निश्चय' है। यह दृढ़ निश्चय ऐसा होना चाहिये कि एक बार उद्देश्य स्थिर करके या तो बिना उसे पूरा किये और या बिना मरे कभी न छोड़ना चाहिये।" संसारमें जितने कार्य्य हो सकते है उन सबको पूरा करनेके लिये यही गुण यथेष्ट और यही गुण आवश्यक है। साधारण योग्यताका मनुष्य भी यदि इसका आश्रय ले तो कभी किसी प्रकारकी परिस्थिति, प्रतिकूलता या त्रुटि उसके मार्गमें रुकावट नहीं डाल सकती।

एक उद्देश्य स्थिर करके उसे अपनी सारी शक्तियोंका क्रीड़ास्थल बना दो, तुम्हारा कार्य्य सिद्ध हो जायगा। चित्तको एक ओर और

व्यवस्थित न रखना ही सबसे भारी दुर्गुण है। प्रायः लोग एक साथ ही बहुतसे काम करनेका प्रयत्न करते हैं और इसी लिये वे कोई काम पूरा और अच्छी तरह नहीं कर सकते। यह दोप आजकल इतना अधिक बढ़ गया है कि सभी स्थानोपर उसका कुछ न कुछ अधिकार अवश्य दिखाई देता है। एक शिक्षाविभागको ही लीजिये जिसका उत्तर-दायित्व सबसे बढ़ चढकर है। प्रत्येक साधारण बालकको विद्यालयमें कमसे कम दो तीन भाषाऐं, गणित (रेखा, अंक और बीज), इति-हास, विज्ञान, चित्रकारी, भूगोल और अन्य कितने ही विपय सीखने पड़ते है। बालकोंका स्वास्थ्य ठीक न रहनेका भी यही कारण है और उनके किसी विपयमें पारंगत या दक्ष न होनेका भी यही। यह दोप एकदेशीय नहीं, बल्कि जगद्व्यापी हो रहा है और बड़े बड़े विद्वानों-का ध्यान भी इसकी ओर गया है। प्रत्येक विपय या पक्षका विस्तार तो बहुत अधिक कर दिया जाता है पर उसकी गूढता या गम्भीरताका कोई ध्यान नहीं रक्खा जाता। सब लोग यह बात भूल से गये हैं कि "एकहि साधे सब साधे, सब सधे सब जाय।"

'लकीरके फकीर' होनेवाले लोगोकी हँसी उड़ाई जाती है; और वास्तवमें केवल लकीर पीटना है भी अयुक्त और निन्दनीय। पर यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि उद्देश्यपूर्तिके लिये चित्तकी एकाग्रता और चीज है और लकीर पीटना और चीज। साथ ही बहुश्रुत और बहुज्ञ होना भी बुरा नहीं है; बुरा है किसी एक विपयको अपना लक्ष्य न बनाकर सब विपयोंके पीछे दौड़ना। केवल एक विषयको अपने विचारोका पूरा आधार बनाकर भी हम अन्य विपयोका यथेष्ट परिचय और ज्ञान प्राप्त कर सकते है। एक यात्री सीधी और साफ सड़कपर चलता हुआ उसके दोनो ओरकी हरियालीका आनन्द ले सकता है

और पक्षियोंका सुन्दर गान सुनकर अपना चित्त प्रफुल्लित कर सकता है। हरियालीका आनन्द लेनेके लिये उसे सड़क छोड़कर खेतकी मेड़ों और नालियोंमें जाने अथवा पक्षियोंका चहकना सुननेके लिये पेड़ोंकी डालियोंपर चढ़नेकी आवश्यकता नहीं होती। खेतोंमें केवल बोने, सींचने और काटनेवालोंको जाना चाहिये और पेड़ोंपर चढ़नेका अभ्यास भयानक जन्तुओंसे भरे हुए जंगलोंमें रहनेवालोंको करना चाहिये; छोटे बड़े सभी राहचलतोंको उसकी वैसी आवश्यकता नहीं। जब हम किसी कार्य्यमें हाथ लगा चुकते हैं तब और भी अनेक कार्य्य अपनी सुन्दरता या उपयोगिताके कारण हमें अपनी ओर खींचने लगते हैं। उनके प्रलोभनोंमें हमें उसी सीमातक आना चाहिये, जहाँतक कि हमारे मूल कार्य्यमें क्षति न पहुँचे। नहीं तो एकके बाद एक सभी कार्य्य हमें अपनी ओर खींचने लगेंगे और तब "दोनों दीनसे गये पाँड़े, हलुआ हुए न माँड़े" वाली कहावत हमपर चरितार्थ होगी।

यह एक स्वाभाविक नियम है कि, जब मनुष्य अपनी किसी विशेष शक्तिसे बहुत अधिक काम लेने लग जाता है तब उसकी शेष शक्तियाँ धीरे-धीरे मन्द पड़ जाती हैं। इस बातने एक अच्छे लेखकका ध्यान अपनी ओर यहाँतक आकर्षित किया कि उसे अन्तमें लिखना पड़ा—"प्रत्येक कार्य्यमे कुछ न कुछ स्वतन्त्र विशेषता और विलक्षणता होती है, और उस काममें जो मनुष्य लगता है उसकी अनेक शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियाँ बेतरह ठंढी पड़ जाती है। बहुत अधिक काम करते करते जुलाहा एक जानदार करघा बन जाता है, विद्या-व्यसनी एक जीवित विश्वकोश हो जाता है और वकील साहब का-नूनी किताबोंकी चलती फिरती अलमारी बन जाते हैं। अब वह

समय दूर नहीं है जब कि एक पूरा आदमी तैयार करनेके लिये दिमाग एक आदमीका लेना होगा, इन्द्रियाँ दूसरे आदमीकी, हृदय तीसरे आदमीका और शरीर चौथे आदमीका।" चित्तकी एकाग्रताको इस सीमातक पहुँचनेसे बचानेकी भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि स्वयं चित्तकी एकाग्रताकी। किसी एक उद्देश्यकी पूर्तिके लिये अपनी सारी शक्तियोंका बुरी तरह बलिदान कर देना कभी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। 'सब शक्तियोंको कुछ न कुछ जागृत रख कर उद्देश्य-सिद्धिका प्रयत्न करना ही सबको अभीष्ट होना चाहिये।

इसी प्रसंगमें यह भी कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि किसी कार्य्यमे मनुष्यको इतना अधिक न लग जाना चाहिये कि उसका स्वास्थ्य जवाब दे दे। जो लोग अपने कर्त्तव्यका इतना अधिक ध्यान रखते हैं वे बड़ी भारी भूल करते हैं। जब हम किसी कार्य्यको अपना कर्तव्य समझ लें तब उसके पालन और निर्वाहके लिये हमारा अस्तित्व बहुत आवश्यक है और इस आवश्यकताको पूरा करनेके लिये हमें अपने शरीर और आत्माका भी पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये। जब हम कोई लम्बा चौड़ा काम आरम्भ करें तब हमे यह भी उचित है कि बीच बीचमें कोई ऐसा काम भी छेड़ दें जिससे हमारी तबीयत बहल जाय। इससे हमारी शक्ति और उत्साहमे एक विलक्षण नवीनता आ जायगी और हमारे मूल उद्देश्यकी पूर्तिमें और भी सहायता मिलेगी। इन सिद्धान्तोका ध्यान न रखनेके कारण बहुतसे लोग अपने प्राणतक खो चुके है। बीच बीचमें चित्तको प्रफुल्लित करके अपने कार्य्यमें लगे रहनेवाले लोग भी प्रायः उतना और वैसा ही अच्छे काम कर लेते हैं जितना उसे चक्कीकी तरह दिन रात पीसनेवाले लोग करते है। अन्तमें चलकर "सखी-और सूमका लेखा बराबर" हो ही जाता है।

जीवनकालमें होनेवाली अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंकी शिकायत करते हुए प्रायः लोग अनेक त्रुटियोंका भी जिक्र करते हैं। पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो जान पड़ेगा कि अनेक प्रकारके अभावों और परिस्थिति आदिके कारण लोगोंको उतना हताश नहीं होना पड़ता जितना कि बहुतसे कामोंको एक साथ छेड़ देने और उन्हें अव्यवस्थित रीतिसे करनेके कारण होना पड़ता है। हमारे इस कथनसे बहुतसे लोग सहमत होंगे कि लोग अपनी योग्य मानसिक शक्तियोंका दुरुपयोग करके ही उन्हें नष्ट कर देते है और अपने आपको किसी योग्य नहीं रखते। जिस प्रकार वह सेनापति, जो अपने सैनिकोंको बहुत दूर तक इधर उधर छितरा देता है, कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकता, उसी प्रकार वह मनुष्य भी जो कि अपना ध्यान बहुतसे विषयोंपर बेढंगी तरहसे बँटा देता है, कभी सफलता/नहीं प्राप्त कर सकता। आदमीके मनकी तुलना आतशी शीशेसे दी जा सकती है। जिस प्रकार आतशी शीशेसे गरमी उत्पन्न करनेके लिये उसपर पड़नेवाली सब किरणोंको एक ही केन्द्रपर इकट्ठा करना पड़ता है उसीप्रकार मनुष्यको किसी कार्य्यकी पूर्तिके लिये अपनी वृत्तियो और शक्तियोको एकाग्र करके उस कामपर लगानेकी आवश्यकता होती है। आकाशमे इधर उधर छितराये हुए बादलके टुकड़ोंसे कोई काम नहीं निकलता। छाया अथवा वर्षा उसी समय होती है जब कि सब बादल एकत्र हो जायँ।

ऊपर कही हुई सब बातोंका निचोड़ यही है कि जीवनमें एक सात्त्विक उद्देश्य निश्चित करके उसकी सिद्धिके लिये अध्यवसायपूर्वक और सारी शक्तियोसे उसमे लग जाना चाहिये और किसी प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे घबराना न चाहिये। साथ ही काममे इतना तन्मय हो जाना भी ठीक नहीं कि उससे स्वास्थ्य अथवा अन्य कार्य्यों या बातोको हानि पहुँचे।

साधारणतः प्रत्येक कार्य्यके होनेमे कुछ समय लगता है। एक ही दिनमें न तो कोई बहुत बड़ा विद्वान् बन सकता है और न धन्ना सेठ। कहींसे अचानक बहुतसा रुपया पाकर जो लोग तुरन्त धनवान् बन जाते है उनकी बात छोड़ दीजिये। संसारमें बहुत अधिक संख्या ऐसे ही लोगोंकी है जिन्हें प्रत्येक कार्य्यमें बहुत अधिक समय लगता है और लगना भी चाहिये। नेपोलियनने एक अवसरपर कहा था " एक ही आक्रमणमें एक सेनापति तो बहुत बड़ी विजय प्राप्त कर सकता है, पर एक ही हल्लेमें कोई व्यापारी उतनी सम्पत्ति नहीं पा सकता। " इसके अतिरिक्त विद्या या द्रव्य आदि उपार्जित करनेमें अधिक समय लगना भी आवश्यक और युक्ति-युक्त है। विद्या तो किसीको एक कटोरेमे घोलकर पिलाई ही नहीं जा सकती। रहा धन, सो वह भी यदि किसीके पास इकट्ठा आ जाय तो न तो वह उस धनका उचित आदर और उपयोग ही कर सकेगा और न उसकी यथेष्ट रक्षा ही। क्योंकि यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि जो चीज जितने परिश्रमसे मिलती है उसकी उतनी ही कदर भी होती है। बहुत ही सरलता-पूर्वक या बिना प्रयास मिली हुई चीज प्रायः नष्ट ही हो जाती है; उसका बना रहना बहुत ही कठिन, प्रायः असम्भव है।

अनादि कालसे बड़े बड़े विचारवान् यही कहते आये है कि परिश्रम और धैर्यका कुछ न कुछ फल अवश्य होता है; यह दूसरी बात है कि वह फल आज हो या दस दिन बाद। परिश्रम करते समय मनुष्यको न तो कभी घबराना चाहिये और न निराश होना चाहिये। यदि आज कलके अधिकांश युवकोंकी भाँति भगीरथ थोड़ी सी तपस्या करके ही हताश हो जाते तो वे गंगाको इस लोकमें कदापि न ला सकते। बिना धैर्य्य-पूर्वक परिश्रमके इतने बड़े महाराष्ट्र साम्राज्यका

स्थापित होना असम्भव था। यदि जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर धनहीनताके कारण मार्गमें पड़नेवाली अड़चनोंको देखकर जहाँके तहाँ रह जाते तो आज कोई उनका नाम भी न जानता।

बहुत अधिक सहनशील और धीर होकर अपनी विचार शक्ति भी बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है। कुछ लोगोंका सिद्धान्त है कि परिश्रम करनेसे विचार-शक्ति जाती रहती है; पर यह बात ठीक नहीं है विचार-शक्ति ही मनुष्यको परिश्रमपूर्वक कार्य्य करनेके लिये उत्तेजि करती है। विचार-शक्तिकी सहायतासे ही मनुष्य धैर्य्यपूर्वक परिश्र करनेका वास्तविक महत्त्व और मूल्य समझता है। जो लोग अपन शारीरिक और मानसिक शक्तियोको बराबर नहीं चला सकते ह ही प्रायः भारी धोखा खाते है। विचार-शक्ति ही हमें यह बतलाती है कि हम अपने उद्देश्यपरसे अपना लक्ष्य न हटावे और जब हम अपन उद्देश्य पूरा करनेके लिये दृढ़ बने रहेगे तब हमें उसकी पूर्तिका कोई न कोई मार्ग भी मिल ही जायगा। जो मनुष्य इच्छा करता है वह या तो मार्ग ढूँढ़ निकालता है और या नया मार्ग बना लेता है। केवल अकर्मण्य ही अनेक प्रकारके बहाने और शिकायतें करते है। जिस मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक स्थिति साधारणतः ठीक है वह यदि इच्छा करे तो अवश्य कोई न कोई मार्ग निकाल लेगा। ऐसे मनुष्य वे सब काम कर सकते है जो कि आजतक संसारमें किसी मनुष्यने किये है अथवा जिनका कार्य्य-रूपमें होना सम्भव है। जो लोग हृदयसे कोई काम करना चाहते हैं वे अपना रास्ता आप बनाते है, झाड़ झंखाड़से उसे साफ करते है और सारी रुकावटोंको जड़से खोदकर फेंक देते है। बड़े बड़े पहाड़ोंमे गुफाएँ बनाकर रेलवे ले जाना इसी अध्य-

वसाय और दृढ़ निश्चयका फल है। स्वेज और पनामाकी नहरें इसीका प्रसाद हैं और रामेश्वरके निकट समुद्र पर बना हुआ रेलका नया पुल इसीकी बदौलत है। यदि मनुष्यको अपने आप और अपने उद्देश्यकी साधुता और सत्यतापर पूरा पूरा विश्वास हो तो सफलता भी उसके लिये बहुतसे अंशोंमें अवश्यम्भावी है। ऐसा मनुष्य चाहे संसारको सन्तुष्ट न भी कर सके पर अपनी आत्माको अवश्य सन्तुष्ट कर लेता है। यदि हम मनुष्य-जातिके उत्कर्षका इतिहास देखें तो समस्त बड़े बड़े कार्य्योंके मूलमें हमे अध्यवसाय और दृढ़ निश्चयके अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई न देगा। बौद्ध, ईसाई और मुहम्मदी आदि बड़े बड़े मत इन्हीं दोनोंके द्वारा प्रतिष्ठित हुए हैं। एक विद्वान् कहता है—"दुनिया मिट्टी नहीं बल्कि लोहा है और मनुष्यके हाथमें उसे अपने योग्य और अनुकूल बनानेके लिये हथौड़ा दिया गया है; आवश्यकता है उसे दृढ़तापूर्वक निरन्तर चलानेकी।"

एक और विद्वान् कहता है—"अपने कार्य्योंमें अनुरागपूर्वक प्रयास करनेसे ही मनुष्य बड़ा भारी ज्ञाता बन सकता है। निरन्तर अभ्याससे ही मनुष्य किसी कार्य्यमे दक्ष हो सकता है। इन सबका कारण क्या है? स्पष्टतः इसका यही कारण है कि हमारी प्रकृति ही ऐसी बनाई गई है कि हम बिना ऐसा किये किसी प्रकारका ज्ञान, विद्या, कला, कौशल या और कोई ऐसी बात नहीं सीख सकते जो हमें कोई कार्य्य करनेके योग्य बना सके। किसी कामको करनेका ढंग जान लेना ही यथेष्ट नहीं है। उसे पूरा करनेकी वास्तविक शक्तिका अर्थ यह है कि वह विद्या या कला हमारी रग रगमें पैठ जाय और मार्गमें पड़नेवाली अड़चनोंकी रत्ती भर भी परवा न करके उसके साधारण अंगोंको हम उतनी ही जल्दी और अनजानमें

पूरा कर डाले जितनी जल्दी और अनजानमें हम रास्तेमें फिसलनेके समय गिरनेके बचनेके लिये किसी सहारेपर हाथ डालते हैं।"

कार्य्य-साधनमें दूसरी बड़ी आवश्यकता आत्मसंयम या आत्म-निग्रहकी होती है। अपने मिजाजको काबूमें रखना, बहुत जल्दी प्रसन्न या अप्रसन्न न हो जाना, प्रत्येक विषयपर शान्त होकर न्यायसंगत विचार करना और वासनाओंको अधिकारमें रखना, आदि बातें इसीके अन्तर्गत हैं। राबर्ट एन्स्वर्थ-नामक कोशकारकी स्त्रीने एक बार बड़े क्रोधमें आकर जब अपने पतिकी एक बड़ी हस्त-लिखित प्रति आगमें झोंक दी तब एन्स्वर्थ शान्तिपूर्वक कलम दवात लेकर उसे फिरसे लिखने बैठ गया। कारलाइलके साथ भी एक बार ऐसा ही हुआ था। उसने अपनी एक पुस्तककी हस्त-लिखित प्रति अपने एक मित्रको पढ़नेके लिये दी थी; उस मित्रके नौकरने उसे रद्दी कागजोंका बंडल समझकर उससे आग जला डाली! यद्यपि मूल ग्रन्थ बड़े शौक और परिश्रमसे लिखे जाते है और किसी ग्रन्थको केवल स्मरण-शक्तिकी सहायतासे दोबारा लिखना बहुत ही नागवार गुजरता है पर तो भी कारलाइलने अपने मित्रसे कुछ भी न कहा और पुनः वह ग्रन्थ लिख डाला। एक मनुष्य-ने भीड़में अपना पैर कुचला जानेके कारण उस कुचलनेवालेको जोरसे एक थप्पड़ मारा। थप्पड़ खानेवालेने बहुत ही नम्रतापूर्वक कहा—"महाशय, आपको यह जानकर दुःख होगा कि मैं अन्धा हूँ।"

आत्म-संयममें कभी जल्दबाजी नहीं होती। उसके सब काम ठीक समयपर होते हैं। इस सम्बन्धमें धैर्य्यको भी उसका एक अंग समझना चाहिये। बहुतसे लोग उतावलेपनके कारण फलोंको पकनेसे पहले ही तोड़ लेते है; पर आत्मसंयम उन्हें ऐसा करनेसे रोक सकता और रोकता है। वह ठीक समयपर मनुष्यसे काम कराता है और यदि एक बार

वह काम ठीक न उतरे तो पुनः उससे शांतिपूर्वक वही काम कराता है। संसारमें कठिनतासे कोई ऐसा महान् पुरुप मिलेगा जिसे पंहले प्रयत्नमें विफलता न हुई हो। विफल-मनोरथ होनेमें किसी प्रकारका लज्जा नहीं है, वास्तविक लज्जा उसके लिये फिरसे प्रयत्न न करनेमें हीं है। हताश हो जानेवाला मनुष्य कभी कोई काम नहीं कर सकता। आत्मसंयम मनुष्यको कभी हताश नहीं होने देता, वल्कि उसे काम करनेकी और अधिक शक्ति प्रदान करता है। जिस समय हमारे ऊपर चारों ओरसे विपत्तियोंकी वौछार होने लगती है उस समय आत्मसंयम एक मजवूत ढालका काम देता है। जीवन-कालमें अनेक प्रकारके संकटों, कठिनाइयों और वाधाओंका आना स्वाभाविक और अनिवार्य्य हैं; पर यदि हम वीरता, धैर्य्य और साहसपूर्वक उनका सामना करें तो उनसे हमें वहुत ही थोड़ी हानि पहुँचेगी। दुःख उस समय कभी हमारे सामने नहीं ठहर सकता जव कि हम दृढतापूर्वक उसके सामने डटे रहें। कायरोंको ही अपना पीछा करनेवालेके पैरोंकी आहट सुनाई देती है; वीरोंको नहीं। यद्यपि दरिद्रता या इसी प्रकारके किसी और कष्ट-का वास्तविक मूल्य या उपयोग समझना सहज नहीं है, पर इतना अवश्य समझ लेना चाहिये कि विना तपे सोनेका रंग नहीं खिलता। जवतक हमे प्रमाणित करनेका कोई अवसर न मिले तवतक हम यह कैसे कह या समझ सकते हैं कि हममे आत्म-निग्रह है। अनुभव हमे यही वतलाता है कि विना परिश्रमके जीवनसे किसी प्रकारका लाभ नहीं उठाया जा सकता। जवतक जमीन अच्छी तरह जोती-वोई न जाय तवतक उसमे अच्छी फसल नहीं हो सकती। विना कष्ट सहे मनुष्यमें शक्ति नहीं आती। कष्ट ही एक ऐसी चीज है जो हमारी शक्तियोंको मन्द नहीं होने देती और हमसे वरावर काम कराती रहती

है। दृढनिश्चयसे ही कठिनाइयाँ दूर होती है और कठिन परिश्रमसे मार्गकी रुकावटें हटती है। ये सब चीजें हमारे मनुष्यत्व और आत्मबलकी परीक्षा करती हैं और हमें आत्म-संयमी बनाती हैं।

परिस्थिति और साधनोंकी शिकायत करना भी बड़ी भारी भूल है। जिस मनुष्यमें कुछ भी वास्तविक योग्यता होती है वह प्रत्येक मिलनेवाली चीजसे ही अपना कुछ न कुछ काम निकाल लेता है और उसे अपने लिये उपयोगी बना लेता है। आजसे हजार बरस पहले लोग बहुत साधारण नावोंकी सहायतासे भी बड़े बड़े समुद्र पार कर ही लेते थे और अब भी सैकड़ों नये नये वैज्ञानिक अविष्कार हो जाने और बड़े बड़े जहाज बन जानेपर भी पार ही कर लेते हैं। आदमी काम करनेवाला होना चाहिये; फिर उसे चाहे जैसे साधन मिलें उनसे वह काम निकाल ही लेगा। यदि हमे विज्ञानका शौक हो और हम शीशेकी बहुमूल्य नलियाँ और बड़ी बड़ी बोतले खरीदनेमें असमर्थ हों तो हमें नरकट या हुक्केकी निगाली और मिट्टीकी नाँदसे ही काम चला लेना चाहिये। अच्छे उपकरण अवश्य अधिक उपयोगी होते है, पर उनके अभावमें हमें एकदम हाथपर हाथ रखकर बैठ न जाना चाहिये। पहले हमें जितनी सामग्री मिल सकती हो उतनीसे ही काम चलाना चाहिये। जब हम उन सबसे लाभ उठा लेंगे तब हमे अनायास ही कुछ और अधिक सामग्री भी मिल ही जायगी। एक विद्यार्थीने एक प्रसिद्ध चित्रकारसे पूछा—"महाशय, आप रंग किस चीजसे मिलाते हैं?" उत्तर मिला—"बुद्धिसे;" और वास्तवमे यही मूल सिद्धान्त है। बढ़िया बढ़िया सामानोंके मिल जानेपर भी बिना बुद्धिके कोई काम नहीं हो सकता।

आत्म-निर्भरता भी बड़ा भारी गुण है। प्रसिद्ध विद्वान् बेकन कहता है—"जान पड़ता है कि लोग धन और बलको वास्तविक अर्थ नहीं

समझते। घनका महत्त्व तो वे आवश्यकतासे अधिक और वलका आवश्यकतासे कम समझते है। आत्म-निर्भरता और आत्म-निग्रह दोनों ही मनुष्यको अपनी टंकीसे पानी पीना और अपनी रोटी खाना सिखलाते है *। अपनी जीविका निर्वाह करनेके लिये स्वयं सच्चा परिश्रम करनेकी शिक्षा देते है और मनुष्यको जितनी अच्छी चीजें मिलती हैं उन सवका सदुपयोग कराते है।" वास्तविक धनवान् वही है जिसे केवल अपनी योग्यता और वाहुवलका भरोसा हो। ऐसा मनुष्य अवसर पड़नेपर सदा प्रस्तुत, शान्त और कर्त्तव्य-परायण रहता है और उसे किसी वातकी कमी नहीं होती। पर जो मनुष्य दूसरोंके भरोसे चलता है वह अवसर पड़नेपर भयभीत और अकर्म्मण्य हो जाता है। मनुष्यके लिये वास्तविक प्रसन्नता उसी समय होती है जब कि वह विना किसी पथदर्शककी सहायताके अपने मार्गमे चल पड़ता अथवा अपने काममें भिड़ जाता है। जो मनुष्य आप अपने पैरोपर खड़ा होना जानता है, उसे ससारमे और किसी चीजकी आवश्यकता नहीं रह जाती।

आत्म-निर्भरता ही मनुष्यका सर्वस्व है। अँगरेजीकी एक कहावत-का अभिप्राय है—"जो लोग अपनी सहायता आप करते है उन्हींकी सहायता ईश्वर भी करता है।" सारी कठिनाइयाँ दूर करनेका यह सबसे अच्छा मूलमन्त्र है। जो लोग स्वयं कोई कर्त्तव्य या उद्योग न करके केवल ईश्वरसे प्रार्थनाएँ किया करते है उनपर ईश्वर भी दया करनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझता। गोसाईं तुलसीदासजीने कहा है—"कादर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा"।

---

* एक कवि कहता है—

> "अपनी रूखी खाइ कै, ठंढा पानी पीउ।
> देख पराई चोपड़ी, मत ललचावे जीउ॥"

जा लोग अकर्म्मण्य होते हैं, जिन्हें परिश्रम करनेमें भय या लज्जा है, अथवा जो ईश्वरीय कृपाके अपात्र होते है वे ही हाथपर हाथ रखकर ईश्वरीय कृपाके भिक्षुक भी बनते है। स्वयं कमर कसकर काममें लग जाओ और तब देखो कि ईश्वर भी बिना तुम्हारी प्रार्थनाके आप ही आप तुम्हारी कितनी सहायता करता और तुम्हारी मार्गकी कितनी कठिनाइयाँ हटाता है। अपने अन्तःकरणसे मिलनेवाली सहायता मनुष्यको सबल बनाती है और दूसरोंसे मिलनेवाली सहायता दुर्बलता उत्पन्न करती है। जिस मनुष्यमें आत्मनिर्भरता है वही अपनी रक्षाके सारे उपाय कर सकता है। दूसरोंकी सहायतापर निर्भर रहनेवालेकी स्थिति बड़ी ही अरक्षित होती है। नारियल या घड़ेकी सहायतासे आदमी कभी तैरना नहीं सीख सकता; तैरना वही सीखेगा जो साहस करके पानीमें कूद पड़ेगा और हाथ पैर मारेगा।

जिस समय अमरसिंह राठौर जोधपुरसे निकाल दिये गये उस समय क्या वे एकदम निराश और 'किं कर्तव्यविमूढ़' होकर बैठ गये? नहीं, उन्होने उत्साहपूर्वक कहा था—“ हमारा राज्य तो यह खड्ग है। इसकी दोनो धारें राज्यकी सीमा, इसका सिरा सिंहासन और इसकी मूठ हमारा खजाना है। इसकी सहायतासे एक मारवाड़ क्या सारी पृथिवीका राज्य किया जा सकता है।” यद्यपि अमरसिंह अपनी अभिलाषा पूरी न कर सके थे और इससे पहले ही वीरगति पाचुके थे तथापि शाहजानके दरबारमें पहुँचकर उन्होंने जो हलचल मचाई थी और जिस प्रकार अपने शत्रुओंके दाँत खट्टे किये थे, उससे मानना पड़ता है कि वे बड़े ही दृढ़निश्चयी, वीर, साहसी और कर्मशील थे।

उन्नति और सफलताको कोई तो भाग्याधीन बतलाता है और कोई उन्हें चतुराई और धूर्त्ततापर अवलम्बित करता है। कोई बड़े बड़े

धनवानोकी सहायताको सबसे बड़ा साधन समझता है और कोई किसी दैवी शक्तिको। जिसकी समझमे जो आता है वह वही बतलाता है। पर जो लोग संसारके बहुतसे लोगोके उन्नति-क्रमपर खूब विचार करते हैं वे शीघ्र ही समझ लेते है कि इन सब कथनोंमें कोई विशेष सार नहीं है। उन्नति और सफलता प्राप्त करनेके लिये दूसरोका मुँह ताकने और प्रतिकूल परिस्थितिके कारण हताश होकर बैठनेसे कभी काम नहीं चलता; काम निकलता है केवल सब प्रकारकी कठिनाईयोंको तुच्छ समझने और अपने निश्चयपर दृढ रहकर प्रयत्न करते रहनेसे। जो लोग वास्तवमे 'मनुष्य' कहे जानेके योग्य होते है वे दूसरोंकी सहायताकी जरा भी परवा नहीं करते। दूसरोकी सहायताकी अपेक्षा करना ही अपनी अयोग्यता और असमर्थता सिद्ध करना है। इसके सिवा मनुष्यकी सारी शक्तियोके लिये, वह बहुत घातक है। योग्यता और आवश्यकता दोनों पास ही पास रहती है। यदि हममें योग्यता नहीं है तो हमारी आवश्यकताएँ कभी पूरी नहीं हो सकतीं।

कठिनाइयाँ झेलकर सशक्त बनना ही जीवनका रहस्य जान पड़ता है। जो मनुष्य कठिन परिश्रम करके जंगलो और पहाड़ोका चक्कर लगाता हुआ खून बहते हुए पैरोसे घर आता है उसीके साथ सबकी और साथ ही ईश्वरकी भी सहानुभूति होती है। पर गद्दी लगाकर चुपचाप लेटे रहनेवालेके साथ किसीकी कभी सहानुभूति नहीं होती। कर्त्तव्य-पथ बड़ा ही बीहड़ और काँटोंसे भरा हुआ है। जो उसपर चलनेमें समर्थ होता है वही उन्नत, सफल और सुखी कहलाता है। विपत्तियाँ, झंझटें और विफलताएँ आदि ही हमारी शक्तियोंको जाग्रत और उन्नतिशील बनाती है, हमें और अधिक परिश्रम करनेकी सामर्थ्य देती है और हममे आत्म-निर्भरताका पवित्र और उच्च गुण उत्पन्न करती है। उनसे

हमें कभी घबराना न चाहिये। हमें सदा यही समझना चाहिये कि प्रत्येक मनुष्यका संसारमें कुछ न कुछ निश्चित उद्देश्य और कर्त्तव्य है और वह उद्देश्य और कर्त्तव्य अपने और समस्त मानवजातिके हितके लिये कोई क़ाम करना है। इसकी पूर्तिके लिये हमे अपने विचारों और कार्य्योंमें स्वतंत्र बननेका अभ्यास करना चाहिये। संसारके सब मनुष्योंमें परस्पर एक प्रकारका सम्बन्ध है और उस सम्बन्धके कारण प्रत्येक मनुष्यके कार्य्योंका संसारके अन्य मनुष्योंपर किसी न किसी रूपमें अवश्य प्रभाव पड़ता है। हमारे कार्य्योंका प्रभाव हमारे संगी-साथियो और हमें जाननेवालोंपर पड़ता है और आगे चलकर उन लोगोंका प्रभाव उनसे संसर्ग रखनेवालोंपर पड़ता है। इस प्रकार यह क्रम बराबर बढ़ता जाता है और समस्त संसार आच्छादित कर लेता है। हमारे कार्य्य और आचरण आदि एक ऐसा स्वरूप धारण कर लेते है जो किसी न किसी रूपमें स्थायी और प्रभावशाली हो जाता है। यही विचार हमें उच्च और आदर्श जीवन व्यतीत करनेकी आवश्यकता बतलाता और हमें उसके लिये उत्तेजित करता है। संसारके अन्य मनुष्योके प्रति हमारा जो कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व है--उससे हम किसी प्रकार बच या भाग नहीं सकते। यह ठीक है कि हममेंसे प्रत्येक मनुष्य न तो वाल्मीकि या विश्वामित्रके समान ऋषि और महात्मा हो सकता है और न महाराणा प्रताप या मेजिनीके समान देश-सेवक। पर इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक मनुष्यमें मानव-जातिका कुछ न कुछ कल्याण करके उसकी प्रसन्नता और सुख बढ़ाने और उसे पवित्र और उत्तमतर बनानेकी शक्ति अवश्य है। हम अपने कार्य्योंसे लोगोंके सामने सत्यता, कर्त्तव्यपरायणता, सहनशीलता और स्वतन्त्रता आदिके अच्छे आदर्श उपस्थित कर सकते है जिनसे संसारका कल्याण होनेमें थोड़ी बहुत सहायता अवश्य मिल सकती है। यह सिद्धान्त सदा सबके ध्यान रखने योग्य है।

एक विद्वान् कहता है—"संसारके सभी कार्य्योंमे सफलता प्राप्त करनेके लिये साधारणतः विचारशील, परिश्रमी और मितव्ययी होनेकी आवश्यकता होती है। समय या धनका किसी प्रकारका दुरुपयोग या अपव्यय करना अपने आपको फल-सिद्धिसे दूर करना है। जो लोग आरम्भसे ही समय और धनका महत्त्व समझने लगते है उन्हे आगामी जीवनमें कभी कोई बड़ी कठिनता हो ही नहीं सकती।" अगर सच पूछिये तो आजकल अधिकांश संसारपर अपव्ययका ही सिक्का जमा हुआ है। यह अपव्यय धनका भी होता है और समयका भी। यही नहीं, बहुतसे लोग अपनी योग्यता, गुणों और शक्तियोंका भी दुरुपयोग अथवा अपव्यय करते हुए देखे जाते हैं। यदि यह कहा जाय कि संसारकी आधी उन्नतिका मूल बाधक किसी न किसी प्रकारका अपव्यय ही है तो कुछ अत्युक्ति न होगी। अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतके पीछे यह रोग और भी बुरी तरहसे लगा हुआ है। यद्यपि अनेक सभ्य देशोंके विद्वान् भी अपने देशवासियोके इस दुर्गुणका रोना रोते है पर उन देशोंके लिये यह दुर्गुण उतना हानिकारक नहीं है जितना इस देश-के लिये। क्योंकि उनका देश शिक्षित है, सभ्य है, सम्पन्न है और अनेक प्रकारकी विद्याओं और कलाओंका भाण्डार है। पर भारत सरीखे दरिद्र, मूर्ख और अधोगत देशके लिये तो उसे महाविष ही समझना चाहिये। अन्यान्य बातोंके साथ प्रत्येक वस्तुके मित और सद्व्ययको भी सफलता और फलप्राप्तिका प्रधान और आवश्यक अंग समझना चाहिये। यदि अध्यवसाय और परिश्रमके साथ हम मितव्ययको भी मिला दे तो "सोना और सुगन्ध" वाली कहावत चरितार्थ हो जाय और हमारे पूर्ण सफल-मनोरथ होनेमें जरा भी सन्देह न रह जाय।

एक बड़े विद्वानने एक स्थानपर कुछ उत्तम सिद्धान्तोंका वर्णन किया है जिसका सारांश यहाँ पर दे देना उपयुक्त जान पड़ता है। वह कहता

है—"जो लोग वास्तवमें कुछ काम करना चाहते हों उन्हें बहुतसे परामर्शों और उपदेशो पर कभी ध्यान न देना चाहिये। अपनी योग्यता और स्थितिका विचार करके स्वयं अपना कर्त्तव्य और सिद्धान्त निश्चित करना चाहिये। बहुत ही छोटी छोटी बातोंका भी उतना ही ध्यान रखना चाहिये जितना कि बड़े बड़े विषयोका रक्खा जाता है। धनको सर्वस्व न समझकर केवल उद्देश्य-सिद्धिका साधन समझना चाहिये। कभी स्वार्थी न बनना चाहिये। स्वार्थी होना केवल बड़ा भारी दुर्गुण ही नहीं बल्कि अनेक दूसरे दुर्गुणोंकी खानि भी है। वह बुद्धि और विचारको नष्ट कर देता है, सुन्दर वृत्तियों और गुणोंका सत्तानाश कर देता है और मनुष्यको एकदम अन्धा बना देता है।" जिस मनुष्यमे स्वार्थकी जितनी ही अधिक मात्रा हो उसे उतना ही भयानक पापी समझना चाहिये। स्वार्थी मनुष्य एकदम विवेकहीन होता है और अपने लाभके लिये संसारका बड़ेसे बड़ा अनिष्ट करनेके लिये तैयार रहता है। ऐसे आदमियोका समाजमें भी कभी कोई आदर नहीं होता। प्रायः स्वार्थी मनुष्य बहुत ही नीच, घृणित और तुच्छ समझा जाता है। वह दूसरोंके लिये तो अनिष्टकर होता ही है, साथ ही उसका हृदय भी कभी शान्त और सुखी नहीं होता। "पर जो मनुष्य दूसरोंका ध्यान रखता है, उसके प्रसन्न और सुखी होनेमें अधिक देर नहीं लगती। परोपकार एक ऐसा गुण है जो अपने कर्त्ताको ही अधिक लाभ पहुँचाता है; औरोंको कम। इस प्रकार दूसरोंका उपकार करना मानों प्रकारान्तरसे स्वयं अपना हित करना है। यदि हमारे साथ कोई अनुचित व्यवहार करे तो हमे उचित है कि हम उसके साथ सभ्यता, दया और सत्यताका व्यवहार करें। इस तरह हम अनेक प्रकारके गुणोंकी वृद्धि करनेके साथ ही साथ अनेक तुच्छ वृत्तिवाले लोगोंको परास्त करके उन्हे अपना बना लेंगे।"

यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि किसी प्रकारका कर्म्म वृथा नहीं जाता, उसका कोई न कोई फल अवश्य होता है। ऐसी दशामे हम क्यों न ऐसे कार्य्य करें जिनसे संसारके दुर्गुणों और दुःखोका नाश तथा सद्गुणों और सुखोंकी वृद्धि हो ? यदि कोई नीच अपनी नीचता पर अड़ा रहे तो हमे उसीके साथ उस समयतक वरावर शिष्टता, कोमलता और दयाका व्यवहार करते रहना चाहिये जबतक कि वह अपना दोप त्यागकर सत्पथ पर न आ जाय। सच्चे महानुभावोंके यही लक्षण हैं।

उत्तम परिणाम तक पहुँचनेके लिये हमें अपनी मानसिक शक्तियोका पूरा पूरा उपयोग करना चाहिये। प्रत्येक काम खूब सोच समझकर और उसका ऊँच नीच देखकर करना चाहिये। किसी प्रकारका पक्षपात या उतावलापन न करना चाहिये। जहाँतक हो सके अपनी जानकारी बढ़ाते रहना चाहिये। प्रत्येक वस्तुसे कुछ लाभ उठाना चाहिये और प्रत्येक घटनासे कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। 'एक बार हमे जो ज्ञान या शिक्षा प्राप्त हो उसे कभी भूलना न चाहिये और अवसर पड़नेपर बराबर उसका सदुपयोग करना चाहिये। यदि हम प्रतिदिन एक ज्ञान और एक शिक्षा भी संग्रह और ग्रहण करें तो हमारा भाण्डार अतुल और अनुपम हो सकता है। हमें कभी कृतघ्न न होना चाहिये। जो लोग दूसरोंका किया हुआ उपकार नहीं मानते, लोग बहुत शीघ्र उनके साथ उपकार करना छोड़ देते है।

अब हम फिर अपने वक्तव्यकी ओर झुकते है। जीवन-यात्रामे उपयुक्त होनेवाले अनेक गुणों और अभ्यासोका कुछ कुछ वर्णन ऊपर किया जा चुका है। पर एक सबसे आवश्यक गुणके विपयमें अभीतक कुछ भी नहीं कहा गया। वह गुण कुशलता,

पटुता या कार्य्य करनेकी वास्तविक योग्यता है। इस गुणकी सभी अवसरोंपर आवश्यकता पड़ती है। बहुतसे लोग शुद्ध-चरित्र और विचारवान् होकर भी केवल इसी गुणके अभावके कारण अच्छे अच्छे अवसर नष्ट कर देते है; और जिन लोगोंमें यह गुण होता है वे अपनी साधारण बुद्धि और शक्तिसे भी बाजी मार ले जाते है। मनुष्य विचार द्वारा अपना कर्तव्य निश्चित करता है; पर यदि उसमें कार्य्य करनेकी यह शक्ति, यह प्रतिभा न हो तो स्वयं वह और उसके विचार आदि व्यर्थ हैं। दृढ़ता, फुर्तीलापन, तत्परता, मृदुल स्वभाव आदि कई बातें इस गुणके अन्तर्गत हैं। इसकी सहायतासे मनुष्य अनेक प्रकारके अपराधों और बुरी प्रवृत्तियोंसे बचा रहता है। प्रत्येक अवसरपर उसीके अनुकूल शुभ कार्य्य करना और प्रत्येक कार्य उपयुक्त और अनुकूल अवसरपर करना ही इसका फल है। इसीको हम अनुभव-जन्य दूरदर्शिता भी कह सकते है। इसकी सहायतासे प्रत्येक त्रुटि या आवश्यकताका तुरन्त पता लग जाता है और उसकी पूर्तिका उपाय भी तत्काल निकल आता है। वह किसी सुअवसरको व्यर्थ नहीं जाने देता।

कुछ लोग प्रतिभाको पटुतासे ऊँचा आसन देते है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रतिभा एक उच्च और प्रशंसनीय गुण है; पर केवल इसी कारण पटुताको तुच्छ न समझना चाहिये। कभी कभी तो प्रतिभासे निकलनेवाले कामोंको पटुता ही मनुष्यके लिये उपयोगी बनाती है। इसके अतिरिक्त प्रतिभा एक ऐसा गुण है जो सब लोगोंमे नहीं हो सकता; पर पटुता बहुतसे अंशोंमें अनुभव, दूरदर्शिता, आत्मनिग्रह आदिकी सहायतासे प्राप्त की जा सकती है। यदि यह कहा जाय कि प्रतिभाकी अपेक्षा पटुतासे जगतका अधिक कल्याण हुआ है तो कुछ अत्युक्ति न होगी। वास्तवमें नित्य प्रतिके सांसारिक कार्य्योंमें पटुतासे ही बहुत अधिक सहायता

मिलती है। यद्यपि हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि धन और प्रतिष्ठा प्राप्त करना ही मानव-जीवनका एक मात्र उद्देश्य होना चाहिये तथापि इसमें सन्देह नहीं कि विचारशीलोंकी अपेक्षा कर्मशील अधिक धन और प्रतिष्ठा प्राप्त करते है।

सफलता प्राप्त करनेके लिये सबसे आवश्यक यह है कि मनुष्य अपने आपको परिस्थितिके अनुकूल बनावे अर्थात् परिस्थिति चाहे जैसी हो, उससे लाभ उठावे–, लोगोंके साथ सद्व्यवहार रक्खे, समयकी आवश्यकताएं जाने और यथासमय लोगोंको उपयुक्त उपदेश और सम्मतियाँ दे। मनुष्यके लिये केवल उचित कार्य्य करना ही पर्य्याप्त नहीं है, वास्तवमें उचित समय और स्थानपर ही उचित कार्य्य करनेकी आवश्यकता होती है। बहुत से लोग इतने जल्द-बाज होते हैं कि वे पहला कदम उठानेसे पहले ही दूसरा कदम उठाना चाहते हैं और मनुष्यको चारो ओरसे घेरे रहनेवाली अनेक अनिवार्य्य आवश्यकताओंका अस्तित्त्व स्वीकार न करके बीचका रास्ता बिना चले ही उद्दिष्ट स्थानतक चटपट पहुँच जाना चाहते हैं; और बहुधा यही उनकी विफलताओंका कारण होता है। विचारशक्तिके अभावके कारण उतनी विफलताएँ नहीं होतीं जितनी पटुताके अभावके कारण हुआ करती हैं।

पटुता ही एक ऐसा गुण है जिसकी आवश्यकता छोटे बड़े, निजके और सार्वजनिक सभी कार्य्योंमे होती है। जिस मनुष्यमें पटुता नहीं होती वह अपने उतावलेपन, भद्दे व्यवहारो और मूर्खतापूर्ण बातोंसे सबको कुछ न कुछ हानि पहुँचाता अथवा अप्रसन्न कर देता है। उससे संसर्ग रखनेवाले सभी लोग किसी न किसी रूपमें उससे दुःखित होते है। ऐसे ही आदमियोमेसे किसी एकने एक बार थिएटरमें लार्ड नार्थस

कहा था—" वह सामनेवाली औरत कितनी भद्दी है। " उत्तर मिला " हाँ, वह मेरी स्त्री है। " उस मूर्खने कुछ लज्जित होकर फिर कहा " वह नहीं साहब, उसकी बगलवाली। " लार्डने कहा--" वह मेरी बहन है। " 'संसारदर्पण' में कलक्टर साहबके निमन्त्रणका आदाब अल्काबसे लदा हुआ उत्तर भेजनेवाले और निश्चित समयसे ढाई घंटे पहले पहुँचनेवाले सैयद काजिमहुसैन खाँ बहादुर इसी श्रेणीके थे। वहाँ पहुँचकर खानेके कमरेमें कलक्टरकी मेमकी मृत बहिनकी निशानी-वाला शीशेका बना हुआ नकली फूलोंका गुलदान तोड़नेवाले मौलवी मुकर्रमहुसैन साहब तहसीलदारमें भी इसी गुणका अभाव था। और कलक्टर साहबके आनेपर सैयद साहब और मौलवी साहबके परस्पर झगड़कर एक दूसरेको बनानेने तो मानो उसकी हद ही कर दी थी। कार्य्यपटुता या समझदारीके अभावके कारण कभी कभी बड़े विचारशील भी धोखा खाते और मुहँके बल गिरते हैं। बहुत ही साधारण समझके लोग जो काम बड़ी सरलतासे कर लेते है वही बड़े बड़े विचारशीलोंसे नही हो सकते। कैसे आश्चर्य्यकी बात है कि हरिश्चन्द्र सरीखा नररत्न अपनी इतनी बड़ी सम्पत्ति नष्ट कर दे और मिरजा अस-दुउल्ला खाँ गालिबको जेल जाना पड़े ! पर थोड़ेसे विचारसे ही यह आश्चर्य्य दूर हो जाता है। बात यह है कि गूढ़ विचार करनेकी शक्ति और घर गृहस्थीके बहुत ही साधारण काम करनेकी योग्यतामें किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है। आकाशके तारोंपर दृष्टि गड़ानेवाला बड़ा भारी दार्शनिक जमीनपरकी छोटी सी गड़हीमें फिसल सकता है और किसी दीवारके छेदमें हाथीकी पोंछ जड़ी हुई देखकर घबरा और सोच सकता है कि इतने छोटे छेदमे हाथी कैसे चला गया ? न्यायशास्त्रके प्रसिद्ध आचार्य्य गोतम एक बार अपने विचारोंमे मग्न चले जाते थे।

चलते-चलते वे एक बड़े गड्ढेमें गिर गये। आगेसे स्वयं देख भालकर चलने की तो आवश्यकता उन्होने नहीं समझी, पर हाँ, ईश्वरसे अपने पैरोके लिये भी नेत्र अवश्य माँग लिये; और तभीसे उनका नाम अक्षपाद पड़ गया !

अनेक विषयोंके पूर्ण ज्ञाता और विचारशील पण्डितकी अपेक्षा एक साधारण बुद्धिमान् बड़ी योग्यतासे सारे सांसारिक काम कर लेता है। इसी लिये विचार या विद्याकी अपेक्षा बुद्धिबल अधिक श्रेष्ठ माना गया है। इसी बुद्धिबलके अभावके कारण राजपुत्रको अपने पिताके सामने परीक्षाके समय मुट्ठीमें दवाई हुई चीजको जो कि वास्तवमे अँगूठी थी, चक्कीका पाट कहना पड़ा था। नही तो उसके ज्योतिष-विद्याके पूर्ण पण्डित होनेमे किसी प्रकारका सन्देह नही था और उसी पाण्डित्यके वलसे उसने पहले ही कह दिया था कि हाथमें दवाई हुई चीज गोलाकार है और उसमे पत्थर जड़ा हुआ है। प्रतिभा विचारोंका केवल संग्रह करती है, उनका यथेष्ट उपयोग करना पटुताका काम है। जो काम प्रतिभा बिना किये छोड़ देती है उसे प्रायः पटुता पूरा कर देती है। विचारशील वालकी खाल ही निकालते रह जाते है और कार्य्यपटु अथवा कर्म्मशील सारे कार्य्य समाप्त करके रख देते है। वह कोरी विचारशीलता ही थी जिसने मूर्ख पण्डितके हृदयमे "घृताधारे पात्रं वा पात्राधारे घृतम्।" का संशय उत्पन्न कराकर उसका सारा घी जमीनपर गिरवा दिया था। यद्यपि विचारशीलता और पटुता दोनों ही मानसिक शक्तिका विकाश है और दोनो ही अपने अपने कामके लिये वहुत उपयोगी है, तथापि कर्म्म-संसारमे सबसे अधिक काम अन्तिमसे ही निकलता है। जो लोग हाथमें लिये हुए कार्य्यके अंग प्रत्यंगसे भली भाँति परिचित होते है, जो सब कठिनाइयोका पहलेसे

ही अनुमान करके उनका सामना करनेके लिये तैयार हो जाते है और जो अपने बुद्धिबलसे प्रत्येक सुअवसर ढूँढ़ निकालते हैं वे ही सांसारिक कार्य्योंमें सफलीभूत हो सकते हैं।

बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो न तो अपने विचारोंको स्थिर रख सकते हैं और न अपने कार्य्योंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका निर्णय कर सकते है। ऐसे लोग स्वयं तो सदा दुखी रहते है और दूसरोंको हँसी उड़ानेका अवसर देते है। जिन लोगोंको अपने आपपर विश्वास नहीं होता और जिनमें मानसिक दुर्बलता अधिक होती है वे कभी किसी बात पर दृढ़ नहीं रहते। लेखक एक ऐसे सज्जनको जानता है जिनमें कार्य्यपटुता तो बहुत अधिक है और जिन्होने कई तरहके काम आरम्भ किये और कुछ समयतक अच्छी तरह चलाये है, बहुत कुछ साहित्यसेवा की है और कई व्यापार किये है; पर अपनी अस्थिरता और जल्दी जल्दी अपने निर्णय बदलते रहनेके कारण उन्हें पूरी सफलता किसी काममें प्राप्त नहीं हुई। ऐसे लोगोंको भी बहुतसे अंशोंमें अकर्म्मण्योंमें ही गिनना चाहिये। लखनऊके एक प्रसिद्ध नवाबने जो बड़े ही अस्थिरचित्त थे, एक बार एक परगनेका शासन करनेके लिये एक कर्म्मचारी नियुक्त करके भेजा। ज्योंही वह कर्म्मचारी उस परगनेमें पहुँचा त्योंही उसके पास वापस लौट आनेका परवाना गया और उसके स्थानपर काम करनेके लिये दूसरा आदमी आया। इस दूसरे आदमीको आते देर नहीं हुई थी कि वह भी वापस बुला लिया गया और उसके स्थानपर तीसरा आदमी आया। तीसरे आदमीकी भी वही दशा हुई। जब चौथा आदमी नवाब साहबकी आज्ञा पाकर उस परगनेकी ओर चलने लगा तब उसे नवाब साहबके विचारोंकी अस्थिरताका ध्यान आया। वह किसी कदर मस-

खरा था इसलिये घोड़ेपर दुमकी तरफ मुहँ करके सवार हुआ और नगरसे बाहर निकलकर परगनेकी ओर चलने लगा। जब वह कुछ दूर चला गया तब नवाब साहबने महलकी छतपरसे उसे घोड़ेकी दुमकी तरफ मुहँ करके बैठे हुए देखा। इसपर उन्हे बहुत कुतूहल हुआ और उन्होंने एक सवार भेजकर उसे बुलवाया और उससे घोड़ेपर उलटे सवार होनेका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया।—"हुजूर, मुझसे पहले तीन आदमी वहाँ काम करनेके लिये भेजे गये और वहाँ पहुँचते ही वापस बुला लिये गये। इस लिये मुझे भी डर था कि मुझे वापस बुलानेका परवाना आता होगा और उसी परवानेके आसरे मै घोड़ेपर महलकी तरफ मुहँ करके बैठा था।" नवाब साहब बहुत लज्जित हुए और आगे फिर कभी उन्होने अपना निश्चय बदलनेमें इतनी शीघ्रता नहीं की।

बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ आ पड़नेके समय यह बात बहुत आवश्यक है कि मनुष्य तुरन्त अपना सिद्धान्त और कर्त्तव्य निश्चित कर ले। जो लोग ऐसा कर सकते है उनसे कठिन अवसरोंपर बड़ा काम निकलता है। मान लीजिये कि दस पाँच आदमी कहीं साथ जा रहे है। मार्गमे कोई बड़ी भारी दुर्घटना हो गई। उस समय और सब लोग तो घबराकर 'किं कर्तव्यविमूढ़' हो जाएँगे, पर कर्तव्य और उपाय आदि उसीको सूझेगे जो स्थिर और व्यवस्थितचित्त होगा। उस समय ऐसे मनुष्यके द्वारा जो काम निकलेगा उसके लिये सब लोग उसकी प्रशंसा करेगे और सदा उसके कृतज्ञ रहेगे। ऐसे ही मनुष्य जहाज डूबनेके समय बिना किसी प्रकार व्याकुल हुए जहाँतक हो सकेगा नावोद्वारा लोगोकी रक्षाका प्रबन्ध करेगे और उन्हे किनारे या दूसरे जहाजतक पहुँचाकर उनके प्राण बचावेंगे। ऐसे ही लोग सैनिकोंकी घबराहट दूर

करके उन्हें फिरसे युद्ध-स्थलमें एकत्र करेंगे और लड़कर अन्तमें विजय प्राप्त करेंगे। और ऐसे ही मनुष्य किसीको साँप काट लेने या किसीके जल जानेपर तुरन्त ऐसे उपाय करेंगे जिनसे उस मनुष्यकी पीड़ा तुरन्त कम हो और जान बच जाय।

यह बात अस्वीकृत नहीं की जा सकती कि स्थिर और व्यवस्थित-चित्त होना बहुतसे अंशोमें शारीरिक शक्तिपर निर्भर करता है। यद्यपि यह स्वयं एक नैतिक शक्ति है तथापि शारीरिक बलसे भी इसका बहुत कुछ सम्बन्ध है। यही बात और भी अनेक नैतिक अथवा मानसिक गुणोंके विषयमें कही जा सकती है। बात यह है कि मनपर शरीरका बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। कभी कभी ऐसी दुर्घटनानाएँ हो जाती है जो बड़े ही दृढ़-चित्त लोगोका भी विचलित कर देती है। प्रत्येक मनुष्य-में स्थिरता और व्यवस्थासम्बन्धी गुणका कुछ न कुछ बीज अवश्य होता है और यदि हम प्रयत्न करें तो वह बीज अंकुरित होकर शुभ फल-दायक भी हो सकता है। दुर्बल मनुस्य भी यदि किसी प्रकारका उतावलापन न करके ईश्वर और अपनी शक्तिपर दृढ़ विश्वास रक्खे तो वह बहुत कम विचलित होगा। स्थिर-चित्त और अविचल बने रहने-का अभ्यास उसी नैतिक और मानसिक शिक्षाका एक अंग है जो मनुष्यको वास्तवमें ‘ मनुष्य ’ बनाती है। यदि इस शिक्षामें हमे कहीं कहीं विफलता भी हो हमें घबराना न चाहिये। जिस समय हमारे दृढतापूर्वक डटे रहनेकी आवश्यकता हो इस समय हमें विचलित न होना चाहिये और जल्दीसे यह न समझ लेना चाहिये कि हममें यथेष्ट आत्म-बल नहीं है। उस समय हमें कुछ न कुछ अवश्य निर्णय कर लेना चाहिये। एक दम कुछ न निश्चित करनेकी अपेक्षा किसी प्रकारका भ्रमपूर्ण निश्चय कर लेना भी उत्तम ही है। जो लोग स्वयं

किसी प्रकारका निश्चय नहीं कर सकते वे सदा उत्तम अवसर ढूँढ़ने और दूसरे लोगोसे सम्मतियाँ लेनेमें ही अपना सारा जीवन गँवा देते हैं। पर जो लोग दृढ़-निश्चयी होते हैं वे किसी कामको केवल असम्भव समझकर ही नहीं छोड़ देते; वल्कि जहाँतक हो सकता है उसे पूराकरके छोड़ते हैं। एक विज्ञ कहता है—"तुम जो कुछ बनाना चाहते हो, वही वन जाते हो; क्योंकि हमारी इच्छा-शक्तिका ईश्वरके साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि सच्चे हृदय और शुद्ध विचारसे हम जो कुछ वनना चाहते हैं वही वन जाते है।" सच तो यह है कि विना इस दृढताके हमारा जीवन बिलकुल निकम्मा और व्यर्थ है। दृढताका एक और गुण यह है कि वह मनुष्यको विचारवान् और न्यायशील वनाती है और उसके द्वारा कभी कोई अन्याय या अनुचित कार्य्य नही होने देती।

किसी आकस्मिक दुर्घटनापर विचार करके अपना भविष्य कर्तव्य निश्चित करनेके लिये उपस्थित बुद्धिकी आवश्यकता होती है। जो लोग उपस्थित-बुद्धि होते हैं वे प्रायः वड़ी वड़ी कठिनाइयाँ वहुत ही सहजमें दूर कर लेते है। जिस समय अलाउद्दीन चित्तौरसे भीमसिंहको पकड़ ले गया था उस समय पद्मिनीकी उपस्थित-बुद्धिने ही वहुत ही सहजमें उसके पतिको शत्रुओंके हाथसे छुड़ाया था। औरंगजेबका निमन्त्रण पाकर जब शिवाजी दिल्ली गये और जाकर शत्रुओ-के जालमें फँस गये तब वहाँ भी उपस्थित-बुद्धिके कारण ही शिवाजी और सम्भाजी अपना छुटकारा कर सके थे। जिस समय महारानी अहिल्यावाईके पति और श्वसुरका देहान्त हो गया उस समय होलकरोके विशाल राज्यका सारा वोझ महारानी पर ही आ पड़ा था। पर वे इससे जरा भी न घवराई और उन्होने तुरन्त

अपना भविष्य कर्तव्य निश्चित कर लिया। उनके दीवान गंगाधरपन्तने बहुतेरा चाहा कि वे एक दत्तक और कुछ वार्षिक व्यय लेकर इन सब झगड़ोंसे अलग हो जायँ और मुझे मनमानी करनेका अवसर मिले; पर अहिल्याने उसकी दाल न गलने दी। यही नहीं, बल्कि जब इससे चिढ़कर गंगाधरने राघोबा पेशवाको भड़काकर उससे महारानीके राज्य पर चढ़ाई करवा दी तब उस समय भी महारानीने अपनी उपस्थित-बुद्धिके प्रभावसे ही राघोबाको जहाँका तहाँ चुपचाप बैठा दिया और अपने राज्यको युद्धके अनेक दुष्परिणामोंसे बचा लिया।

अभी हालमें एक वकील साहबकी विलक्षण उपस्थित-बुद्धिका विवरण समाचारपत्रोंमें छपा था। वकील साहब दूसरे दरजेकी गाड़ीमें बैठे हुए आ रहे थे। उसी डब्बेमें एक मेम साहब भी थीं जो वकील साहबके पासके रुपये झटकना चाहती थीं। मेमने वकीलसे कहा कि तुम अपने सब रुपये मुझे दे दो, नहीं तो मै चेतावनीकी जंजीर खींचकर रेल रुकवाऊँगी और तुम पर कुत्सित व्यवहार करनेका अभियोग लगाऊँगी। वकीलको चुप देखकर उसने फिर दो बार वही बात कही और जब वकील साहबने उस पर कुछ ध्यान न दिया तो वह जंजीर खींचनेके लिये आगे बढ़ी। वकील साहबने देखा कि या तो रुपये देने पड़ेंगे और या मुकदमेमें फँसना पड़ेगा। उसी समय उनकी उपस्थित-बुद्धि काम कर गई और उन्होंने मेम साहबसे कहा—"मै बहरा हूँ। आप जो कुछ कहती हों, वह कार्ड पर लिखकर मुझे भी बतला दें तो कदाचित् मै आपकी कुछ सहायता कर सकूँ।" मेम साहब जालमें आ गईं और उन्होंने अपना मतलब लिखकर वकील साहबको दे दिया। बस फिर क्या था, वकील साहबने उसी कागज़के सहारे मेम साहब पर मुकदमा चला दिया।

इस बातकी सत्यतामे तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता कि उपस्थित-बुद्धि और दृढनिश्चयी न होनेके कारण ही बहुतसे युवक अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें असमर्थ होते है और कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। केवल मूर्ख ही नही बल्कि अच्छे अच्छे विद्वान् भी स्थिर-चित्त और दृढ़निश्चयी न होनेके कारण किसी प्रकारकी सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। वे अपने सामने सैकड़ों मार्ग देखते हैं पर उनमेंसे अपने लिये एक भी नहीं चुन सकते। वे सदा उनके गुणों और दोषों-की ही मीमांसा करते रह जाते है और कभी कार्य्य-क्षेत्रमे नहीं उतरते। ऐसे लोगोको उस गोताखोरसे शिक्षा लेनी चाहिये जो बहुत ही दरिद्रा-वस्थामें गहरा गोता लगाता है और कुछ देर बाद अनेक विपत्तियोंसे बचता हुआ बड़े बड़े बहुमूल्य मोती लेकर ऊपर निकलता है।

इस अवसर पर उत्तम अभ्यासोके सम्बन्धमें भी कुछ कह देना आवश्यक और उपयुक्त जान पड़ता है। बात यह है कि हम अपनी जिस इच्छाको जान-बूझकर अथवा बिना जाने-बूझे प्रबल होने देते है और जिसे हम यथासाध्य पूरा करके ही छोड़ते है वही धीरे धीरे समय पाकर हमारे हृदय पर पूरा अधिकार कर लेती है। हमारे उस इच्छाके अधिकृत हो जानेका ही नाम अभ्यास है। आदत, स्वभाव, टेव, बान आदि सब इसीके पर्य्याय है। जब यह इच्छा बहुत ही दृढ़ और बलवती होकर अभ्यासका रूप धारण कर लेती है तब वह ऐसी भयानक प्रभावशालिनी हो जाती है कि हम उसके सामने आँख उठाकर देखनेका भी साहस नहीं कर सकते। उस समय हम पूरी तरहसे उसके वशमे हो जाते है, उसका जादू हम पर सदा चलता रहता है। किसी कविका यह कहना बहुत ही ठीक है,—

" नीम न मीठी होय सिंचौ गुड़घीसे।
जाकर जौन स्वभाव छुटै नहिं जीसे॥"

जिस प्रकार किसी कलके पहियेके लगातार जोरसे घूमते रहनेके कारण उस कलमें इतनी शक्ति आ जाती है कि वह लोहेके बड़ेसे बड़े टुकड़ोंको देखते देखते पतली चद्दर बना देती है उसी प्रकार हम जिस इच्छाके वशमें सदा रहते हैं वह इच्छा अभ्यासरूपमें परिणत होकर इतनी बलवती हो जाती है कि वह कभी रोकेसे नहीं रुकती और सभी मिलनेवाले साधनोंको अपने अनुकूल बना लेती है। इस स्थल पर यह समझानेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि उत्तम अभ्यास विपत्तियोंसे हमारी कहाँतक रक्षा कर सकेंगे और नीच अभ्यास हमें अपने जालमें फँसाकर कहाँ तक नीचे ले जायँगे। मानवजीवनमें, जैसा कि पहले कहा ज चुका है, अनेक प्रकारकी कठिनाइयों और विपत्तियोंका होना अनिवार्य्य है। पर उत्तम अभ्यास हमें उनके दुष्ट प्रभावसे सहजहीमें बचा सकते और हमारी बहुत कुछ सहायता कर सकते है। जितने उत्तम अभ्यास हैं वे सब हमारे जीवन मार्गकी कठिनाइयाँ दूर करनेमें पूरी पूरी सहायता देते है, हमारे लिये आगेका रास्ता साफ करते है और संकटके समय हमें धीर और साहसी बनाकर सब आपत्तियाँ दूर करनेकी शक्ति प्रदान करते है इस अवसर पर हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम अपनी आदतके पूरे पूरे गुलाम बन जायँ। नहीं, बल्कि स्वयं हमें अपनी सारी आदतों पर पूरा पूरा अधिकार रखना चाहिये।

सच बोलना, नम्र रहना, साहस न छोड़ना, उपयुक्त अवसर और समय पर काम करना, प्रत्येक विषयके गुण दोष पर अच्छी तरह विचार करना, मितव्ययी होना, बराबर परिश्रम करते रहना, सहनशील होना, सबके साथ सुजनताका और उत्तम व्यवहार करना, लक्ष्यभ्रष्ट न होना दृढ़निश्चयी होना आदि आदि अनेक बातें ऐसी हैं जिनका पूरा पूरा अभ्यास यदि किसी मनुष्यको हो जाय तो संसारमें शायद ही कोई

ऐसी शक्ति बच रहेगी जो उसे विफल-मनोरथ करनेमें समर्थ हो सके। यही अभ्यास हमारे जीवनचक्रके प्रधान संचालक हैं। इन्हीं पर हमारा सर्वस्व निर्भर करता है। पर यह बात भूल न जानी चाहिये कि एक दो दिनमें किसी बातका अभ्यास नहीं डाला जा सकता। विशेष उत्तम अभ्यास डालनेके लिये तो और भी अधिक समय तक दृढ़तापूर्वक और निरन्तर प्रयत्न करते रहनेकी आवश्यकता होती है। एक बात और है। किसी बातका अभ्यास डालनेके लिये सबसे अच्छा अवसर हमारे जीवनका आरम्भिक काल ही है; मध्य या अन्तिम काल नहीं। लोग कहते हैं-" बूढ़ा तोता राम-नाम नहीं पढ़ सकता, " और यदि यह बात मान भी ली जाय कि बूढ़ा तोता राम-नाम पढ़ सकता है तो भी उसके पढ़नेका उतना उत्तम और उतना अधिक फल नहीं हो सकता जितना कि किसी बच्चे तोतेके पढ़नेका। अतः उत्तम अभ्यास डालनेके लिये जहाँ तक शीघ्र हो सके हमे प्रयत्न-शील हो जाना चाहिये।

सफलता प्राप्त करनेमें सर्व-प्रिय होनेसे भी बहुत बड़ी सहायता मिलती है। जिस मनुष्यके साथ सब लोगोकी सहानुभूति हो उसके बड़े बड़े काम सहजमें ही हो जाते हैं। हमें जिस क्षेत्र या संसारमें काम करना है उस क्षेत्र या संसारके सब लोगोंके साथ हमारा पूर्ण सहृदयता और सुजनताका सम्बन्ध होना चाहिये। 'मधुर भाषण, सात्विक व्यवहार और समय समय पर लोगोंकी थोड़ी बहुत सहायता या उपकार कर देनेमे हमारा कुछ खर्च नहीं होता; परन्तु समय पड़ने पर उनसे हमारा बहुत बड़ा काम निकलता और लाभ होता है। अन्यान्य त्रुटियोंके होते हुए भी इससे हमारा बड़ा उपकार होता है। धन, विद्या, बुद्धि और बल आदिका काम तो मुख्य मुख्य अवसरो पर ही होता है पर सुजनताकी आवश्यकता प्रत्येक समय रहती है। यदि हम मधुर-

भाषी हों तो हम जिससे जो प्रार्थना करेंगे उसे वह तुरन्त स्वीकृत कर लेगा। हमारे सद्व्यवहारोंका इतना उत्तम परिणाम निकलता है कि स्वामीसेवक, पिता-पुत्र, भाई-बहिन, और मित्र-मित्रका सम्बन्ध परम सात्विक, शुभ और प्रशंसनीय हो जाता है। पर हमारे सब व्यवहार शुद्ध होने चाहियें, उनमें छल, कपट या बनावट नाम मात्रको भी न होनी चाहिये। कुछ दुष्ट प्रकृतिके लोग अपने दिखौआ सद्व्यवहारोंकी आड़में ही बड़े बड़े कुकर्म्म करते हैं। ऐसे नीचोंके विषयमें इस अवसर पर कुछ अधिक कहनेकी न तो कोई आवश्यकता ही है और न यथेष्ट स्थान ही।

आर्थिक लाभकी इच्छा रखनेवालोंके लिये मितव्ययी होना परम आवश्यक है। जो मनुष्य मितव्ययी होता है वही वास्तवमें उदार, परोपकारी और बड़ा दानी भी हो सकता है। फजूलखर्च तो हमेशा खुद ही तबाह रहता है, वह दूसरोंकी क्या मदद करेगा? दानी और परोपकारी होना तो दूर है, वह उलटे अनेक पापोंका भागी और अनेक कुकर्म्मोंका उत्तरदाता हो जाता है। अमितव्ययी होना भी उतना ही बड़ा पाप है जितना कि कंजूस और मक्खीचूस होना। लोग किफायतसे रहनेवालोंकी हँसी तो जरूर उड़ाते है पर वे कभी यह नहीं सोचते कि अवसर पड़ने पर दीन दुखियोंकी सहायता करनेमें जितने अधिक समर्थ मितव्ययी होते है, उतने अमितयव्यी नहीं। अमितव्ययीको तो स्वयं दूसरोंकी सहायता अपेक्षित होती है। पर मितव्ययी होनेका यह अर्थ नहीं है कि हम एक मात्र धनको ही सर्वस्व समझने लग जायँ, उसके लिये अनेक प्रकारके कुकर्म्म करें, अगणित मानसिक और शारीरिक कष्ट उठावे और धनको सन्दूकमें बन्द करके उसका परोपकारगुण नष्ट करें। जो धनवान् अपने धनका सदुपयोग करना जानते हैं, वे बड़े बड़े

महात्माओं, विद्वानो और राजनीतिज्ञोंसे संसारका उपकार करनेमे किसी तरह कम नहीं कहे जा सकते ।

व्यापारियो और शारीरिक परिश्रम करके धन संग्रह करनेवालोको सैर तमाशे और चैन करनेका ध्यान भी छोड़ देना चाहिये । जो लोग दूकानदार वनना चाहते हो उन्हें इस वातका अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि शौकीनी और दूकानदारीका वड़ा भारी वैर है और दूकान वही चल सकता है जो सव तरहसे अपना पित्ता मारकर सारा दिन दूकान पर वैठ सके । जो दूकानदार यह समझकर कि आजकाल वाजार मन्दा है, अपनी दूकान वन्द करके सैर तमाशोमे चला जाता है, जो जरासे आलसके कारण या थोड़ीसी बूँदावॉदी देखकर ही अपनी दूकान नहीं खोलता वह कदापि उन्नति नहीं कर सकता । आजकल चढ़ा-ऊपरीका ही जमाना है; हर एक रोजगार और पेशेमे लोग वढ़ते जा रहे हैं । ऐसी दशामें जो मनुष्य और लोगोसे सव वातोमे जहाँतक अधिक वढ़ा चढ़ा रहेगा वहीं उतना अधिक सफलमनोरथ भी होगा । जिन लोगोनें आजसे कुछ वर्ष पूर्व ही व्यापारमे अच्छा नाम और धन उपार्जित किया था उन्हें भी इस समय पहलेकी तरह अपना कारोबार चलानेमें कुछ कठिनाई हो रही है; बिलकुल नये व्यापारियोके लिए इस कठिनताका वहुत अधिक वढ़ जाना तो वहुत ही स्वाभाविक है । अतः विना यथेष्ट अध्यवसाय और आत्मनिग्रहके फ़लप्राप्तिकी आशा रखना दुराशा मात्र है ।

चौथा अध्याय।

भाग्य और कठिनाइयाँ।
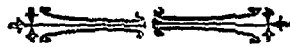
भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियोंके मतसे भाग्यकी व्याख्या—हिन्दुओंके भाग्यका विस्तार और महत्त्व—भाग्यका सफलताके साथ सम्बन्ध—भाग्य सापेक्ष है—भाग्य और दैव—दैव-वादियोंकी भूल—क्या भाग्यकी कल्पना एकदम निरर्थक है? भाग्यसम्बन्धी भ्रमात्मक धारणा—भाग्यका मनुष्यमात्रके साथ सम्बन्ध—इस सम्बन्धका स्वरूप—कर्म्मका अवश्यम्भावी फल—संचित प्रारब्ध, क्रियमाण और भावी—सबकी दोहरी व्याख्या—प्रकृति और भाग्य—संसारके अधिकांश व्यापारियोंका वास्तविक दुर्भाग्य—देश, काल और समाज आदिका भाग्यसे सम्बन्ध—उद्योगकी प्रधानता—शक्तिवृद्धिके उदाहरण—समयकी दुहाई देना बिलकुल व्यर्थ है—वास्तवमें समय क्या है—चढ़ाऊपरी और लाग डॉट—बढ़नेवाली कठिनाइयोंका स्वरूप—नौकरी और व्यापारकी कठिनाइयाँ—कठिनाइयोंका उत्तरोत्तर बढ़ना अनिवार्य्य है—कठिनाइयोंको तुच्छ समझनेसे ही सफलता हो सकती है।

हमें विश्वास है कि हमारे पाठक इस समय तक यह बात भलीभाँति समझ गये होंगे कि लोग जो अपनी रुचिके अनुकूल कोई उत्तम कार्य्य हाथमें लेते हैं और उसकी कठिनाइयोंकी कुछ भी परवा न करके अपनी सारी शक्तियोंसे उसीमें निरन्तर लगे रहते है उन्हें अपने प्रयत्नके अनुसार फल अवश्य मिलता है। यदि मनुष्य ईमानदार हो, किफायती हो, मिलनसार हो और किसीकी अशुभ कामना न करता हो तो उसकी सफलताका मार्ग तो सरल हो ही जाता है, साथ ही

अन्य अनेक दृष्टियोंसे भी उसका अस्तित्व समाजके लिये हितकर होता है। यद्यपि वहुतसे अंशोमे सफलताके स्थूल और मूल सिद्धान्त यही हैं तथापि वहुतसे लोक इसे स्वीकार नहीं करते और अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ करते हैं। इन आपत्ति करनेवाले लोगोके सम्बन्धमे सवसे पहले यह वात अवश्य समझ रखनी चाहिये कि उनमें अभी तक सफ-लता प्राप्त करनेकी योग्यता नहीं आई है। जो मनुष्य वास्तवमे कर्म्म-ण्य होता है उसे अपने कामोसे इतनी छुट्टी ही नही मिलती कि वह इस प्रकारकी आपत्तियॉ करता फिरे। रहे आपत्तियाँ करनेवाले लोग; और यह पुस्तक प्राय: ऐसे ही लोगोंके लाभके लिये लिखी भी गई है। ऐसी अवस्थामे नित्यप्रति होनेवाली आपत्तियोपर भी थोड़ा बहुत विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

इन आपत्ति करनेवालेको हम, सुभीतेके लिये दो भागोमे वाटेंगे। एक तो वे जो सब वातोमे भाग्यको ही प्रधान मानते है। और " भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न पौरुपम् " ही जिसका मूल सिद्धान्त है। यद्यपि इस प्रकारके भाग्यवादी सभी देशोंमे होते है तथापि भारतवर्ष उनका प्रधान अड्डा है। भारतवासियोका तत्सम्बन्धी संस्कार बहुत ही पुराना प्रवल और पुष्ट है और उसके विपयमे जवान हिलानेका जल्दी किसीको साहस ही नही होता। हम लोग तो ' दाने दाने पर मोहर ' माननेवाले है; हमे पौरुप और उद्योगसे क्या काम ? जो हमारे भाग्यमे वदा है वह हमे किसी न किसी प्रकार अवश्य मिलेगा और जो हमारी किस्मतमें नहीं है उसके लिये लाख सिर पटकनेसे भी कुछ न होगा। दूसरा दल ऐसे लोगोंका है जो भाग्य वाग्य तो कुछ भी नहीं मानते, पर जमानेकी उन्हे बड़ी भारी शिकायत है। संसार दिन पर दिन कठिन होता जाता है, वह अव साधारण लोगोंके निर्वाहके योग्य नही रह गया, कठिनाइयाँ और

झंझटे दिन पर दिन बढ़ती है। आजकलके जमानेमें कुछ कर दिखलाना हँसी खेल नहीं है, इत्यादि धारणाएँ उनमे ऐसी दृढ हो गई है कि उन्हें हाथ पैर हिलाने ही नहीं देतीं। इस प्रकरणमे केवल इसी बात पर विचार किया जायगा कि इन दोनो पक्षोंका कथन कहाँ तक ठीक है और हमारे नित्यप्रतिके व्यवहारोमे उनका कहाँतक उपयोग हो सकता है। अच्छा, पहले भाग्यवादियोंको ही लीजिये।

भाग्यके वास्तविक स्वरूप पर विचार करनेसे पहले भिन्न भिन्न धर्म्मानुयायियोसे मतसे उसकी व्याख्या कर देना आवश्यक जान पड़ता है। सर्व साधारणका विश्वास है कि मनुष्यको संसारमे जितने सुख-दुःख मिलते हैं अथवा उसके द्वारा जो अच्छे या बुरे काम होते हैं उन पर मनुष्यका कोई अधिकार नहीं होता; उन सबकी योजना पहलेसे ही हुई रहती है। केवल यही नहीं, बल्कि प्रत्येक सुख दुःख और अच्छे बुरे काय्योंके समय और स्थान आदिका भी पहलेसे ही निर्णय हो जाता है। इसलिये यदि किसी मनुष्यको अपने व्यापारमें कुछ आर्थिक हानि उठानी पड़े, किसीकी गौ या भैस खरीदनेके दस ही पाँच दिन बाद मर जाय, किसीको कहींसे पड़ा या गड़ा हुआ धन मिल जाय, तो वह केवल अपने अपने भाग्यका फल समझा जाता है। यहाँ तक कि भूख-प्यास या रास्ता चलनेमें ठोकर भी भाग्यके ही कारण लगती है और ताश या शतरंजमें हार जीत भी उसीके कारण होती है! यह तो हुई सर्व साधारणकी बात; अब भिन्न भिन्न धर्म्मवालोंको लीजिये। हिन्दुओ और बौद्धोंका यह विश्वास है कि मनुष्यके सुख-दुःख आदि उसके पूर्वजन्मके अच्छे या बुरे कृत्योपर निर्भर करते है। सृष्टि अनन्त कालसे है और उसमे अबतक प्रत्येक प्राणीके असंख्य जन्म हो चुके है। एक जन्म-

में मनुष्य जो कुछ करता है उसका फल वह एक या अधिक जन्मोंमें भोगता है और उन्हीं किये हुए कर्म्मोंका फल भोगनेके लिये उसे बार बार जन्म लेना पड़ता है । क्रिस्तान, मुसलमान और यहूदी आदि यद्यपि पुनर्जन्म नहीं मानते और उनका विश्वास है कि मरनेके उपरान्त सब जीवात्माएँ एक निश्चित काल—प्रलय, सृष्टिके अन्त या हश्र आदि—तक ज्योकी त्यो पड़ी रहती हैं और उनका न्याय वह समय आनेपर ईश्वर द्वारा होगा; तथापि उनका यह विश्वास है कि परमेश्वर ही सब-प्राणियोके सुख:दु:खादिका पहलेसे निश्चय कर देता है । क्रिस्तानों, मुसलमानो और यहूदियो आदिका यह भी विश्वास है कि भाग्य-चक्र केवल मनुष्योके साथ है; बौद्ध लोग मनुष्यो पशुओ और पक्षियों तकको भाग्य-सूत्रसे बँधा हुआ मानते है और हिन्दुओके मतसे मनुष्य पशु, पक्षी और जड़ पदार्थ सभीके साथ भाग्य लगा हुआ है । सबोके मतसे भाग्य पर मनुष्यका कोई अधिकार नहीं है; मनुष्य केवल मिट्टीका पुतला है; उसे या तो पूर्वजन्मके कृत्योके अनुसार या ईश्वरकी योजनाके अनुसार संसारमे सब काम करने पड़ते है । मुसलमानो और ईसाइयोके भाग्यकी अपेक्षा बौद्धोके भाग्यकी और बौद्धोंके भाग्यकी अपेक्षा हिन्दुओके भाग्यकी प्रबलता और महत्ता अधिक है ।

अब प्रश्न यह है कि इन सब बातोमे सत्यता कहाँ तक है ? क्या मनुष्यके सब कार्य्य पूर्णरूपसे भाग्य पर ही अवलम्बित है ? अथवा उनका भाग्यसे आंशिक सम्बन्ध है ? अथवा भाग्य कोई चीज ही नही है ? पर सब प्रश्नोका उत्तर देनेसे पहले सौभाग्य और दुर्भाग्य पर भी थोड़ासा विचार कर लेना आवश्यक है । सम्पत्ति, अधिकार, रूप, बल और बुद्धि मनुष्यके लिये सुखप्रद है और इन्हींको लोग सौभाग्यके चिह्न समझते हैं । इसके विरुद्ध, दरिद्रता, पराधीनता,

कुरूपता, निर्बलता और मूर्खता आदि बातें दुर्भाग्य-सूचक मानी जाती है। यदि कभी कोई मनुष्य अपने प्रयत्न आदिके कारण भी धनवान्, बलवान् या बुद्धिमान् हो जाय तो वह भाग्यवान् ही समझा जाता है। पर विचारनेकी बात यह है कि यदि किसी मनुष्यने गेहूँ बोए और उसके खेतमें गेहूँ ही उगे तो उसमें भाग्यका क्या निहोरा है? हाँ, यदि गेहूँके बदले मोतीके दाने लगे तो अवश्य ही उसका सौभाग्य है; और यदि छोटी छोटी कंकड़ियाँ लगें तो अवश्य ही बोनेवालेका दुर्भाग्य है। यदि कोई राजकुमार अपने पिताकी गद्दी पर बैठे (यह बात दूसरी है कि राजकुमार होना भी भाग्याधीन ही है) तो उसमें उसकी भाग्य-शालिता काहेकी? वह तो उसके लिये स्वाभाविक ही है। हाँ, यदि किसी चरवाहेके लड़केको भेड़ बकरियाँ चराते समय कोई राजा खेत परसे अपने साथ ले जाकर अपना दत्तक बना ले और सारा राज्य उसे दे दे तो वह अवश्य परम भाग्यवान् है।

किसी राजाके निःसन्तान मर जानेपर उसका उत्तराधिकारी बनानेके लिये उसका बहुत ही निकटस्थ सम्बन्धी और साथ ही योग्यता आदिके विचारसे उपयुक्त पात्र ढूँढ़ा जाता है। ऐसी दशामे भाग्यका क्या सम्बन्ध? हाँ, यदि किस्से कहानियोकी तरह यह निश्चय किया जाय कि प्रातःकाल नगरका द्वार खोलनेके समय जो मनुष्य सबसे पहले नगरमें प्रवेश करता हुआ मिलेगा उसीको राज्य दिया जायगा तो अवश्य ही राज्य पानेवाला सौभाग्यशाली समझा जायगा। एक बार लन्दनमें एक बहुत ही दरिद्र और अपने आपको परम अभागा समझनेवाले युवकने ट्रामवेसे गिरी हुई एक बुढ़ियाको उठवाकर अस्पताल पहुँचवा दिया था और उसे अपना नाम और पता भी बतला दिया था। इस घटनाके दो वर्ष बाद उसे सूचना मिली कि वह बुढ़िया मर गई

और उसे अपनी कई लाख पाउंडकी सम्पत्ति दे गई। अब यह सम्पत्ति उसे भाग्यवश मिली अथवा मनुष्यकी स्वाभाविक सहृदयता और सहानुभूतिके कारण ? यदि यह कहा जाय कि भाग्यहीने उससे उस बुढ़ियाको उठवाकर अस्पताल तक पहुँचवाया तब तो सारा बखेड़ा ही तै हो जाता है। पर वास्तवमे यह कोई बात नहीं है; और इस सबन्धमें अधिक बाते आगे चलकर कही जायँगी। यहाँ यही मानना होगा कि उस मनुष्यको अपने परिश्रमका पुरस्कार मिला। यदि वह उस बुढ़ियाको किसी पुलिसवालेके हवाले कर देता जैसा कि अक्सर ऐसे अवसरो पर लोग कर सकते अथवा करते है, तो उसे क्या मिलता ? भाग्यकी वास्तविक परीक्षा तो उस समय होती जब कि वह बुढ़िया अपने हाथमें एक डाइरेक्टरी लेकर बैठ जाती और यह निश्चय कर लेती कि इसका कहींसे कोई पृष्ठ खोलते ही जिस मनुष्यके नाम पर मेरी नजर सबसे पहले पड़ेगी उसीको मै अपनी सारी सम्पत्ति दूँगी।

भाग्य-सम्बन्धी प्रश्नका एक और अंग है। अपनी अपनी परिस्थिति के अनुसार ही सौभाग्य और दुर्भाग्य माना जाता है। यदि एक एक पैसा माँगनेवाले भिखमंगेको कहींसे एक रुपया मिल जाय तो वह अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हैं। पर वही रुपया यदि किसी राजे-महाराजेको नजर किया जाय तो उस पर उसकी आँख ही नहीं ठहरती। बल्कि बहुत सम्भव है कि एक रुपया नजर करनेके कारण वह अपना अपमान समझे और नजर करनेवालेसे रुष्ट हो जाय। जो चीज पाकर एक मनुष्य अपने आपको धन्य समझता है वही दूसरेके लिये बहुत ही तुच्छ है। इससे यही सिद्ध होता है कि भाग्य सापेक्षिक है। भाग्यका मूल्य और महत्त्व उसी समय है जब कि या तो वह मान लिया जाय और या उसकी तुलना किसी दूसरेके भाग्यसे की

जाय। यदि दिनकी तुलना वरससे की जाय तो दिन कुछ भी नहीं है और यदि पल या क्षणसे उसकी तुलना की जाय तो वह वहुत भारी रहेगा। स्वयं उसकी अधिकता या अल्पता वास्तवमें कोई चीज नहीं है; वह केवल सापेक्षिक है। इसी प्रकार दुर्भाग्य या सौभाग्यका भी कोई वास्तविक अर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। यह युक्ति चाहे वहुत अधिक प्रबल न हो पर तो भी इसमें कुछ सार अवश्य है। संसारमें जितने काम होते हैं उनका कारण बिना जाने या खोजे ही, सवकी बाग केवल भाग्यके हाथमें थमा देना और अपनी उचित और अनुचित सभी इच्छाओंकी पूर्तिकोही सौभाग्य समझ लेना मूर्खताके सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

भाग्यका दूसरा नाम दैव है और दैवका अर्थ ईश्वर है। कुछ लोग भाग्यसे ईश्वरका अभिप्राय लेते हैं और अपने सब कामोंको ईश्वरीय प्रेरणाका फल समझते हैं। इसे मनुष्यकी मूर्खताका एक प्रवल प्रमाण ही समझना चाहिये। जो ईश्वर परम न्यायशाली, सत्यता और सात्विकताकी पूर्ण खानि और समस्त गुणोंका आधार समझा जाता है, उसीको अपने सारे दुराचारों और कुकर्मोंका विधायक और प्रेरक समझना या बतलाना अपने दुष्कृत्योंके समर्थनके प्रयत्नके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। यदि सचमुच ही ऐसा कोई ईश्वर हो जो अपने सिरजे हुए प्राणियोंको परम निन्दनीय और नीच कामोंमें प्रवृत्त करता हो तो स्वयं वह ईश्वर उन प्राणियोंसे कहीं अधिक पापका भागी है और प्राणियोंके वदले वही घोरतर नरकोंका अधिकारी है। ऐसा ईश्वर न कभी हो सकता है और न है। ईश्वरने यदि हमें केवल अनेक प्रकारकी शक्तियाँ ही दी होतीं और हमें विवेक-शून्य बनाया होता तो अवश्य उक्त कथनकी थोड़ी वहुत पुष्टि हो सकती

थी। पर जब मनुष्यमे विवेक है, वह भला बुरा परख सकता है, इच्छा करने पर बहुतसे अंशोंमे अच्छे और बुरे सभी प्रकारके कृत्य कर सकता है, तब उसका यह बहाना नहीं सुना जा सकता।

संसारमें कुछ लोग ऐसे भी है जो भाग्यका अस्तित्त्व क्षणभर माननेके लिये भी तैयार नहीं हैं। उनका कथन है कि कर्म्मठ मनुष्य प्रयत्न करने पर सब कुछ कर सकता है। संसारकी कोई शक्ति उसे सफल-मनोरथ होनेसे नहीं रोक सकती। इस मतके पोषक एक विद्वान्ने तो यहाँ तक कहा है कि सुअवसरोंके सदुपयोगका नाम ही मूर्खोंने 'सौभाग्य' रख दिया है। उसके कथनानुसार—"जब कोई मनुष्य अपने दुर्भाग्य-का रोना रोता हो तब समझना चाहिये कि अवश्य ही उसमे व्यवस्था, दृढ़ निश्चय, अध्यवसाय और मनोबल आदिकी बड़ी भारी कमी है। जो लोग केवल सौभाग्य और दुर्भाग्यकी ही चर्चा करते है और अपनी भूलों तथा दोषोंको भाग्यके सिर मढ़ते है उनसे हमें जरा भी आशा न रखनी चाहिये। कविके कथनानुसार प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें प्रायः लहरें उठा करती है; पर उन लहरोंसे लाभ उठाकर सौभाग्य–शिखर तक पहुँचना मनुष्यका ही काम है। हम यह तो नहीं कह सकते कि परिस्थिति और साधनोंका सांसारिक कार्य्यों पर कहाँतक प्रभाव होता है; तथापि इसमें सन्देह नहीं कि किसी दृढ़ मनुष्यको उनके कारण कदाचित् ही दबना पड़ता है। केवल दुर्बल, अकर्मण्य और अविचारी ही उनसे परास्त हो सकते है।"

किसी अँगरेजी नाटकके एक पात्रने एक अवसर पर कहा है—"मैं छोटे मोटे कारणोसे निराश नहीं हुआ हूँ। मैने सब पापड़ बेले हैं पर अन्तमें मुझे विफल-मनोरथ ही होना पड़ा है। मनुष्य जितने प्रकारके काम कर सकता है, वह सब मैने किये हैं, पर फलसिद्धि

किसीमें नहीं हुई। × × × × × × × ×·× मैने पुस्तकें बेचनेका काम आरम्भ किया तो लोगोंने पढ़ना छोड़ दिया। अगर मै कसाईका काम करूँ तो मुझे निश्चय है कि लोग मांस खाना छोड़ देंगे।" इस कथनकी हँसी उड़ानेके लिये उक्त विद्वान्ने लार्ड लिटनके 'मनी' (Money) नामक नाटकका वह पात्र सामने ला खड़ा किया है। जिसने एक अवसर पर कहा था--"यदि मै टोपियाँ बनानेका काम शुरू करूँ तो दुनियामे सब लड़के विना सिरके ही पैदा होने लग जायँ।" उसकी समझमें बहुतसे कामोंमें भूल करने, मूर्खता, उपयुक्त काममें हाथ न लगाने, निरन्तर परिश्रम न करने और आत्मनिग्रही न होनेके कारण ही किसी मनुष्यको निरन्तर विफलता हो सकती है। प्रत्येक मनुष्यको, चाहे जल्दी और चाहे देरसे, सुअवसर अवश्य मिल सकता है और सफलमनोरथ वही होता है जो उससे लाभ उठाना जानता है। भाग्यके समर्थनमें अच्छे अच्छे विद्वानोंने अबतक जो कुछ कहा है उसका किसी न किसी युक्तिसे थोड़ा बहुत खंडन करके वह विद्वान् कहता है कि युवकोंको सौभाग्य और दुर्भाग्यके अनावश्यक सिद्धान्त समझाना मानों उन्हें बाहुबल और मस्तिष्क पर अवलम्बित रहनेसे विमुख करना है।—"दो मनुष्य एक ही परिणाम निकालनेके लिये एक ही उपाय करते हैं। उनमेंसे एकको फल-सिद्धि होती है और दूसरेको नहीं; और इसी लिये हम लोग एकको दूसरेसे अधिक भाग्यवान् समझते है। पर वास्तवमें इस भेदका कारण यह है कि विफल होनेवालेने उस उपायका ठीक ठीक प्रयोग नहीं किया। + + + + + सबसे अधिक तेज चलनेवाला ही दौड़में नहीं जीत सकता और न सदा सबल ही युद्धमें विजय प्राप्त करता है। बल्कि जो मनुष्य अपनी तेजी या बलका ठीक ठीक उपयोग करता है, वही जीतता है।"

यदि उक्त विद्वान् युवकोंको अपने बाहुबल और मस्तिष्कपर निर्भर करनेके लिये ही सौभाग्य और दुर्भाग्यका अस्तित्व मिटाना चाहता हो तो उसका यह उद्देश्य बहुतसे अंशोंमें प्रशंसनीय ही हो सकता है; पर सौभाग्य और दुर्भाग्यका अस्तित्व ही एक दमसे नष्ट करनेका प्रयत्न समर्थित नहीं हो सकता। यदि यह बात मान भी ली जाय कि मुहम्मद साहब बहुत सोच समझकर ऐसी गुफामे घुसे थे जो बड़े ही एकान्तमे थी—(और जहाँ कदाचित् तुरन्त मकड़ीके जाला लगा देनेकी भी सम्भावना थी !)—और यह बात भी स्वीकार कर ली जाय कि उनका पीछा करनेवालोंने जरा जल्दबाजी की और मकड़ीके जालेके धोखेमें आकर वह गुफा नहीं ढूँढ़ी तो भी भाग्यका समूल नाश नहीं हो सकता। संसारमें नित्य ऐसी अनेक घटनाएँ हुआ करती है जो भाग्यके अतिरिक्त और किसी चीजके साथ सम्बद्ध हो ही नहीं सकतीं। यदि किसी बड़े अपराधीके साथ आकृति मिलनेके कारण ही पुलिस किसी भले मानुसको साल दो साल तंग करे तो क्या उक्त विद्वान्‌के कथनानुसार यही समझना होगा कि उस मनुष्यमे “ व्यवस्था, दृढनिश्चय, अध्यवसाय और मनोबल आदिकी बड़ी भारी कमी थी ” ? अथवा यदि कोई पागल किसी महाजनके मकानमें आग लगाकर उसका सर्वस्व नष्ट कर दे तो क्या हम यह कहेगे कि उस महाजनने अपना मकान बनवानेके लिये उपयुक्त स्थान चुननेमे भूल की थी ? महाजन पर अपने मकानके चारों ओर पहरेदार बैठाने और लापरवाही करनेका दोष लगाना कहाँ तक युक्तिसंगत है, यह विज्ञ पाठक स्वयं ही समझ लें। अभी हालमें इटलीमे बड़ा भारी भूकम्प आया था जिसमे हजारों आदमी मर गये थे और हजारोंका सर्वस्व नष्ट हो गया था। पर क्या केवल इसी लिये इटलीनिवासी महामूर्ख समझ लिये जायँ ! अवश्य ही उनके पूर्वजोने

अपने रहनेके लिये स्थान चुननेमे विचारसे कुछ कम काम लिया था और अपने लिये ऐसा देश पसन्द किया था जहाँ ज्वालामुखी पर्वतोका प्रकोप अधिक था; पर अब उस मूर्खताका क्या प्रतीकार है ? वहाँवाले अपना देश तो छोड़ ही न देगे, तब क्या सिद्धान्त निकाला जाय ?

आशा है कि इस समय तक पाठक यह बात भली भाँति समझ गये होगे कि दोनों पक्षोंने अपना अपना सिद्धान्त पुष्ट करनेके लिये चरम सीमा तक उसकी खींचातानी की है और प्रायः लोग ऐसा ही करते भी हैं। मनुष्यमें पक्षपातका कुछ न कुछ अंश अवश्य होता है। बड़ा भारी न्यायशील और विचारवान् भी अपने अनुचित पक्षका उस समय तक समर्थन करता जाता है, जब तक कि उसे अपनी भूल मालूम न हो जाय। पर संसार असंख्य विचित्रताओंका आगार है। इसमें अच्छे बुरे, उचित अनुचित, उलटे सीधे सभी तरहके सिद्धान्त पुष्ट करनेवाली अनगिनत घटनाएँ होती रहती है और उन्हीं घटनाओको लेकर दोनों प्रकारके सिद्धान्तोका खण्डन भी होता है और मण्डन भी। इसलिये न तो केवल भाग्य ही मनुष्यका सर्वस्व समझा जा सकता है और न कोई उद्योग अथवा इसी प्रकारका और कोई गुण ही उसके सब काम चला सकता है। पर इतना अवश्य मानना होगा कि उद्योगका जितना अधिक महत्त्व बतलाया जाता है वह यदि पूरा पूरा नहीं तो बहुत से अंशोमें अवश्य सत्य है। और भाग्यको दी जानेवाली प्रधानता आवश्यकता और औचित्यसे अवश्य अधिक है। आगे चलकर हम ये ही बाते सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे।

केवल भाग्य पर निर्भर रहनेवाले लोग भी प्रायः बहुत कष्ट भोगते देखे जाते हैं और दिन-रात उद्योग और परिश्रम करनेवाले भी। यह कहा जा सकता है कि वे भाग्यवादी अभागे होगे और उद्योगी

और परिश्रमी लोगोने अपने उद्योग और परिश्रमका ठीक उपयोग न किया होगा। पर ये बातें केवल कहनेकी ही है, इनकी पुष्टिमें किसी प्रकारका प्रमाण उपस्थित नहीं किया जा सकता। यह बात हम अवश्य मानते है कि भाग्य पर निर्भर रहनेवाले सौ मनुष्योमेसे निन्नानवे मनुष्य अपनी भ्रमात्मक कल्पनाके ही कारण सदा अनेक प्रकारके कष्ट भोगते रहते है। भाग्यका आवश्यकतासे अधिक कल्पित महत्त्व संसारके कल्याणका वहुत कुछ वाधक है और उसके कारण मनुष्य अपना सारा कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व भूल जाता है। चोर जब चोरी करता हुआ पकड़ा जाय तब वह कह सकता है कि हमारे भाग्यमे यही वदा था और वालक यदि अपना पाठ याद न करे तो वह भी इस प्रकारकी वाते कह सकता है। पर यदि न्यायाधीश या शिक्षक इन वातोको मान ले तो परिणाम क्या होगा? दोनो ही दण्ड पानेके योग्य अवश्य है। चाहे न्यायाधीश और शिक्षक भले ही यह भी कह दें कि दण्डित होना भी तुम लोगोके भाग्यमे ही वदा है। यदि हम केवल भाग्य पर निर्भर रहेगे तो हमारे अविचारी, कुकर्म्मी और कर्त्तव्यविमुख हो जानेमें वहुत ही थोड़ी रुकावटें रह जायँगी। यदि किसी समय हम पर कोई संकट आ पडेगा तो उसके निवारणका प्रयत्न तो दूर रहा, हम यही समझ लेगे कि अरे, अभी हमारे भाग्यमें न जाने और क्या क्या वदा है। इस प्रकार मानो हम अपने आपको कठिनाइयोका उपयुक्त पात्र वना लेते है और एकके वाद एक नई नई विपत्तियोको निमन्त्रण देने लगते है। जब कभी हमें कोई अच्छा अवसर मिलता है तव उसे भी हम अपने आपको अभागा समझकर ही छोड़ देते है और इस प्रकार अपना बनता हुआ काम विगाड़ लेते है। यदि नाव डूवनेके समय हम अपनी रक्षा-

का प्रयत्न न करके चुपचाप बैठे रहें और यह सोचने लगें कि जो कुछ भाग्यमें बदा होगा सो होगा, तो कैसी बहार हो ! भाग्यकी इतनी अधिक कल्पना मनुष्यका उत्साह भंग कर देती है और इसी लिये वह घातक और त्याज्य है। सन्तोषका विषय है कि ज्यों ज्यों ज्ञानका प्रकाश फैलता जाता है त्यों त्यों लोगोंकी इस सम्बन्धकी यह अनुचित धारणा भी कम होती जाती है और उनका भ्रम दूर होता जाता है। पर इन सब बातोंका यह तात्पर्य्य नहीं है कि भाग्यकी कल्पना एक-दम भ्रमात्मक है और संसारमें भाग्य या उसके सदृश और चीज कोई है ही नहीं। अतिवृष्टि या अनावृष्टिका फल अच्छेसे अच्छे परि-श्रमी कृषकको भी भोगना ही पड़ता है। उसके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि उसने अपने परिश्रमका ठीक ठीक उपयोग नहीं किया। रेल लड़ जानेके कारण मरनेवाले यात्रियों पर यह दोष नहीं लगाया जा सकता कि यात्रा आरम्भ करनेसे पहले उन्होंने विचारसे काम नहीं लिया था। लाटरीमें अथवा इसी प्रकारके और किसी काक-तालीय न्यायसे अनायास ही बहुतसा धन पानेवालेकी बुद्धिमत्ता या योग्यताकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। भाग्य वास्तवमें कुछ न कुछ अवश्य है जिसे लोगोंने अपनी अज्ञानताके कारण बहुत अधिक महत्त्व दे दिया है। ग्रहण अवश्य लगता है, पर उसका कारण राहु और केतु नहीं है। उसका कारण छाया है। जिस प्रकार छायाको बढ़ाकर, अथवा अज्ञानतासे राहु और केतुकी कल्पना की गई उसी प्रकार वास्तविक भाग्यको बढ़ाकर, अथवा अज्ञानतासे वह स्वरूप दिया है जिसमें हम उसे सर्वसाधारण पर अपना आतंक जमाये हुए देखते हैं। अब हमें देखना यह है कि वह वास्तविक भाग्य क्या है।

भाग्यका मनुष्य मात्रके साथ कुछ न कुछ सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध अनेक प्रकारका है। अपने कर्म्मोंका फल, निसर्ग, परिस्थिति

सामाजिक अवस्था, सभ्यता, संगति आदि सभी भाग्यका एक न एक अंग है। अन्य मतवालोंकी अपेक्षा बौद्धों और हिन्दुओंका भाग्य-सम्बन्धी सिद्धान्त कुछ अधिक सार्थक जान पड़ता है। यदि लोग उसका ठीक ठीक अभिप्राय न समझकर अपनी अपनी तरफ खींचातानी करें तो इससे सिद्धान्तमें कोई त्रुटि नहीं पड़ सकती। जड़ और निर्जीव पदार्थोंके भाग्य और अभाग्यका विचार बहुत ही सूक्ष्म है और वह विषय बड़े बड़े धर्म्मशास्त्रियों और दिग्गज पंडितोंके लिये छोड़ देना ही अधिक उपयुक्त है। इस पुस्तकका विषय तो पशु-पक्षियोंसे भी कोई सम्बन्ध नहीं रखता; इसलिये हमें केवल मानव-भाग्य पर ही थोड़ा सा विचार करनेकी आवश्यकता जान पड़ती है। कहा है कि-"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम्।" मनुष्य जितने अच्छे और बुरे काम करता है उन सबका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। भोग कभी नष्ट नहीं होता। यह सिद्धान्त अटल है और इसे प्रत्येक देश और कालके लोग किसी न किसी रूपमें अवश्य मानते है। आप कह सकते हैं कि संसारमें बहुतसे आदमी ऐसे मिलेंगे जो अनेक प्रकारके पाप और कुकर्म्म करके बड़े सुखसे इस संसारसे चल बसते है। उनके कर्म्मका भोग कहाँ जाता है? सबसे पहले तो उस पापी और कुकर्म्मीको ही अपने कियेका फल भोगना पड़ता है, किसी न किसी प्रकारसे दंडित होना पड़ता हैं। और यदि नहीं तो मनुने कहा है—

" यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पुत्रेषु नप्तृषु।
न त्वेवं तु कृतो धर्म्मः कर्तुर्भवति निष्फलः।"

(मनुस्मृति अ० ४, श्लो० १७३।)

अर्थात्—" यदि मनुष्य स्वयं अपने अधर्म्मका फल न भोगे तो उसका पुत्र भोगेगा। यदि पुत्र न भोग सका तो पोता और पोता भी न भोग

सका तो नाती भोगेगा। अधर्म्म कभी निष्फल नहीं जाता।" और यही बात सांसारिक व्यवहारोंमें नित्यप्रति देखनेमें भी आती है। पिता यदि ऋण छोड़ जाता है तो पुत्र उसे चुकाता है और पिता यदि सम्पत्ति छोड़ जाता है तो पुत्र उसका भोग करता है। यह सिद्धान्त धर्म्म और अधर्म्म, शुभ और अशुभ कर्म्म सबके लिये समान रूपसे प्रयुक्त होता है।

हिन्दूशास्त्रोंमें जन्म-भेदसे कर्म्म चार प्रकारका माना गया है—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण और भावी। संचितका अर्थ है संग्रह किया हुआ। पुनर्जन्म माननेवालोंके अनुसार 'संचित'' अनेक जन्मोंमें किये हुए हमारे उन शुभ और अशुभ कर्म्मोंका फल है जो हम अभी-तक भोग नहीं सके हैं और जिन्हें भोगनेके लिये हमे बार बार जन्म लेना पड़ता है। प्रारब्ध उस संचितका वह अंग है जो हम किसी एक जन्ममे भोगते है। यहाँ पर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि संचित या प्रारब्धका हमारे समस्त जीवन पर पूरा पूरा अधिकार नहीं है। उसे अधिकार केवल अपनी ही सीमातक है। उस सीमाके बाहर भी हमें अपनी योग्यता और विवेकके अनुसार शुभ और अशुभ सभी कर्म्म करनेका अधिकार है। प्रारब्धके प्रभावसे भिन्न, अपनी योग्यता अथवा विवेकके अनुसार हम संसारमे जो अच्छे या बुरे कार्य्य करते है उन्हींका नाम क्रियमाण है। हमारे इस जन्मके अच्छे 'क्रियमाण'से पूर्वजन्मके बुरे 'संचित'का नाश होगा और बुरे 'क्रियमाण'से अच्छे 'संचित' का। मनुष्यके मरनेपर बचा हुआ 'क्रियमाण' उसके 'संचित' में मिल जाता है और तब उसी संचितके अनु-सार उसका पुनर्जन्म होता है। भावीसे तात्पर्य प्रकृति आदिका है जिसपर हमारा कोई वश नहीं है; पर तो भी जिसका फल हमे

अवश्य भोगना पड़ता है। इसे अधिक स्पष्टरूपसे समझनेके लिये पाठकोंको, अतिवृष्टि या अनावृष्टि और कृषकके सम्बन्धका ध्यान कर लेना चाहिये। पर जो लोग पुनर्जन्म आदि कुछ भी नहीं मानते उनके लिये भी इसका कुछ अर्थ अवश्य होना चाहिये और है। भगवान् मनुके कथनानुसार पिताके कर्म्मोंका फल उसकी भावी सन्तानको अवश्य भोगना पड़ता है और यही नित्य प्रति देखा भी जाता है। अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक गुण और स्वभाव तथा बहुतसे रोग तक पुरुपानुक्रमिक होते हैं। एक मनुष्यका स्थापित किया हुआ राज्य उसकी बहुतसी पीढ़ियाँ भोगती है। ऐसी अवस्थामें इस सिद्धान्तके माननेमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं हो सकती। यदि संचित और प्रारब्धको हम अपने पूर्ण जन्मोंके कियेका फल न मानें तो उन्हें अपने पुरखाओंके कियेका फल मान लेनेसे भी काम चल जायगा। हमारा क्रियमाण जिस पर हमें पूरा पूरा अधिकार है हमारे बुरे संचितको नष्ट कर देगा। हमारे बाप दादा यदि हमें बुरी दशामें छोड़ गये हों तो हम अपने सत्कर्मोंसे अपनी दशा सुधार लेंगे और अगर हमें वपौतीमें अच्छी मान-मर्य्यादा या धन सम्पति मिली हो तो हम उसे अपनी नालायकीसे नष्ट भी कर देंगे। यही नहीं बल्कि हम अपने अच्छे या बुरे कर्म्मोंका फल यदि भविष्य जन्मके लिये नहीं तो कमसे कम भविष्य सन्तानके भोगनेके लिये अवश्य छोड़ जायँगे। इस सम्बन्धमें यहाँ तक तो हमें पूरा पूरा अधिकार है ही; अब रही भावी, सो उस पर हमें अधिकार तो बिलकुल नहीं है, पर मनुष्य उससे बचनेके बहुत से उपाय निकाल सकता और निकालता है। इसके सिवा हमारे साथ उसका लगाव भी बहुत कम है और बराबर दिन पर दिन, सभ्यताकी वृद्धिके साथ साथ घटता जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि यदि गेहूँ बोनेसे गेहूँ उगे तो उसमें सौभाग्यकी कोई बात नहीं है। मनुष्यने परिश्रम किया है, उसका फल उसे अवश्य मिलना चाहिये। हाँ अगर सूखा पड़ने या बाढ़ आनेके कारण फसल नष्ट हो जाय तो अवश्य दुर्भाग्य समझना चाहिये। वास्तविक भाग्य वही है जिसका विरोध करना हमारी शक्तिसे एकदम बाहर हो। यदि खेतिहर खूब गहरी जोताई करे, अच्छेसे अच्छे बीज बोए और अपनी ओरसे परिश्रम करनेमें कोई बात उठा न रखे तो भी उसका अच्छी फसल काटना प्रकृति या ऋतुकी कृपा पर ही निर्भर करता है। पर मनुष्यको ईश्वरने कहाँतक शक्ति दी है और उसे अपने कर्म्मोंके लिये कहाँतक स्वतन्त्र बना दिया है इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि वह दिनपर दिन अपने आपको इस भावी, प्रकृति या भाग्य आदिके चंगुलसे निकालनेके लिये नये नये प्रयत्न करता और यथासाध्य सफल भी होता है। सभी देशोंमे अनावृष्टिके कारण सफल बिलकुल नहीं होती, अकाल पड़ जाता है। पर अभी हालमें अमेरिकावालोने बिना जलके खेती (Dry Farming) का जो तरीका निकाला है उससे अनावृष्टिके कारण अच्छी फसल होनेमें कभी कोई बाधा नहीं पड़ सकती। जिस स्थान पर जरा भी वर्षा न होती हो वहाँ भी इस तरीकेसे बहुत अच्छी खेती की जा सकती है और यथेष्ट धान्य उत्पन्न किया जा सकता है। आजसे पाँच सौ वर्ष पहले समुद्र-यात्रा जितना अधिक भाग्य पर निर्भर करती थी उतना आज नहीं करती है। उस समयकी नाव साधारण तूफानोंमें डूब जाती थी पर आजकलके जहाज बड़े बड़े तूफानोंकी जरा भी परवा न करके बड़े आनन्दसे बराबर चलते रहते है। इतने दिनोंमें भाग्यका महत्त्व इतना कम हो गया! और यह सब

किसकी कृपासे हुआ ? एक मात्र उद्योगकी कृपासे ! पर क्या किसी बिसाती, बजाज, दलाल या किसी और पेशेवरका भी प्रकृतिसे उतना ही लगाव है जितना खेतिहरों और समुद्री यात्रा करनेवालोंका ? कदापि नहीं । बात यह है कि हम ज्यों ज्यों प्रकृतिके प्रभावसे दूर होते जाते हैं त्यों त्यों हमारी भाग्यकी अधीनता भी कम होती जाती है । गरमी, बरसात और जाड़ेका प्रभाव खेतिहरपर तो अवश्य पड़ता है पर कोयलेकी खानके मालिकका उससे उतना या वैसा सम्बन्ध नहीं है । तो भी प्रकृतिके साथ उसका कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है । किसीने कोई जमीन लेकर अच्छी तरह उसकी जाँच कराई और जब उसे मालूम हो गया कि यहाँ बहुत अधिक और बढ़िया कोयला निकलेगा तब उसने बहुतसा रुपया खर्च करके काम लगाया । यदि तीन चार महीने बाद उसे मालूम हुआ कि अभी तक ठीक सूत्र नहीं मिला और उसके लिये फिरसे बहुतसा धन और समय लगानेकी आवश्यकता होगी तो वह अवश्य अभागा है । इस सम्बन्धमें कुछ न कुछ बातें अवश्य ऐसी हैं जिन पर मनुष्यका कोई अधिकार नहीं है । यदि सूत्र पानेमें उसने अपने ओरसे कोई त्रुटि या भूल न की हो तो अवश्य ही उसके भाग्य (और वह भी केवल भावीसम्बन्धी) का दोष है । पर जब उसे पहले ही पहल ठीक सूत्र मिल गया और अच्छी तरह कोयला निकलने लगा तब वह प्रकृतिके प्रभावसे बाहर निकल आया । अब कोयलेका व्यापार करके लाभ उठाना उसकी एक मात्र योग्यता पर निर्भर है । अपने दुर्भाग्यकी शिकायत करनेका उसे कोई अधिकार नहीं है । यह सब सिद्धान्त रोजगार और पेशोंके लिये हैं; अफीम और रूईके सट्टे या इसी प्रकारके किसी और जूएके लिये नहीं । उनमें तो मनुष्य जानबूझकर अपना

धन जोखिममें डालनेकी मूर्खता करता है। उसमें होनेवाली हानि न तो दुर्भाग्यके कारण होती है और न प्राप्ति सौभाग्यके कारण। लोग धन गँवा बैठते है और कभी कभी संयोगसे पा भी लेते है। वास्तवमें रूई या अफीमकी दरके अंकोंसे हमारा किसी प्रकारका सम्पर्क नहीं है और न कौड़ीके चित या पट पड़नेसे कोई लगाव है।

प्रायः लोगोंकी यह एक साधारणा धारणा है कि जो मनुष्य भाग्यवान् होता है उसीको अच्छे अच्छे अवसर भी मिलते है और वही उनसे यथेष्ट लाभ भी उठाता है; अभागे लोगोंको तो कभी किसी बातका अवसर ही नहीं मिलता। इसी लिये "रुपयेको रुपया खींचता है।" "मायाको माया मिले दोनों हाथ पसार।" "भाग्यवान्का हल भूत जोतता है।" आदि आदि अनेक कहावतें भी बन गई है। यदि यह बात मान भी ली जाय तो भी इसे हम नियम मात्र कह सकते हैं, भाग्यका इसके साथ सम्बन्ध प्रायः नहींके समान है। यदि किसी योग्य मनुष्यको कोई अच्छा अवसर हाथ आ जाय तो हमे यही समझना चाहिये कि "ईश्वर उन्हीकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते है।" क्योंकि प्रायः यही देखा जाता है कि धब किसी अयोग्य या अभागेको कोई अच्छा अवसर मिलता है तब वह उससे लाभ उठानेके लिये कुछ भी प्रयत्न नही करता।

मुख्य प्रश्न यह है कि "व्यापारो और पेशोका ऐसी घटनाओं अथवा बाधाओंसे जिनपर मनुष्यका कोई अधिकार नहीं है, कहाँतक सम्बन्ध है?" हमारी समझमें—बहुत ही कम। नये कामोंमें होनेवाली और दिनपर दिन बढ़नेवाली कठिनाइयोंका महत्त्व हम नहीं घटाते; पर साथ ही यह कहनेमें भी हम कोई हानि नही समझते कि एक दृढ़-निश्चयी, परिश्रमी और योग्य मनुष्य वे कठिनाइयाँ बहुत सरलतासे दूर कर सकता है। यदि ये

वातें स्वीकार कर ली जायँ कि कुछ व्यापारों और पेशोमें औरोंकी अपेक्षा अधिक लाभ होता है, बेईमान और धूर्त्त लोग प्रायः भले आदमियोकी अपेक्षा अधिक सुखसे रहते हुए देखे जाते है और कुछ लोगोको अनायास ही उत्तम सन्धियाँ मिल जाती है तोभी हम वातोंकी यथार्थता तक नहीं पँहुँचते। सफलता उन्हीं लोगोको होती है जो उच्चाशय, सदाचारी और योग्य हों। कोई दुराचारी कभी वास्तविक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता, अयोग्य कभी अच्छे पद पर स्थिर नहीं रह सकता और नीच प्रकृतिका मनुष्य कभी यशस्वी नहीं हो सकता। यही सव प्रकृतिके साधारण नियम हैं। जो लोग यह नियम नहीं जानते वे ही भाग्यके सर्वस्व समझने लगते है; पर सूक्ष्म विचारसे यह पता लग जाता है कि नियमोकी जितनी अधिक प्रधानता है उतनी भाग्यकी नहीं है। जो काम सच्चे दिल, मेहनत और ईमानदारीसे किया जाय वह जरूर पूरा होगा उसमे दुर्भाग्यकी प्रायः कोई कला न लगेगी।

लाल वंसीधरने देखा कि इस शहरमे गोटे पट्टेकी कोई अच्छी दूकान नहीं है, इस लिये उन्होने चौकेमें मौकेकी एक दूकान लेकर गोटे पट्टेका काम शुरू किया। उनकी जान पहिचान वहुतसे लोगोंसे थी और उनके यहाँ चीज भी अच्छी और किफायत मिलती थी। इस लिये सालभरमे ही उनकी दूकान खूब चल निकली और दस वरसमें उन्होने एक लाख रुपया पैदा कर लिया। "क्या वात है, लाला वंसीधर वड़े भाग्यवान् है।" यो कहनेको तो सव लोग कह देंगे कि हाँ लाला वंसीधर वड़े भाग्यवान् है। पर लालासाहवने गोटेकी दूकानका अभाव देखकर चौकमें मौकेकी दूकान ली, इसके लिये उनकी सूझ और समझदारीकी तारीफ करनेकी तकलीफ कोई नहीं उठांता। अच्छे अच्छे लोगोंसे जान पहचान करनेमे कितनी लियाकतकी जरूरत है, यह

समझनेकी फुरसत लोगोंको कहाँ ? लाला बंसीधरको भाग्यवान् बतलाकर ही सब लोग छुट्टी पा जाते है। यही दशा और लोगोंकी भी समझिये। जिसने अपने कार्य्यमें सफलता प्राप्त कर ली उसीको सब लोग भाग्यवान् कहने लगे और जिसका मनोरथ सफल न हुआ वह तो अभागा है ही।

पर यदि इस प्रकारकी सब घटनाओं पर भली भाँति विचार किया जाय तो जान पड़ेगा कि सफलता और विफलता दोनोंअधिकतर मनुष्यकी योग्यता और क्षमता पर ही निर्भर करती हैं। भाग्यसे उनका सम्बन्ध अपेक्षाकृत बहुत ही कम है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ लोग वास्तवमें बड़े भाग्यवान् होते है और उनके द्वारा उनकी योग्यता और सामर्थ्यसे बाहर बहुतसे काम आप ही आप और अनायास हो जाते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग ऐसे भी होते है जिनमें योग्यता, कार्य्यपटुता, दूरदर्शिता, आदि सभी गुण औरोंकी अपेक्षा अधिक होते हैं पर तो भी चाहे संयोगवश ही सही, प्राय: उन्हें विफलता ही होती है। पर ऐसे भाग्यवान् या अभागे संसारमें बहुत ही थोड़े है और जबतक प्रत्येक मनुष्य किसी काममें विचारपूर्वक अपनी सारी शक्तियाँ न लगा दे तबतक उसे अपने आपको अभागोमे कदापि न गिनना चाहिये। बल्कि उचित तो यह है कि मनुष्य आपको सदा भाग्यवान् ही समझे। इससे उसमें उत्साह और प्रसन्नता आदिकी वृद्धि होगी और धीरे धीरे वह वास्तवमें भाग्यवान् भी हो जायगा। एक विद्वान्का यह कहना बहुतसे अंशोमे अक्षरश: सत्य है कि ईश्वरके साथ मनुष्यका इतना निकट सम्बन्ध है कि वह जैसा बननेकी प्रबल इच्छा करता है, बहुधा उसे ईश्वर वैसा ही बना भी देता है।

देश, काल और समाज आदिका भी मनुष्यके भाग्यसे थोड़ा बहुत सम्बन्ध है। जिस देशमें सब प्रकारके पदार्थ उत्पन्न होते वा बनते

हो उस देशके लोगोंको सुखी होनेका अधिक अवसर मिलता है। यद्यपि आजकी बढ़ती हुई सभ्यता इस कथनके विरुद्ध प्रमाण उपस्थित करती है और जिन देशोमे कुछ भी उत्पन्न नहीं होता वहाँके लोग बाहरसे कच्चा माल मँगाकर उनसे तरह तरहकी चीजे बनाते और उनसे करोड़ो रुपये पैदा करते है, अपने देशको सम्पन्न, सभ्य और सुखी बनाते है और विद्या, विज्ञान और कलासम्बन्धी नये नये आविष्कार करके अपनी गणना बड़े बड़े भाग्यवानोंमे कराते है, तथापि विचारपूर्वक देखिये तो आप समझ लेगे कि उनकी उस उन्नतिका मुख्य कारण उनका अध्यवसाय और परिश्रम ही है। एक विद्वान्ने इस सम्बन्धमें जोर देकर यहाँ तक कहा है कि प्राचीन कालमें वे ही देश सम्पन्न समझे जाते थे जहाँ प्राकृतिक सुविधाएँ अन्य देशोंकी अपेक्षा अधिक होती थीं, पर आजकल वही देश सम्पन्न समझा जाता है जहाँके लोग अधिक परिश्रमी और कर्म्मठ हो। जिस देशमे सब तरहकी चीजे उत्पन्न होती है, वहाँके लोग यदि केवल कच्चा माल उत्पन्न करके निश्चिन्त बैठ रहे तो उनके अभागे रह जानेमे क्या सन्देह है? पर यदि वे ही लोग अन्य उन्नत जातियोकी भाँति परिश्रम और उद्योग करें तो अवश्य ही वे अपनी प्राकृतिक सुविधाओंके कारण औरोकी अपेक्षा शीघ्र और सहजमे सुखी, सम्पन्न और उन्नत हो सकते हैं, और उस दशामे सारा संसार उन्हींको सबसे अधिक भाग्यवान् समझेगा।

कालका भी भाग्यके साथ कुछ ऐसा ही सम्बन्ध है। संसारमें कभी तो वह समय रहता है जब कि मनुष्य थोड़े परिश्रमसे ही सब कुछ कर लेता है और कभी ऐसा समय आ जाता है जब कि बहुत अधिक परिश्रम करनेपर भी पेट भरनेतकको पूरा अनाज नही मिलता।

इस सम्बन्धमे अधिक विचार इस प्रकरणके अन्तमें कठिनाइयोंका वर्णन करते समय प्रकट किये गये हैं। मनुष्य पर संगतिका जो प्रभाव पड़ता है उसका वर्णन यथास्थान पहले ही किया जा चुका है। मनुष्यका जैसे लोगोंके साथ सम्बन्ध रहता है वह उन्हींकी तरहका हो जाता है, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। अनेक शूद्र पढ़ लिख कर अच्छे अच्छे पदों पर पहुँचते हुए देखे जाते है। हवशियोने अमेरिका-मे यूरोपियनोंके साथ रहकर जो उन्नति की है वह वर्णनातीत है। उन्हींके दूसरे भाई और सजातीय अब तक आफ्रिकामे बैठकर अपने भाग्यको ही रो रहे है।

ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यो इस बातके अधिकाधिक प्रमाण मिलते जाते हैं कि संसारके सब कामोंमें उद्योग ही अधिक प्रधान है, भाग्यका अधिकार वहुत ही संकुचित है। उसका यह परिमित अधिकार भी बहुतसे अंशोंमें सृष्टिके कुछ विशिष्ट नियमों पर ही अवलंबित है और उनमे किसी प्रकारका परिवर्तन करना मानवशक्ति-के बाहर है। न तो खेतिहर कभी अपने इच्छानुसार पानी बरसा सकता है और न प्रत्येक वालक जन्म लेते ही मखमलकी गद्दीयों पर सुलाया जा सकता है। हाँ, पानी न वरसने पर खेतिहर स्वयं अपनी शक्तिभर सिचाई कर सकता है और द्ररिद्रके घर जन्म लेनेवाला बालक बड़ा होकर धन कमा सकता है। पर धनवान्के लड़केको वाल्यावस्थामे ही जितनी अधिक बातें जाननेका अवसर अनायास ही मिल सकता है उतना गरीबके लड़केको नहीं मिल सकता। इस त्रुटि पर गरीबके लड़केका इतना ही अधिकार है कि वह उसे अपने बाहुबलसे पूरा करे। रोगी और दुर्बल माता-पितासे उत्पन्न होनेवाला बालक भी रोगी और दुर्बल ही होगा। यदि वह विकलांग हुआ तब तो निरुपाय ही हो जायगा

और नही तो नीरोग और सबल बननेके लिये उसे बहुत अधिक प्रयत्न करना पड़ेगा। यदि बालक किसी पुरुषानुक्रमिक रोगसे पीड़ित हो तो उसका सारा उत्तरदायित्त्व उसके पुरुषाओं पर ही हो सकता है। क्योंकि अधिकांश रोग दुर्व्यसनों और दुर्गुणोंके कारण ही होते हैं। यदि ऐसे लोग सन्तान उत्पन्न न करें तो अवश्य ही संसारमे अभागोंकी बहुत ही थोड़ी संख्या दिखाई पड़े। इसी लिये मनु आदि स्मृतिकारोने अनेक रोगोंसे पीड़ित मनुष्योके विवाहकी आज्ञा नहीं दी है। बहुत से लोग ऐसे भी होते है जिनके माता-पितामें तो कोई दोप नहीं होता पर जो स्वयं अपने कुकर्म्मोंसे शरीरमे इतने दोष और रोग उत्पन्न कर लेते है जितने किसी दूपित माता-पितासे उत्पन्न बालकोमे भी नहीं हो सकते। पर यह बात भी निर्विवाद सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्यमें स्वयं अपनी उन्नति करनेकी जितनी अधिक शक्ति है, उसे उन्नत बनानेकी प्रायः उतनी ही शक्ति उसके माता-पितामें भी है। यदि किसी अनिवार्य्य दोप या अभावके कारण हम स्वयं भाग्यशाली नहीं बन सकते तो प्रयत्न करने पर कमसे कम अपनी सन्तानके भाग्य अवश्य ही अच्छे बना सकते है।

यह बात भी निर्विवाद प्रमाणित ही है कि प्रत्येक शक्ति प्रयत्न करके बढ़ाई जा सकती है। वाग्भटने कहा है कि यदि मनुष्यमें कर्तृत्व शक्ति अधिक हो तो वह दैवसे भी आगे बढ़ सकता है। साधारण मनुष्य मैदानोंमें भी मील दो मीलसे अधिक दूरकी चीजे नहीं देख सकता; पर दूरबीने उसे चौगुनी दूर तककी चीजे दिखला सकती है। मनुष्यकी आवाज एक मील भी नहीं जा सकती पर तारो द्वारा, और यहाँ तक कि विना तारके भी, हजारो मील तक समाचार पहुँचते है। अभी हालमे अमेरिकाके राष्ट्रपति विलसनने राजनगर वाशिंगटनमे बैठे

बैठे केवल एक बटन दबा कर हजारों मील दूरकी पनामा प्रदर्शिनी खोल दी थी। यदि सच पूछिये तो मनुष्योंने प्रयत्नद्वारा प्रकारान्तरसे अपनी देखने और सुननेकी शक्तियाँ ही बढ़ाई हैं। फोनोग्राफ़ हमारी बोलनेकी बढ़ी हुई शक्ति है और रेल चलनेकी। कलें बना कर मनुष्यने अपने काम करनेकी शक्ति बढ़ाई है और आकाश-यान बना कर तो मानों उसने अपने लिए नई शक्ति ही गढ़ ली है। यह सब काम उद्योगियोंके ही है, केवल भाग्य पर निर्भर रहेनेवाले मनुष्योंने आज तक कभी कोई ऐसा काम नहीं किया। भाग्य किसी मनुष्यको अच्छी या बुरी स्थितिमें उत्पन्न ही कर सकता है पर उद्योग और कर्म्म बहुधा उस स्थितिको बदल देनेमें भी समर्थ होते है।

यहाँ तक तो हुआ भाग्य-सम्बन्धी प्रश्न पर विचार; अब दिन पर दिन बढ़नेवाली कठिनाइयोंको लीजिये। कुछ लोग तो ऐसे हैं जिनका यह विश्वास है कि पहले सतयुग था; उस समयके लोग बहुत सुखी होते थे। आजकालका कलियुग मनुष्योंको केवल दुःख देनेके लिये ही है। ऐसे लोगोंसे हम यह कहना चाहते हैं कि बहुत प्राचीन कालमें देशोंकी जनसंख्या बहुत ही परिमित होती थी। लोगोंकी आवश्यकताएँ भी बहुत कम होती थीं और आजकलकी तरह इतनी लाग-डाँट और चढ़ाऊपरी न होनेके कारण बहुत ही थोड़े परिश्रमसे लोग अपनी सब आवश्यकताएँ पूरी कर लेते थे। पर आजकलकी स्थिति उससे बहुत भिन्न है। जन-संख्या नित्यप्रति बढ़ती जा रही है और मनुष्योंकी आवश्यकताएँ आदि भी उसी मानसे बराबर बढ़ रही हैं। ऐसी अवस्थामें हमे यह देखना चाहिये कि सारा संसार क्या कर रहा है? यदि हमारी तरह सारा संसार दुखी और दरिद्र हो तब तो कलियुग अवश्य बहुत प्रबल है और हम लोगोंका उस पर कोई वश नही है।

पर जब हम देखते है कि सारी जातियाँ उन्नतिकी दौड़में सबसे आगे बढ़नेका प्रयत्न कर रही है और केवल हम ही भाग्यके भरोसे जहाँके तहाँ पड़े हुए है तब हमे अपनी ही भूल दिखलाई पड़ने लगती है। यदि कलियुग वास्तवमे दुःखदायी है तो उसका प्रभाव सब देशों पर समानरूपसे होना चाहिये; केवल भारतवासियोंसे उसका कोई खास वैर नहीं है। यदि वास्तवमें उसका कोई बुरा प्रभाव हो तो भी तो हमें उसका फल उतना ही भोगना चाहिये जितना कि और जातियाँ भोगती है। यदि हम और जातियोंसे अधिक दुखी और पिछड़े हुए हों तो उसमे दोष हमारी अकर्मण्यताका है; युग या कालका नहीं।

पर सौभाग्यवश इस कोटिके लोग केवल भारतमें ही है और बहुत कम हैं; और अधिक सन्तोषका विषय यह है कि जो हैं वे संख्यामें बराबर कम होते जा रहे है। शेष संसारके लोग यह सिद्धान्त नहीं मानते। उनमेंसे बहुतसे लोग यही कहते है कि दिनपर दिन जमाना बड़ा टेढ़ा होता जाता है; सभी व्यवसायोंमे कठिनाइयाँ बढ़ती जाती हैं और साधारण योग्यताके आदमियोंके लिये जीविका निर्वाह करना यदि असम्भव नहीं तो परम दुष्कर अवश्य है। सबसे पहली बात तो यह है कि जो लोग इस तरहकी शिकायत करते हुए देखे जायँ उन्हें अकर्म्मण्य और अयोग्य समझना चाहिये। जमानेकी शिकायतका इसके सिवा और कोई मतलब ही नहीं हो सकता। किसी कविने कहा है—“लोग कहते है बदलता है जमाना अक्सर। मर्द वह है जो जमानेको बदल देते हैं॥” यद्यपि इस कथनकी सत्यतामे किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता, तो भी इतना अवश्य है कि प्रत्येक मनुष्य ऐसा ‘मर्द’ नहीं हो सकता जो जमाना बदल दे। जो लोग वास्तवमे मर्द है, उन्होंने अवश्य

जमानेका रुख पलट दिया है। भगवान् श्रीकृष्ण, महात्मा बुद्ध और जगद्गुरु शंकराचार्यसे लेकर गुरु नानक, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, राजा राममोहनराय, जास्टिस महादेव गोविद रानडे और स्वामी दयानन्द सरस्वती तक सब इसी कोटिके है। इन सबने अपने अपने समयमें देशकी किसी न किसी प्रकारकी दुर्दशा देखी, जमानेको उलटे रास्ते जाते हुए देखा। वे 'मर्द' थे; उन्होंने अपने बाहुबलसे जमानेका रुख पलट दिया, लोगोंको उलटे रास्तेसे हटाकर सीधे रास्ते पर लगाया। पर ऐसा करनेके लिए असाधारण विद्या, बुद्धि, आत्मबल, सच्चरित्रता, सहनशीलता और दृढ़ता आदिकी आवश्यकता होती है। यद्यपि साधारण योग्यताके लोग भी प्रयत्न करे तो बहुतसे अंशोंमें उक्त गुणोंसे भूषित हो सकते है; पर सब लोगोंके लिए वैसा करना बहुत कठिन है। हाँ, किसी न किसी अंशमें ऐसे महात्माओका अनुकरण करके ही लोग बहुत कुछ काम कर सकते है।

जो लोग समयकी शिकायत करते हैं उन्हें सबसे पहले यह जानना चाहिए कि समय क्या चीज है। जिस समय अधिकांश मनुष्य अज्ञान रहते थे, उस समयको लोग 'अज्ञानकाल' कहते हैं। इस प्रकार लोग अपनी अज्ञानताका दोष काल पर डालना चाहते हैं! पर वास्तवमें समय स्वयं कोई चीज नहीं है। हम उसे जैसा बनाते और समझते है वह वैसा ही हो जाता है। मनुष्य जब जैसे जैसे कार्य्य करता है, समय तब वैसे ही वैसे रूप भी धारण करता है। यदि समाज सुशिक्षित, विद्वान्, सभ्य और सम्पन्न हो तो समय अच्छा समझा जाता है और यदि लोग, अपढ़, मूर्ख, गँवार और दरिद्र हों तो समय खराब समझा जाता है। ऐसी दशामे आज कलके समयको खराब कहनेका कोई कारण नहीं जान पड़ता। कुछ लोग कहा करते हैं कि दिन पर

दिन सव बातोंमे कठिनाइयाँ वढ़ती जाती हैं, पर उन्हें कभी इस बातका ध्यान नहीं होता कि कठिनाइयोंके बढ़नेके साथ ही साथ उन्हें दूर करनेके साधन भी वढ़ते जाते हैं। दूसरी बात यह है कि ज्यों ज्यों संसार अधिक उन्नत और सभ्य होता जाता है त्यो त्यों उसकी कठिनाइयाँ भी अनिवार्य्य रूपसे वढ़ती ही जाती है और यही कारण है कि जगत् चाहे पहलेसे वहुत अधिक सम्पन्न और विद्वान् भले ही हो, पर सुखी वहुत ही कम है। पर ऐसी दशामें केवल समयकी कठिनाइयोका ध्यान करके ही बैठे रहना मानो संसारकी दौड़मे सबके पीछे रह जाना और ईश्वरप्रदत्त शक्तियोका दुरुपयोग करना है। किसी कार्य्यकी कठिनताका महत्त्व और भय उसीके लिए है जो उसको दूर नहीं कर सकता। जिस मनुष्यमे कठिनता दूर करनेकी शक्ति होती है वह न तो उसको कोई चीज समझता है और न कभी विफल-मनोरथ ही होता है। कठिनतासे घबराना ही अयोग्यता और दुर्वलताका प्रधान चिह्न है।

यह वात सभी लोग स्वीकार करते है कि संसारमें दिनपर दिन कठिनाइयॉ वढ़ती जाती है। सब तरहके कामोमे चढ़ा-ऊपरी और लाग-डॉट वढ़ती जाती है। यदि एक दूकानदार कोई चीज एक रुपयेपर वेचता है तो दूसरा वही चीज पन्द्रह आनेपर वेचनेका प्रयत्न करता है। यदि एक मनुष्य किसी दूकानका किराया १०) रु० दे सकता है तो दूसरा उसी दूकानको १२) या १५) पर लेना चाहता है। यदि एक मनुष्य किसी दफ्तरमे ३०) पर काम करनेके लिए उद्यत होता है तो दूसरा २५) पर ही वह काम करनेके लिए मुँह बाए तैयार रहता और यहाँ तक कि खुशामदे करता, सिफारिशें लाता और फेरे लगाता है। ज्यों ज्यो जनसंख्या वढ़ती जाती है त्यो त्यो यह लाग-

डाँट भी बढ़ती जाती है और इसका बढ़ना अनिवार्य्य है। उसे रोकना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है।

अभी हालमें एक स्थानीय विद्यालयमें एक पण्डितकी जगह खाली हुई थी। दो तीन अखबारोंमें विज्ञापन दिये गये। दो सप्ताहोंके अन्दर प्राय ७०० प्रार्थनापत्र आ गये! प्रार्थनापत्र भेजनेवालोंमें योग्य और अयोग्य सभी प्रकारके लोग थे; पर अधिक संख्या योग्योंकी ही थी। यदि उनमेंसे ४०० प्रार्थी भी योग्य हों तो समझनेकी बात है, कि प्रत्येक प्रार्थीके लिये ४०० में से केवल एक अवसर था। यदि केवल २० ही प्रार्थी होते तो बहुत ही थोड़ी चढ़ा-ऊपरीकी जगह बाकी रहती। जगह तो केवल एक ही थी और उस पर नियुक्त भी केवल एक ही आदमी हुआ; शेष सब लोगोंको निराश होना पड़ा। प्रार्थियोंसे कुछ लोग तो ऐसे थे जिनकी योग्यता अपेक्षाकृत बहुत कम थी और जो वेतन अधिक चाहते थे; और कुछ लोग ऐसे भी थे अधिक योग्य और विद्वान् हो कर भी थोड़े वेतन पर काम करनेके लिये तैयार थे। थोड़ी योग्यतावाले लोगोंका अधिक वेतन चाहना और अन्तमें निराश होना तो ठीक ही है पर बहुतसे योग्य और विद्वान् लोगोंको भी उस अवसर पर निराश ही होना पड़ा; पर सभी निराश होनेवालोंमें, पण्डित नियुक्त करनेवाले अधिकारीकी दृष्टिमें कोई न कोई दोष अवश्य था। पर वास्तवमें दोषी कोई नहीं ठहराया जा सकता। दोप केवल अयोग्यताका ही हो सकता है, और किसीका नहीं। निराश होनेवालोंने अवश्य ही प्रार्थनापत्र भेजनेके समय इस बातका ध्यान नहीं रक्खा था कि सफल होनेका कहाँ तक अवसर मिल सकता है और वे प्रार्थनापत्र भेजनेके अतिरिक्त और कौन कौनसे उचित उपाय कर सकते हैं। साधारण अथवा थोड़ी योग्यतावालोंके लिये अकृतकार्य्य होना बहुत ही स्वाभाविक है; पर जो

वास्तवमें योग्य होता है उसकी सफलतामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं रह जाता। योग्यता, सदाचार और अध्यवसाय मनुष्यको शिखर तक पहुँचा कर ही छोड़ते हैं। ऐसी दशामे जैसा कि ऊपर कहा गया है, दोष योग्यताके अभावका ही होता है, और किसीका नही। एक स्थानसे निराश होनेवाला मनुष्य किसी दूसरे स्थान पर और वहाँसे भी निराश होनेवाला तीसरे स्थानपर अपनी योग्यताके अनुसार काम पा ही लेगा।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो योग्य मनुष्योंके लिये पहलेकी अपेक्षा आजकल बहुत अधिक और अच्छा अवसर है। यह बात ठीक है कि पदोंकी संख्या उतनी शीघ्रतासे नहीं बढ़ती जितनी शीघ्रतासे पद-प्रार्थियोंकी संख्या बढ़ती है, पर यह अवश्य है कि सब लोग योग्य मनुष्य चाहते हैं। अयोग्योंको लेकर कोई करेगा ही क्या? बात यह है कि दिन पर दिन बढ़नेवाले कामोके लिये अधिक बुद्धिमानोकी आवश्यकता होती है। लोगोंकी बुद्धि और योग्यता तो उतनी शीघ्रतासे बढ़ती नहीं, उसका मूल्य अवश्य बढ़ता जाता है। आजकलकी स्थिति योग्य मनुष्योके लिये बहुत अच्छी है। पर असल बात यह है कि अधिक वेतनकी नौकरियाँ बहुत थोड़े आदमियोंको मिलती है; अधिकांश लोगोंको थोड़े वेतन पर ही काम करना पड़ता है। और अधिक वेतनका पद पानेके लिये अनेक प्रकारके प्रयत्न करने पड़ते है; वह प्रयत्न करनेकी योग्यता जिनमे होती है वे ही सफलता प्राप्त करते है और दूसरे लोग मुहँ देखते रह जाते है। तात्पर्य्य यह कि दिन पर दिन सफलता प्राप्त करनेके लिये, योग्यता-सम्पादन करनेकी आवश्यकता बराबर बढ़ती जाती है और इसीका बढ़ना सबको अभीष्ट भी है। और आरामसे पड़े-पड़े जमानेकी शिकायत करनेकी अपेक्षा अपनी योग्यता बढ़ाकर काममें लग जाना ही अधिक उत्तम भी है।

जो दशा नौकरीकी है, प्रायः वही दशा व्यापारकी भी है। बड़े बड़े कोठीवालों और थोक बेचनेवालोंके कारण साधारण और छोटे मोटे दूकानदारोंको दो प्रकारसे हानियाँ सहनी पड़ती हैं। यदि साधारण मनुष्य पहलेसे ही दूकान करता हो तो उसे बड़े बड़े कोठीवालोंसे मुकाबला करनेमें बड़ी कठिनता होती है, और यदि वह नई दूकान खोलना चाहे तो उसे अपेक्षाकृत अधिक मूलधन लगाना पड़ता है। यदि मनुष्य केवल दाल रोटी और अपने गुजारेकी ही इच्छा रखता हो तो उसे व्यापारमें बहुत अधिक सिर खपानेकी आवश्यकता नहीं होती, थोड़े परिश्रमसे ही उसका काम चल सकता है। पर यदि उसका उद्देश्य अधिक-विस्तृत हो तो उसे दिन रात कठिन परिश्रम करना पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि साधारण आदमियोंको छोटे छोटे नगरोंमें ही अधिक उत्तम अवसर मिलते हैं। बड़े बड़े नगरोंमें उन लोगोंको भारी व्यापारियोंका मुकाबिला करना पड़ता है। दिन पर दिन अधिक मूलधन-की आवश्यकता बढ़ती जाती है। जिस शहरमें आजसे वीस वरस पहले एक हजार रुपयेमें कपड़ेकी अच्छी दूकान हो सकती थी वहीं आज दूकान खोलनेमें आठ दस हजार रुपये तककी जरूरत होती है। यदि कोई मनुष्य किसी प्रकारके व्यापारके लिये बहुत अधिक उपयुक्त हो, तो भी उसे मूलधनवाली कठिनता दूर करनेके लिये बहुत परिश्रम करना पड़ेगा। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि कठिनता दिन पर दिन बढ़ती जाती है। यही कठिनता दूर करनेके लिये सहयोगसमिति (Co-operation Society) और लिमिटेड कम्पनी (Limited Company) आदिकी योजना की गई है। जो लोग अपनी मानसिक शक्तियोंद्वारा कोई बड़ा काम कर सकते हों, पर धनके अभावके कारण हाथ पर हाथ रक्खे बैठे हों वे सहजमें मूलधनवालोंकी सहायतासे अपनी योग्यता-

का सदुपयोग करके अपना और अपने देशवासियोका बहुत कुछ उपकार कर सकते है। बात यह है कि प्रत्येक मनुष्यकी शक्ति विकसित होकर एक ऐसी सीमा तक पहुँच जाती है जहाँ कि उस मनुष्यके लिये अकेले कोई काम करना असम्भव हो जाता है और उसे दूसरेके सहारे और सहायताकी आवश्यकता पडती है। यह प्रथा सदासे चली आई है। सम्राट् चन्द्रगुप्त कुछ कम वीर नहीं था, पर विना बुद्धिमान् चाणक्यकी सहायताके सम्राट् बननेमे वह कदापि समर्थ न होता।

इस चढ़ाऊपरीके अतिरिक्त और भी कुछ कारण ऐसे हैं जिनसे सफलता प्राप्त करना दिनपर दिन और भी कठिन होता जाता है। संसारमें बहुतसे कार्य्योंकी इतनी अधिक उन्नति हो चुकी है कि अब उनसे और अधिक उन्नति करना प्रायः असम्भव सा हो गया है। पर यह बात उन्हीं देशोंके लिये है जो सभ्यता और उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुँचे हुए हैं। भारतमें अभी प्रायः सभी बातोंमें उन्नतिके लिये बहुत बड़ा मैदान पड़ा हुआ है। सभ्य देशोमे साहित्य और समाचारपत्रों आदिकी यथेष्ट उन्नति हो चुकी है और अब शीघ्र उसमे किसी विशेष परिवर्त्तनकी सम्भावना नहीं जान पड़ती। प्राचीन भारतीय ऋषि भी आध्यात्मिक विषयोंका इतना मनन कर गये हैं कि अब उसमें और आगे बढ़ना असम्भव और निरर्थक ही है। व्रजभाषाके प्राचीन कवियोंने भी शृंगार रसकी कविताओं और नायिकाभेद आदिको उसी सीमा तक पहुँचा दिया है। रामचरितमानस और सूरसागरसे बढ़कर भक्तिरसकी कविता तभी हो सकती है जब कि स्वयं तुलसीदास और सूरदास फिरसे जन्म ले। हाँ, नई नई बातो और प्रणालियोंका आविष्कार अवश्य किया जा सकता है और उनमें उन्नतिकी भी बहुत जगह है। इस नवीनताके सम्बन्धमे कुछ विचार आगेके प्रकरणमें प्रकट किये गये है।

विद्वानोंका मत है कि संसारने अब तक जितनी उन्नति की है, वह भविष्यमें होनेवाली उन्नतिके मुकाबलेमें कुछ भी नहीं है। बहुत सम्भव है कि इस समय हम जिन बातोंको पूर्ण समझते हों उनमें आगे चलकर और भी अनेक बड़े बड़े परिवर्त्तन और परिवर्द्धन हो जायँ। जिस समय भापसे चलनेवाला इंजिन निकला था उस समय लोग यही समझते थे कि अब इस सम्बन्धमें आगे बढ़नेका स्थान नहीं रह गया। पर आजकल बिजली और मोटर हर जगह उसका मुकाबला करनेको तैयार है। बात यह है कि जब कोई अच्छी और बढ़िया चीज हाथ आ जाती है तब पुरानी निकम्मी चीज़ोंकी कदर घट जाती है। जिस मनुष्यने पहलेपहल मामूली चिराग बनाया होगा उसकी बुद्धिमत्तामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता। सबसे बड़ी कठिनता पहले उसीने दूर की। उसके बाद लोग उसमें उन्नति करने लगे। आजकल यह उन्नति जिस सीमा तक पहुँच गई है उसका अनुमान केवल एक इसी बातसे किया जा सकता है कि बड़े बड़े लड़ाईके जहाजोंका अन्वेषक-प्रकाश (Search Light) तीस तीस और चालीस चालीस मील तक पहुँचता है और बीस मीलकी दूरीपर उसके प्रकाशमें महीनसे महीन टाइपोंवाली पुस्तक बहुत सरलतासे पढ़ी जा सकती है! इससे अधिक उन्नति करनेके लिये अवश्य ही बहुत अधिक विद्वत्ता, ज्ञान और अनुभवकी आवश्यकता है। यही दशा मामूली छकड़ा गाड़ियोंसे लेकर घंटेमें सत्तर या अस्सी मील तक चलनेवाले भापके इंजिनों और मोटर गाड़ियोंकी समझनी चाहिये। वास्तवमे बात यह है कि प्रत्येक कार्य्यमें कुछ न कुछ कठिनता अवश्य होती है और ज्यों ही वह कठिनता दूर कर दी जाती है त्यों ही लोग आगे बढ़नेका प्रयत्न करने लगते हैं। आगे बढ़नेके इस प्रयत्नमें नई और स्वतंत्र कठिनाइयोंका होना स्वाभाविक ही

है; और वे कठिनाइयाँ पहलेसे बड़ी भी अवश्य ही होंगी । सृष्टिके आदिसे अब तक कठिनाइयाँ बराबर बढ़ती ही आई हैं और प्रलय काल तक बराबर बढ़ती ही जायँगी। एक झंझट या कठिनता दूर करनेके लिये जो काम किया जाता है वह प्रकारान्तरसे अनेक झंझटे और कठिनाइयाँ अवश्य उत्पन्न कर देता है और यह सिलसिला बराबर बढ़ता जाता है ।

जिस दृष्टिसे हमने अब तक कठिनाइयोंका वर्णन किया है उससे यही सिद्ध होता है कि संसारके सब कामोंमे कठिनाइयाँ दिन पर दिन बढ़ती जाती हैं और उनका बढ़ना अनिवार्य्य भी है। जगत् अनन्त कालसे है और उसमे मनुष्य अब तक बहुत अधिक उन्नति कर चुका है । ज्यों ज्यो लोगोंकी विद्या और बुद्धि बढ़ती जाती है त्यो त्यो चढ़ा-ऊपरी भी बराबर बढ़ती जाती है । इसके सिवा जिस मनुष्यका उद्देश्य जितना अधिक उच्च होता है उसे उतनी ही अधिक विद्या, बुद्धि और अनुभव आदिकी आवश्यकता होती है । इस प्रकार वर्तमान कालकी कठिनाइयाँ भूतकालकी अपेक्षा कहीं बढ़-चढ़कर है। और भविष्य कालमें होनेवाली कठिनाइयाँ वर्त्तमान कालकी कठिनाइयोसे भी कहीं बढ़-चढ़कर होंगी । क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है, सभी समझदार इस विषयमे सहमत है कि संसारने अबतक जो उन्नति की है वह भविष्यमें होनेवाली उन्नतिके सामने तुच्छ है । ऐसी दशामे प्रत्येक मनुष्यके लिये उचित और आवश्यक है कि वह अपने आपको भविष्यमे होनेवाली कठिनाइयोका मुकाबला करनेके लिये सदा तैयार रक्खे और इस प्रकारसे संसारकी उन्नतिमें सहायक बने ।

पर इस चित्रका एक और अंग भी है जिस पर यदि विचार न किया जाय तो वह अपूर्ण रहता है। साथ ही उसके बिना मानवजीवनका

कोई मूल्य भी नहीं रह जाता। केवल कठिनाइयाँ देख कर ही हमें किसी कार्य्यको असम्भव न समझ लेना चाहिये। मूल और उपयुक्त सिद्धान्त तो यह है कि प्रत्येक कार्य्यका मूल्य, महत्त्व अथवा यश उसकी कठिनाइयो, अड़चनो और झंझटोके ही कारण है। सफलता न तो पहले दाल भातका कौर था और न अब है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संसारकी बढ़ती हुई कठिनाइयोंके साथ उन कठिनाइयोंको दूर करनेके साधन भी बराबर बढ़ते जाते है। जिन लोगोंने अबतक बहुत सी कठिनाइयाँ बढ़ाई है उन्होंने हमारे लिये अपना ज्ञान और अनुभव आदि भी संग्रह करके रख दिया है जिसके कारण हम बहुत सी पुरानी कठिनाइयोसे अनायास ही बच सकते है। बहुतसे साधनोद्वारा बड़े बड़े और कठिन काम करनेमें ही मानव जीवनका वास्तविक महत्त्व है। सुख और यश प्राप्त करनेके लिये इससे बढ़कर और कौनसी बात हो सकती है? जिनकी शारीरिक अथवा मानसिक शक्तियाँ किसी रोग या दोष-के कारण एकदम खराब हो गई हो, उनकी बात छोड़ दीजिये। दूसरे लोगोंके लिये कभी निराश, हतोत्साह या विफल-मनोरथ होनेका कभी कोई कारण नहीं हो सकता। मनुष्यका मुख्य काम कठिनाइयाँ दूर करना ही है। यदि समुद्र देखकर रामचन्द्र घबरा जाते तो वे सेतु बाँधने और लंका विजय करनेमें कब समर्थ हो सकते थे? और बिना इन कामोके इनका यश ही क्या रह जाता? एक बार नेपोलियनसे किसी-ने कहा था कि फ्रांसीसी सेनाके आगे बढ़नेमें आल्पस पर्वतके कारण ही रुकावट पड़ती है। उसने उत्तर दिया था—"अच्छा, तो अब आल्पस ही न रह जायगा।"

पाँचवाँ अध्याय ।

उपयोगी परामर्श ।

कर्म्मशीलता—अध्यवसाय—योग्यता—प्रसन्नता, शुद्धता और सात्त्विकता—धन—संसारकी आवश्यकता—कहावतें—हिसाब और वहीखाता—स्मरणशक्ति—सफलताके दो मूल मन्त्र—किसी एक विषयके पूर्ण पण्डित बनो—अपने लिए स्वतंत्र सिद्धान्त बनाओ और नवीनता उत्पन्न करो ।

संसारमें दो प्रकारके मनुष्य हुआ करते हैं, एक तो विचारशील और दूसरे कर्म्मशील। इन दोनो श्रेणियोंके मनुष्योंकी संसारको बहुत बड़ी आवश्यकता है। दोनोंमेंसे किसी एकके बिना हमारा काम ही नहीं चल सकता। विचारशीलसे यहाँ हमारा तात्पर्य उन लोगोंसे है जो केवल आध्यात्मिक, प्राकृतिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, औद्योगिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि विषयोंका अनुशीलन करते हो और कर्म्मशीलसे अभिप्राय उन लोगोंसे है जो किसी तरहका रोजगार या पेशा आदि करते हों। विचारशीलतामें यह एक विलक्षण गुण है कि जब वह एक निश्चित सीमासे आगे बढ़ निकलती है तब वह मनुष्यको धन अथवा दूसरे सांसारिक वैभवोंसे उदासीन करके परमार्थी अथवा परोपकारी बना देती है। कर्म्मशीलताका परिणाम इससे बिलकुल उलटा होता है। वह मनुष्यको उत्तरोत्तर धनका उपासक बनाती है और बहुतसे अंशोंमें उसे स्वार्थी बना देती है। यद्यपि संसारके अन्य भागोंके बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिक आदि बहुत कुछ धन और सम्पत्ति बना लेते हैं पर इससे हमारे सिद्धान्तका खंडन नहीं होता। विचारशील मनुष्य चाहे जितना धन संग्रह कर ले, पर उसकी योग्यता आदिका ध्यान रखते हुए आर्थिक दृष्टिसे उसकी सफलता, किसी

कर्म्मशीलकी अपेक्षा बहुत ही कम, प्रायः नहींके समान होती है। कोई ग्रन्थकार उतना अधिक धन नहीं कमा सकता जितना एक ग्रन्थ-प्रकाशक कमा लेता है। यदि विचारक्षेत्रमें काम करनेवाला मनुष्य अपनी योग्यतासे बहुत अधिक धनवान् बन जाय तो समझना होगा कि उसमें विचारशीलताकी अपेक्षा कर्म्मशीलता ही अधिक है। ऐसी दशामें जो लोग धनवान् बनना चाहते हों उन्हें, परमार्थकी अपेक्षा स्वार्थका ही अधिक ध्यान रखना होगा। ऐसे मनुष्योंमें यदि विचार-शीलता भी हो तो सोने और सुगन्धवाली कहावत चरितार्थ होगी।

संसारमें बहुत अधिक संख्या ऐसे ही लोगोंकी है जिनका प्रधान लक्ष्य धन ही होता है। ऐसे लोग यदि नौकरी करना चाहते हों, तो उन्हें विद्यालयोंमे शिक्षा प्राप्त करनेकी आवश्यकता होती है; पर यदि वे व्यापार-की ओर प्रवृत्त हों तो उन्हें शिक्षाकी उतनी अधीक परवा नहीं होती। हमारे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि व्यापारियोंके लिये शिक्षा एकदम अनावश्यक और निरर्थक है। मतलब सिर्फ यही है कि वे बिना कुछ पढ़े-लिखे ही बहुतसे पढ़े लिखोंकी अपेक्षा बहुत धनवान् हो जाते हैं। एन्ट्रेन्स-पास आदमियोंको तो केवल १५—२० रु० महीनेकी नौकरी ही मिलेगी, पर दस्तखत तक न कर सकनेवाला बनिया हजारों रुपयेकी जायदाद बना लेगा। बहुतसे भारतीय अनुभवी वृद्धोंका तो यह दृढ़ विश्वास है कि आजकलके लड़के पढ़लिखकर बाबू तो बन जाते हैं पर रोजगारके कामके वे नहीं रह जाते; और उनका यह विश्वास बहुतसे अंशोमें ठीक भी है। भारतवर्षमें किसी बनिये या बजाजका लड़का पढ़ लिखकर नौकरी ही ढूँढ़ेगा; दूकानपर बैठकर हाथमें तराजू या गज लेने लायक वह नहीं रह जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि यदि वह शिक्षित होकर अपने व्यापारमे लगे तो अच्छी सफलता प्राप्त कर लेगा;

पर कठिनता तो यह है कि उससे व्यापार होगा ही नहीं। इसमे दोप केवल वर्त्तमान शिक्षा-प्रणालीका है जिसका प्रभाव समस्त जगत पर कुछ न कुछ पड़ रहा है। आजकलकी शिक्षामे मनुष्यको कर्म्मशील वनानेकी शक्ति वहुत ही कम है। भिन्न भिन्न विपयोकी शिक्षा पर तो आजकल वहुत जोर दिया जाता है, पर मानसिक शक्तियोंकी वृद्धि और विकास करनेवाले विपयोंकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता यही कारण है कि वहुतसे पढ़े लिखे लोग मुँह ताकते रह जाते हैं और अशिक्षित अपने काममें पूरे होशियार होकर अच्छी सफलता प्राप्त कर लेते है। वहुतसे लोगोंको यह जानकर आश्चर्य्य होगा कि हालमें आस्ट्रेलियामें एक स्थान पर संयोगसे चार गड़रिये एकत्र हुए थे। उन चारोंमेंसे एक तो आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयका, दूसरा कैम्ब्रिज विश्ववि-द्यालयका और तीसरा एक जर्मन विश्वविद्यालयका ग्रेजुएट था। पर चौथा गड़रिया एकदम अशिक्षित था, तथापि उस अशिक्षित गड़रियेने अपने वाहुवलसे वहुत अधिक भेड़ें और वकरियाँ आदि एकत्र की थीं और इस प्रकार वह वहुत धनवान् वन गया था। पर तीनो ग्रेजुएट कोरे ग्रेजुएट रह गये थे। अन्तमें उस अशिक्षित गड़रियेने तीनों ग्रेजुएट गड़रियोंको अपने यहाँ नौकर रख लिया। इसमें सन्देह नहीं कि यदि तीनो शिक्षित गड़रियोंने अपने काम पर पूरा पूरा ध्यान दिया होता तो वे भी उस अशिक्षित गड़रियेकी भाँति सम्पन्न हो जाते। पर नहीं, उनमे कर्म्म-शीलताका अभाव था और इसी लिये वे सफलता नहीं प्राप्त कर सके थे। वात यह है कि प्रत्येक कार्य्यमे सफलता प्राप्त करनेके लिये दूरदर्शिता, वुद्धिमत्ता, कार्य्यपटुता आदिकी आवश्यकता होती है।

यद्यपि इन गुणोंकी प्राप्ति प्रायः अनुभवसे ही होती है तथापि वालकों-को आरम्भसे ही ऐसी शिक्षा देना ठीक नहीं जो उनका अमूल्य समय नष्ट करनेके अतिरिक्त उनके मार्गमें कठिनाइयाँ भी उत्पन्न करे।

यदि समान योग्यता, स्थिति और अवस्थाके दो मनुष्य अलग अलग एक ही प्रकारका व्यापार करें तो उनमेंसे अधिक सफलता उसीको होगी जो सदा इस बातका ध्यान रखेगा कि इस व्यापारसे मेरा प्रधान उद्देश्य द्रव्य प्राप्त करना है। ऐसे मनुष्यको स्वार्थी बनना पड़ेगा। उसकी इस स्वार्थपरताके भ्रमसे लोग चाहे कितना ही बुरा क्यों न समझें, पर जब तक वह ईमानदारी और सचाईके साथ अपने स्वार्थका ध्यान रखेगा, तब तक उसमें कोई वास्तविक बुराई नहीं आ सकती। यदि किसी दूकानदारके पास कुछ पुराना और महँगा खरीदा हुआ माल हो और वह अपने यहाँ आनेवाले सब ग्राहकोंको किसी ऐसे पड़ोसीकी दूकानपर भेजता जाय जिसके यहाँ नया और सस्ता माल हो तो भला पहले दूकानदारको आर्थिक दृष्टिसे क्या लाभ होगा! या तो उसे स्वार्थी बनना पड़ेगा; या हानि सहकर पुराना माल बेचना और नया खरीदना पड़ेगा और या अपनी दूकान बन्द करनी पड़ेगी।

यदि किसी दूकानदारको दो चार दूसरे दूकानदारोंके मुकाबलेमें अपनी दूकान चलानेकी आवश्यकता पड़ी तो उसे अपने व्यर्थके खर्च कम करने पड़ेंगे। दो चार ऐसे नौकरोंको निकालना पड़ेगा जिन्हें वह पहले प्रायः पालन-पोषणके विचारसे ही अपने यहाँ रखे हुए था। संसारके और कामोंमें स्वार्थत्यागकी भले ही बहुत बड़ी आवश्यकता हो; पर व्यापारिक दृष्टिसे वह बड़ा ही घातक होगा। अपनी जाति और देशके लिए स्वार्थ-त्याग करो, पर व्यापारमें जबतक आगे चलकर भारी लाभकी सम्भावना न हो, कभी अपने स्वार्थका ध्यान न छोड़ो। साथ ही यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि बेईमानीसे अपना लाभ करना अपना सर्वस्व नष्ट करनेसे भी बढ़कर बुरा और निन्दनीय है।

\+ + + + +

कर्मशीलताका एक और अंग है जिसके बिना मनुष्यका सफल-मनोरथ होना बहुत ही दुष्कर है। वह अंग है किसी कामको आरम्भ करके बराबर जारी रखना और अन्तमें पूरा करके छोड़ना। इसके लिये विचारशीलताकी भी बहुत आवश्यकता होती है। ऐसे अकर्म्मण्य और निकम्मे नौकर प्रायःसभी जगह निकलेंगे जिन्हें यदि कोई नया और कठिन काम करनेके लिये कहा जाय तो वे बीसियो तरहके बहाने करेंगे, किसी दूसरे मनुष्य या समय पर वह काम टालना चाहेंगे, उसकी उपयोगिता और आवश्यकता आदिके सम्बन्धमे तर्क वितर्क करेंगे और किसी न किसी प्रकार अपना पिंड छुड़ानेका प्रयत्न करेगे। ऐसे लोगोंकी न तो कहीं बहुत अधिक आवश्यकता ही होती है और न उन्हे उन्नति करने का विशेष अवसर ही मिल सकता है। ऐसे लोग यदि विफलमनोरथ होने और अपने दीनावस्थामे पड़े रहनेकी शिकायत करें तो उनकी यह शिकायत कोई समझदार नहीं सुन सकता। उनके रोगकी चिकित्सा स्वयं उन्हींके पास होती है। ऐसे लोगोंके लिये अधिक उत्तम यही है कि वे व्यर्थका रोना छोड़कर अपने आपको काम करनेके योग्य बनावे और तब देखे कि संसार उनका कैसा आदर करता है।

जिस समय अमेरिकाके संयुक्त राज्यों और स्पेनमें युद्ध छिड़ा था उस समय संयुक्त राज्योके राष्ट्रपति मैकिनलेको एक प्रबल दलके नेता जेनरल ग्रेशियाकी सहायताकी आवश्यकता पड़ी थी। पर ग्रेशियाका ठीक ठीक पता किसीको मालूम नहीं था। लोग केवल इतना ही जानते थे कि वह क्यूबा द्वीपकी किसी दुर्गम पहाड़ी पर रहता है। ग्रेशियाके पास न तो रेल जा सकती थी और न तार। राष्ट्रपति बहुत चिन्तित थे। उनसे किसीने कहा कि रोवन नामक एक व्यक्ति ऐसा है जो ग्रेशियाका पता लगाकर आपका पत्र उसतक पहुँचा सकता है। रोवन बुलाया

गया और उसे ग्रेशियाके नामका पत्र दिया गया। पत्र लेकर वह एक नाव पर सवार हुआ और चार दिन बाद क्यूबा द्वीपमें जा पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही वह एक घने जंगलमें गायब हो गया और तीन सप्ताह बाद जंगलमेंसे द्वीपके दूसरे किनारेकी ओर अपना काम करके निकला! किस प्रकार उसने शत्रुके देशमें जाकर अपना काम पूरा किया, यह बतलानेकी यहाँ आवश्यकता नहीं। यहाँ केवल यही कह देना यथेष्ट है कि उसने पत्र हाथमें लेकर यह भी न पूछा कि 'ग्रेशियाका पता क्या है!' अथवा 'वह कहाँ रहता है!' इसे मनुष्यकी योग्यताकी चरम सीमा ही समझनी चाहिये। संसारमे ऐसे लोगोंकी बहुत अधिक आवश्यकता है जो 'ग्रेशिया तक खबर पहुँचा सकें।' ऐसे लोगोंकी सफलतामें कभी किसी प्रकारका सन्देह नहीं हो सकता। संसार ऐसे लोगोंके लिये है जो कुछ काम कर सकते हों—जो ग्रेशिया तक खबर पहुँचा सकते हों। जो लोग ग्रेशियाके नामका पत्र पाकर मालिकसे तुरन्त कह बैठें—'यह काम आप खुद कीजिये या दूसरोंसे कराइये।' उन्हें लेकर कोई करेगा ही क्या?

* * * *

सिफारिश, दबाव या मेलजोलके कारण सम्भव है कि कभी किसी मनुष्यको कोई अच्छा पद मिल जाय; पर उस पद पर स्थिर रखनेमें एकमात्र उसकी योग्यता ही समर्थ हो सकती है। सिफारिश आदिसे यदि बहुत हुआ तो मनुष्यको अच्छे अवसर मिल जायँगे पर उस मनुष्यकी योग्यता परिवर्द्धित और परिवर्त्तित करनेमें वह सिफारिश किसी प्रकारकी सहायता नहीं कर सकती। यदि कोई अयोग्य मनुष्य सिफारिशसे किसी ऊँचे पद पर पहुँच जाय तो वह बुरी तरह कामोंको नष्ट करने लगेगा और शीघ्र ही उसे पद-त्याग करना पड़ेगा। सन्

१८७० वाले फ्रांस-जर्म्मनी युद्धमें फ्रांसकी सेनामें जितने उच्च अधि-कारी थे उनमेंसे बहुतसे प्रायः अयोग्य ही थे और केवल अपने सम्राट् तृतीय नेपोलियनकी खुशामद करके उसकी कृपा मात्रसे ही उच्च पदोंपर पहुँचे थे। उस युद्धमें ऐसे अधिकारियोंने अपने देशको जो भारी हानि पहुँचाई और उसकी कीर्ति पर जो कलंक लगाया वह फ्रांसवासी बहुत दिनों तक न भूल सकेंगे और न शीघ्र ही उसका परिहार करनेमें समर्थ होंगे। लोग कहते है—"काम आदमीको खुद सिखला देता है।" अर्थात् यदि मनुष्यको उसकी योग्यताके बाहर कोई बड़ा काम दिया जाय, तो धीरे धीरे वह काम उसे स्वयं आ जायगा। यह बात है तो बहुत ठीक; पर इसका एक अंग हीन है। किसी कामको करते करते सीखनेमे ही कुछ विशेष योग्यताकी आवश्यकता होती है, और यदि उस योग्यताका मनुष्यमें अभाव हुआ तो 'काम' उसे कुछ भी न सिखला सकेगा। सिफारिश आदिसे अथवा ऊँचे पदोपर पहुँचनेसे अयोग्य मनुष्यको किसी प्रकारका लाभ नहीं हो सकता। हाँ, एक योग्य व्यक्तिको उससे बहुत अच्छी सहायता मिल सकती है। जिस मनुष्यका और लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है उसे साधारण लोगोंकी अपेक्षा उन्नति करनेका बहुत अधिक अवसर मिलता है। पर जो मनुष्य दूसरों पर प्रभाव न डाल सकता हो वह भी अपनी योग्यतासे अवश्य ही सफलता प्राप्त कर लेता है। ऐसे लोगोंके लिये सबसे अधिक कामकी सलाह यह है कि वे अपने कामोंसे समय निकाल कर अपनेसे ऊँचे पदवालोंके काम भी सीखते चले। साधारणतः नौकरी करनेवाले लोग अपना काम अच्छी तरह करते चलते हैं और तरक्कीका आसरा देखते रहते है। वे समझते है कि जब तरक्की होगी तब बड़े बड़े काम हम स्वयं ही सीख लेंगे। यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। यदि किसी दफ्तरमें कभी कोई ऊँचा पद खाली हुआ तो उसके

लिये दफ्तरमेंसे पहले वही आदमी ढूँढ़ा जायगा जो उस पदका थोड़ा बहुत काम जानता हो। इसलिये पहलेसे ही उसका ज्ञान प्राप्त कर लेनेसे बहुत काम निकलता है। इसके लिये थोड़ीसी बुद्धिमत्ताकी आवश्यकता होती है। प्रायः दफ्तरोंके सभी काम एक दूसरेसे इतने सम्बद्ध होते है कि साधारण योग्यतावाला मनुष्य उन सबको दूरसे देखते ही भली भाँति समझ और सीख सकता है। यदि अपने कामसे समय निकाल-कर कभी कभी तुम अपने अफसरको भी उसके काममें सहायता दे दो तो तुम्हारी सफलताका मार्ग बहुत कुछ प्रशस्त हो जायगा। यह सिद्धान्त तो केवल नौकरी पेशेवालोंके लिये हुआ। जो लोग शिल्पेकार और हाथके कारीगर हों उनको भी सदा उत्तरोत्तर अपनी योग्यता बढ़ाते रहना चाहिये। योग्यता बढ़ानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम जो काम करते हों उसमें हमारा सदा यह सिद्धान्त रहना चाहिये कि हरएक बारका किया हुआ काम पहलेके किये हुए कामोंकी अपेक्षा अधिक उत्तम और निर्दोष हो। एक बार जो माल या सामान तैयार किया जाय, दूसरी बारका तैयार किया हुआ माल या सामान, खूबसूरती, मजबूती और सफाईमें उससे बढ़कर हो और तीसरी बारका उससे भी बढ़िया हो। इस प्रकार बिना दूसरोंकी विशेष सहायताके ही वह कारीगर दिन पर दिन उन्नति करता जायगा और थोड़े ही दिनोंमें अपने काममें अच्छा दक्ष और चतुर हो जायगा। यह सिद्धान्त किसी न किसी रूपमें सब प्रकारके सांसारिक कार्योंमें भली भाँति प्रयुक्त हो सकता है और इससे सफलता-प्राप्तिमें बहुत अच्छी सहायता मिल सकती है।

* * * * * *

प्रत्येक मनुष्यको सदा स्वयं प्रसन्नचित्त रहना चाहिये और यदि हो सके तो उचित और प्रशंसनीय उपायोंसे दूसरोंको भी प्रसन्न रखना चाहिये।

कुछ लोगोंका स्वभाव ही ऐसा मुहर्रमी और मनहूस होता है कि दूसरोंको हँसते देखकर उन्हें असह्य वेदना होती है। ऐसे लोग सदा दुखी रहते हैं और कभी उन्नति नहीं कर सकते। न तो वे किसीसे मिलना जुलना ही पसन्द करते हैं और न उनके साथ किसीकी सहानुभूति ही होती है। जो मनुष्य प्रसन्न-चित्त रहता है वह भारी विपत्तिके समय भी दूसरोंको निराश और दुःखित नहीं होने देता और किसी न किसी प्रकारसे उन्हें ढारस बँधाकर उनका सहायक होता है।

सदा झूठी और दिखौआ तड़क-भड़कसे दूर रहो और दूसरोंकी दिखावट आदि पर कभी विश्वास न करो। न तो बढ़िया कपड़े देखकर किसी मनुष्यको परम योग्य समझ लो और न किसीको चीथड़े लपेटे देखकर तुच्छ मानो। कपड़े तो केवल शरीर ढकनेके लिये हैं; मनुष्यकी वास्तविक योग्यतासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। पर आजकल लोग दूसरोंके कपड़े पहले देखते हैं और आचरण पीछे। जिस मनुष्यमें योग्यता होगी वह जब जैसा अवसर देखेगा तब वैसे कपड़े पहन लेगा।

जहाँ तक हो सके, गम्भीरतापूर्वक औरोंकी बातें सुनते रहो और उपयुक्त अवसर देख कर थोड़े शब्दोंमें और युक्तिपूर्वक अपनी सम्मति प्रकट करो। जिस समय और लोग बुद्धिमत्ता या कामकी बातें करते हों, उस समय चुपचाप सुनते रहना ही बहुत अच्छा है। हाँ, यदि किसीको अनुचित पथ पर जाते देखो तो उसे तुरन्त सचेत कर दो। कभी किसीको बिना समझे बूझे झूठा, बेईमान या खुशामदी न कहो। यदि दूसरेको अनुचित बातें कहते हुए सुनो तो उसे तुरन्त रोक दो। एक विद्वान् कहता है—"बातचीत करनेमें असमर्थ होना अथवा दूसरोंको बोलनेसे रोकनेके अयोग्य होना भी बड़ा भारी दुर्भाग्य है।" अपना अभिप्राय स्पष्ट रूपसे दूसरोंको समझा देना, अपनी उचित सम्मति

और उक्तिको पुष्ट करना, बातोंको सिलसिलेवार कहना, ठीक ठीक परिणाम निकालना आदि ऐसे उत्तम गुण है जिनकी आवश्यकता संसारके प्रायः सभी कामोंमें पड़ती है मधुरभाषी। होना मानों अपने मार्गकी आधी कठिनाइयाँ दूर करना है। खिजलाने, डाँटने-डपटने और बिगड़नेसे कभी वैसा अच्छा काम नहीं निकल सकता जैसा अच्छा शान्ति और गम्भीरतापूर्वक समझानेसे निकलता है। यदि कोई मनुष्य अनजानसे या और किसी प्रकार तुम्हारा अपमान कर बैठे तो तुरन्त आपेसे बाहर मत हो जाओ। एक शिक्षकने अपने विद्यार्थियोंको शिक्षा देनेके समय कहा था—"हमेशा दो जेब रक्खो; एक तो बहुत बड़ा, अपमान आदिके सहनेके लिये और दूसरा छोटा; रुपये रखनेके लिये।" सम्भव है कि इस कथनमें कुछ अत्युक्ति हो पर इसमें सन्देह नहीं कि जीवनमें अधिकांश अवसर ऐसे ही आते हैं जिनमें सहनशीलतासे ही सबसे अधिक काम निकलता है; उद्दण्डता या रूखेपनसे तो काम प्रायः बिगड़ता ही है। साथ ही यह बात भी कोई बुद्धिमान् अस्वीकार नही कर सकता कि सांसारिक व्यवहारोंमें कभी कभी ऐसे अवसर भी आ पड़ते हैं जब कि उचित रीतिसे अपना काम निकालने या किसी अन्यायको रोकनेके लिये मनुष्यको उग्र रूप धारण करना पड़ता है। पर ऐसे अवसर बहुत ही काम होते हैं; और उनके उपस्थित होने पर समझदार आदमी वैसा ही बन भी जाता है। यदि वह ऐसा न करे तो लोग उसे दब्बू, अकर्मण्य या दुर्बल समझ लेते हैं और समय पड़ने पर उसे भारी हानि पहुँचाते हैं।

* * * * *

इसमें सन्देह नहीं कि "रुपयेको रुपया खींचता है।" धनवान् मनुष्य अपने धनकी सहायतासे बड़ा व्यापार या और कोई काम

करके बहुत शीघ्र अच्छा लाभ कर सकता है पर उतनी ही योग्यता रखनेवाले निर्धन मनुष्यको धनके अभावके कारण ही बहुतसी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं और बहुधा विफल-मनोरथ भी होना पड़ता है। अतः मनुष्यको सदा मितव्ययी रहना चाहिये और जहाँतक हो सके सदा अपने पास कुछ न कुछ पूँजी रखनी चाहिये। यही पूँजी अच्छा अवसर मिलने पर हमारा बहुत कुछ आर्थिक लाभ करा सकती है, आवश्यकता पड़ने पर हमें परोपकारी और उदार बनाती है, बीमारी आदिके समय हमारी चिन्ता और कष्ट दूर करनेमें सहायक होती है, शादी और गमीके मौकों पर हमारी इज्जत रखती है और जब उसे कोई काम नहीं रहता तब वह हमें साहसी स्वतन्त्र और निश्चिन्त बनाये रहती है।

* * * * *

ऐसी योग्यता उपार्जित करो जो सबके काम आ सके और जिसके बदलेमें तुम्हें अच्छा आर्थिक लाभ भी हो सके। पवित्र आचरणसे ही आटा और चावल नहीं खरीदा जा सकता और न मकानका किराया चुकाया जा सकता है। इन कामोंके लिये भी परिश्रम और धनकी ही आवश्यकता होती है। यदि मनुष्य परिश्रमी और ईमानदार हो, पर वह अपनी योग्यताको संसारके कामोंमें न लगा सकता हो तो वह जीविका उपार्जित नहीं कर सकता। मनुष्य चाहे कितना ही धार्मिक और पवित्र आचरणवाला क्यों न हो, पर जब तक वह संसारके काम न आवे तब तक उसे लौकिक पदार्थोंके पानेकी बहुत ही थोड़ी आशा रखनी चाहिये। यदि हम कोई ऐसा काम करें जिससे संसारके लाभकी कोई आशा न हो तो हमे उसके बदलेमे अपने लाभकी भी कोई आशा न रखनी चाहिये। संसारकी आवश्यकाताओंका ध्यान रख

कर ही हमें काम करना चाहिये। यदि सर्वसाधारणको मागधी और शौरसेनी भाषाओंके व्याकरणोंकी अपेक्षा मनोहर और शिक्षाप्रद निबन्धोंकी आवश्यकता अधिक हो तो सफलता भी निबन्ध लिखनेवालोंको ही अधिक होगी, वैय्याकरण महाशय मुँह ही ताकते रह जायँगे।

केवल एक ही प्रकारकी योग्यतासे भी संसारका सारा काम कभी नहीं चल सकता। कदाचित् पाठक जानते होंगे कि एक बार एक दिग्गज दार्शनिक नाव पर सवार होकर नदी पार करने लगे। रास्तेमें उन्होंने मल्लाहसे पूछा—"क्यों भाई! तुमने कुछ दर्शनशास्त्र भी देखा है?" उत्तर मिला—"नहीं।" दार्शनिक महाशय बोले—"तब तो तुमने अपना आधा जीवन व्यर्थ नष्ट किया।" थोड़ी देर बाद जब तूफान आया और नाव डूबनेको हुई तब मल्लाहने पूछा—"क्यों साहब! आप तैरना भी जानते हैं?" उत्तर मिला—"नहीं।" मल्लाहने कहा—"तब तो आपने अपना सारा जीवन व्यर्थ नष्ट किया।" दार्शनिक महाशय दर्शनशास्त्रके गूढ़से गूढ़ विषयोंको तो भलीभाँति समझ लेते थे, पर नाव डूबने पर अपने प्राण बचानेकी सामर्थ्य उनमें नहीं थी। मल्लाह यह भी नहीं जानता था कि दर्शनशास्त्र किस चिड़ियाका नाम है; पर वह तैरना भली भाँति जानता था; इसलिये जान बचाकर किनारेतक पहुँच गया। योग्य मनुष्यके सफल न होनेके कारण कुछ कुछ इसी प्रकारके होते है। केवल विद्या पढ़कर ही मनुष्यमें द्रव्य उपार्जन करनेकी शक्ति नहीं आ सकती। गाड़ी हाँकने भरसे ही नाव खेना नहीं आ सकता; दोनोंके लिये भिन्न भिन्न शिक्षाओंकी आवश्यकता होती है। तो भी इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि कुछ लोग ऐसे होते है जिनमे यद्यपि सब प्रकारकी पूरी पूरी

योग्यता होती है पर तो भी वे कभी यशस्वी नहीं हो सकते। इसी प्रकार कुछ लोग ऐसे भी होते है जिनमें किसी प्रकारकी योग्यता नहीं होती; पर तो भी वे अपने सब काम बड़ी सरलता और सुन्दरतासे सुधारते जाते हैं। पर जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ऐसे मनुष्य बहुत ही कम होते हैं और सब लोगोंको अनायास ही अपने आपको उनमें न समझ लेना चाहिये। जिन दोषो या गुणोंके कारण ये बाते होती हैं उनका पता लगाना मानवशक्तिसे बाहर है।

*　　　*　　　*　　　*

संसारमे अनेक प्रकारकी कहावतें नित्यप्रति सुननेमें आती है। ये कहावतें प्रायः एक दूसरेके विरुद्ध भी हुआ करती है। जैसे—"ओस चाटनेसे कहीं प्यास जाती है?" और—"डूबतेको तिनकेका सहारा बहुत होता है।" इन दोनोमेंसे यदि किसी एकको ठीक मान ले तो दूसरीका अनायास ही खंडन हो जाता है। एक विद्वान् कहावतोको बड़े बड़े अनुभवोंका निचोड़ बतलाता है और दूसरा कहता है—"कहावतोंपर कभी विश्वास न करो; सारी कहावते लोगोने अपनी अपनी समझके मुताबिक, अपने अवसरपर और अपने मतलबके लिये बनाई है।"

बात यह है कि सभी चीजें, अच्छी और बुरी दोनों प्रकारकी होती है। अतः मनुष्यको कहावतोंके मूलसिद्धान्तकी उपयोगिताका विचार कर लेना चाहिये। ऐसा करनेसे उनमेंसे उपदेशपूर्ण कहावते अलग निकल आवेगी और निरर्थक या हानिकारक कहावते अलग छँट जायँगी। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावतमे कहाँ तक यथार्थता है यह विचारवान् पाठक स्वयं समझ सकते हैं। पर कभी न कभी वह भी चरितार्थ हो ही जाती है। अँगेरजीकी एक

कहावतका अभिप्राय है—" तुम पैसोंका ध्यान रक्खो; रुपये अपना ध्यान आप ही रख लेंगे।" अर्थात् जो मनुष्य व्यर्थ पैसे खर्च नहीं करता उसके पास रुपये आपसे आप जमा हो जाते हैं। पर आजकाल जब कि संसारका धन दिनपर दिन बढ़ता जाता है, एक एक पैसेके लिये जान देना बड़ी भारी मूर्खता समझा जाता है। उचित व्यय करनेसे जितना लाभ हो सकता है उसे रोकनेसे अपेक्षाकृत कहीं अधिक हानि होती है।

इस अवसरपर हम अनेक प्रकारकी उत्तमोत्तम कहावतोंका उपदेश-पूर्ण सार भाग अपने पाठकोंके लाभके लिये दे देना आवश्यक समझते हैं। इन्हें अपना सिद्धान्त बना लेनेसे बहुधा लाभ ही होगा।

अपने कार्य्यके सब अंगोंपर पूरा पूरा ध्यान रखो।

अपना सम्मान चाहनेवालोंको दूसरोंका अपमान न करना चाहिये।

जो काम प्रेमसे निकल सकता है वह भय या दण्डसे नहीं निकल सकता।

दण्डकी चोटसे क्षमाकी चोट अधिक कड़ी होती है।

आवश्यकता पूरी हो सकती है, इच्छा नहीं; यही ईश्वरीय नियम है।

विश्राम करनेकी अपेक्षा काम करना कहीं अच्छा है।

अपना कार्य्य उत्तमतापूर्वक करो, सारा संसार तुम्हारा आदर करेगा।

सत्यका आश्रय ही मनुष्यको विजयी बनाता है।

भला आदमी ही सदा प्रसन्न रह सकता है; कलुषित हृदयवाला नहीं।

पहले खूब सोच विचार लो; और तब जो निश्चय करो उसपर सदा अटल रहो।

सदा उचित कार्य्य करनेका साहस करो और अनुचित कार्य्योंसे डरो।

विपत्तियोंको धैर्य्यपूर्वक झेलो; उनसे घवराना मानों अपने कामको स्वयं नष्ट करना है।

वहादुर और मर्द वनकर सव काम करो।

वुरे आदमियोंका कभी साथ मत करो।

सदा अपने आचरण और विचारोंको शुद्ध रखो।

दूसरोंकी प्रतिष्ठा, विश्वास या व्यापार आदिको कभी हानि पहुँचानेकी चेष्टा मत करो।

केवल सद्गुणी मनुष्योंका साथ करो। नीचे, ओछे और कुकर्म्मी मनुष्योंसे सदा दूर रहो।

हृदयमें वुरे विचार कभी न आने दो।

कभी किसी दशामें झूठ न वोलो।

वहुत थोड़े आदमियोंसे अधिक जान पहचान रखो।

कभी अपने आपको वैसा प्रकट करनेका प्रयत्न न करो, जैसे कि तुम वास्तवमें नहीं हो।

अच्छी आदतें सीखो और सदा उनपर ध्यान रखो।

अपना ऋण ठीक समयपर चुका दो; फिर तुम्हें कभी ऋण लेनेमें कठिनता न होगी।

मित्रकी सत्यतामे कभी सन्देह न करो और न अकारण कभी उसका अविश्वास करो।

माता-पिता या वड़ोकी सम्मतिका पूरा पूरा और उचित आदर करो।

अपना सिद्धान्त वनाये रखनेके लिये आवश्यकता पड़नेपर आर्थिक हानि भी सह लो।

सव प्रकारके नशोंसे सदा दूर रहो।

फुरसतके समय अपनी उन्नतिके उपाय सोचो और करो।

सबका प्रेमपूर्वक अभिनन्दन करो।

अपना उत्साह भंग न होने दो।

न्याय-संगत, सत्य और शुद्ध कार्य्यके लिये दृढतापूर्वक परिश्रम करो, अवश्य सफलता होगी।

सब काम ठीक तरहसे करो; किसीमें कोई कसर बाकी न रहने दो।

जो काम मिले उसे अपनी सारी शक्ति भर करो और तुरन्त करो।

कोई मनुष्य वास्तवमें उतना सुखी या दुखी नहीं होता जितना कि वह अपने आपको समझता है अथवा जितना लोग उसे बतलाते हैं।

संसार जैसे है, तुम भी वैसे ही बन जाओ। क्योंकि तुम जैसा चाहते हो, वैसा संसार कभी नहीं बन सकता।

किसीको अपना शत्रु मत बनाओ; एक शत्रु सौ मित्रोंके रहते हुए तुम्हारा बहुत कुछ अपकार कर सकता है।

अगर तुम अच्छे बना चाहते हो तो अपने आपको सबसे बुरा समझो।

बहुत बोलनेकी अपेक्षा बहुत सुनना कहीं अच्छा है।

दरिद्रता यदि दोषोंकी माता है तो अज्ञान उनका पिता है।

दुःख और विपत्ति आदिसे कभी घबराना न चाहिये; क्योंकि उसका भी कभी न कभी अन्त होता ही है।

मित्रको अपना बनाये रखनेके लिये और शत्रुको अपना बना लेनेके लिये सदा उसके साथ भलाई करो।

तुम्हारा विचार तभी तक तुम्हारा है जब तक तुम उसे दूसरोंपर प्रकट न करो।

दूसरोंको धमकाना अपनी कायरता प्रकट करना है।

यदि तुम कुछ करना चाहते हो तो कमर कसकर काममें लग जाओ।

सदा सच्चे, परोपकारी और ईश्वरनिष्ठ रहो। कोरी बाते करनेमे ही सारा समय न बिताओ, कुछ काम भी कर दिखलाओ।

अपना अज्ञान समझ लेना ही ज्ञानकी ओर बढ़ना है।

आगे चलकर होनेवाली आमदनीके भरोसेपर कभी पहलेसे उधार मत लो।

विजयी वही होते है जिन्हे अपनी शक्तिपर विश्वास होता है।

अप्रसन्न वही रहता है जिससे कोई अपराध या दूसरा अनुचित कार्य्य होता है।

कठिनाइयोंका बढ़ना ही सफलताके समीप पहुँचनेका प्रधान चिह्न है।

संसारका ऊँचनीच देखना ही जीवनका प्रधान कार्य्य है।

जो कुछ माँगना है, ईश्वरसे माँगो।

संसारकी सब चीजे दोरुखी होती है; इसलिये दोनो ओर विचार करना चाहिये।

किसीको उचित मार्गपर लानेके लिये उसकी निन्दा करनेकी अपेक्षा उसके भले कामोंकी प्रशंसा करना कहीँ अच्छा और उपयोगी है।

कामकी अधिकतासे उकतानेवाला मनुष्य कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता।

संसारकी सब बातोंसे कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करो।

अपने व्ययको आयसे सदा कम रखो; सुखी और सम्पन्न होनेका यही सबसे अच्छा उपाय है।

अपने मित्रोंके साथ कभी व्यर्थ वाद न करो।

जो मनुष्य सबको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करता है वह किसीको भी प्रसन्न नहीं रख सकता।

यदि तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारे साथ बहुत सच्चाईका बरताव करें तो तुम स्वयं सच्चे बनो और दूसरे लोगोंके साथ सच्चा व्यवहार करो।

जो मनुष्य सन्तुष्ट नहीं रहता वह सुखी भी नहीं हो सकता।

पापरहित चित्तसे बढ़कर हमारे लिये अच्छा रक्षक और कोई नहीं हो सकता।

खुशामद करनेवालेसे सदा बचो; वह बड़ा भारी चोर होता है। वह तुम्हें मूर्ख बनाकर तुम्हारा समय भी चुराता है और बुद्धि भी।

समयके अधिक उलट फेर देखना ही बुद्धिमान् बनाता है।

कोई बुरा काम न करना ही सबसे अच्छा काम है।

बुरे कामोंका फल शीघ्र और अच्छे कामोंका फल देरसे मिलता है।

× × × ×

व्यापार करनेवाले मनुष्योंको हिसाब आदि जानना और बहीखातेकी जानकारी रखना बहुत आवश्यक है। जो हिसाब नहीं जानता वह न तो माल खरीद सकता है और न बेच सकता है। जो व्यापारी बही खाता नहीं रखता वह अपनी हानि और लाभ नहीं समझ सकता। व्यापारीको हर छठे महीने अथवा बरसमें एक बार अपने माल और आय-व्ययका पूरा चिट्ठा तैयार करना चाहिये। चिट्ठेसे लाभ यह होता है कि मनुष्यको आय और व्ययकी सब मदोंका पूरा पूरा पता लग जाता है और वह यह समझ लेता है कि किस मद वा व्यापारसे मुझे कितना लाभ हुआ और किसमें कितना घाटा आया। यदि आय कम हो तो एक ओर आय बढ़ाने और दूसरी ओर व्यय कम करनेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि लाभ कम हो तो सदा खर्च कम करो; घाटा पूरा करनेके लिये मालका दाम कभी मत बढ़ाओ।

\+ \+ \+ \+ \+

कभी अपनी स्मरण-शक्तिकी शिकायत मत करो। साधारणतः लोग बातें इसी लिये भूल जाते हैं कि वे उनपर पूरा पूरा ध्यान नहीं रखते। जस्टिस रानडेका मत है कि जिस काममें हमारा जितना स्वार्थ है अथवा जिसका उत्तरदायित्त्व हम जितना समझते है उतना ही वह काम हमे याद रहता है। जिस काममें तुम दिल लगाओगे वह कभी न भूलेगा। नित्य प्रति देखनेमें आता है कि प्रत्येक मनुष्य खास अपने कामकी सब बातें याद रखता है। चाहे वह कितना ही भुलक्कड़ क्यों न हो पर उसे अपना काम कभी नहीं भूलता। जिस काम या बातको याद रखना चाहो उसमें खूब जी लगाओ। स्मरणशक्ति बढ़ानेका यही सबसे अच्छा उपाय है। दूसरोंकी स्मरण-शक्तिकी प्रशंसा करके ही सन्तुष्ट न हो जाओ, बल्कि ध्यानपूर्वक देखो कि जो बाते उन्हें याद रहती हैं उन पर वे कहाँतक ध्यान देते हैं।

* * * * *

अब हम सफलता और उन्नतिके दो मूलमन्त्रोंको लेते हैं। यही दो बातें ऐसी है जो सफलताके लिये सबसे अधिक सहायक हो सकती हैं। एक तो किसी विषयके पूर्ण पण्डित और जानकार बनो और दूसरे कोई नवीनता उत्पन्न करो।

आजकल ज्ञानका इतना अधिक विस्तार हो गया है कि कोई मनुष्य सब क्या दो चार विषयोंका भी पूर्ण पण्डित नहीं बन सकता। इसलिये यही उचित है कि मनुष्य कोई एक विषय ले ले और जहाँतक हो सके उसके सम्बन्धमे सारी बातें जाननेका प्रयत्न करे। जो मनुष्य सब विषयोंका थोड़ा थोड़ा जानकार हो उसकी उतनी अधिक कदर नहीं हो सकती जितनी किसी एक विषयके पूर्ण ज्ञाताकी हो सकती हैं। बहुतसे डाक्टर ऐसे होते हैं जो केवल कान या आँख या हृदयके रोगोंका ही पूरा

पूरा अध्ययन, मनन और अनुशीलन करते है और उनके पास अधिकांश उन्हीं रोगोंके रोगी भी आते है। फल यह होता है कि दिन पर दिन उनका ज्ञान और अनुभव बढ़ता जाता है और उनके इस ज्ञान और अनुभवसे लाभ उठानेके लिये उनके पास रोगियोंकी भीड़ लगी रहती है। ऐसे डाक्टरोंको दूसरे डाक्टरोंकी अपेक्षा धन और यश अधिक मिलता है। कोई कोई वकील ऐसे होते है जो फौजदारीका काम ही अधिक उत्तमतासे कर सकते है; और कोई कोई केवल दीवानीके मुकदमे ही अच्छी तरह लड़ सकते हैं। ऐसे लोगोंको दोनों अदालतोंमें काम करनेवालोंकी अपेक्षा अधिक सफलताकी आशा हो सकती है। यही दशा नौकरी और व्यापारकी भी है। बड़े बड़े कारखानों और कोठियोंमें ऐसे ही निरीक्षकों और उच्च कर्म्मचारियोंको बड़ी बड़ी तनख्वाहें मिलती है जो उस कारखाने या कोठीके सब कामोंको पूरी तरह जानते हो। यदि कोई मनुष्य छापेखानेका थोड़ा बहुत काम जानता हो, थोड़ी बहुत चिकित्सा करना जानता हो और साल दो साल बजाजी भी कर चुका हो, तो न तो उसे किसी बड़े छापेखानेकी मैनेजरी मिल सकती है न उसके किए चिकित्साका अच्छा काम हो सकता है और न वह कपड़ेकी किसी कोठीका बड़ा गुमाश्ता हो सकता है। वह जानता तो तीनों काम है; पर पूर्ण ज्ञाता किसी एकका भी नहीं है और जो मनुष्य किसी एक विषयमें पूरी दक्षता नहीं प्राप्त कर सकता वही पिछड़ जाता है।

आजकल ऐसे ही लोगोंकी जरूरत है जो नाम मात्रके लिये 'सर्वगुणसम्पन्न' न होकर किसी एक विषयमें पूरे पारंगत और दक्ष हो। जिस विषयके वे पारंगत होंगे उस विषयमें उनकी सम्मति सभी जगह अपेक्षित, आदृत और मान्य होगी। ऐसा मनुष्य यदि योद्धा हुआ तो शिवाजी होगा—समरसम्बन्धी एक भी कार्य्य उससे बंच न रहेगा; यदि

शासक हुआ तो बिस्मार्क होगा—राजनीतिसम्बन्धी कोई बात उससे छूटने न पावेगी। यदि वह व्यापारी हुआ तो केवल माल खरीद और वेचकर ही सन्तुष्ट न हो रहेगा वल्कि वह लोगोंकी आवश्यकताएँ देख-कर उनके लिये नये नये माल तैयार करावेगा और सब तरहके मालका परता बैठाकर औरोंके मुकाबलेमें सस्ता और अच्छा माल वेचेगा।

सफलताका दूसरा मूलमंत्र है—नवीनता। किसी विषयके पूरे ज्ञाताकी अपेक्षा किसी प्रकारकी उपयोगी नवीनता उत्पन्न करनेवाले मनुष्यको सफलताका और भी अच्छा अवसर मिल सकता है। 'नवीनता' और कुछ नहीं, केवल वहुतसे साधारण पुराने विचारोंके मेलसे बना हुआ विचारका एक नया स्वरूप है। इस ग्रन्थमें सफलताके अब तक अनेक साधन बतलाये गये है और उनमेसे अनेक ऐसे भी है जिन्हें साधारणतः सभी लोग जानते होंगे। उनमेंसे यदि किसी एक; दो, या अधिकको हम अपना मूल सिद्धान्त बना लें तोभी हमें पूरी सफलताकी आशा न रखनी चाहिये। पूरी सफलता तभी हो सकती है जब कि हम उन सबका ध्यान रखकर एक ऐसा स्वतन्त्र और नया सिद्धान्त बना लें जो हमारे लिये सब प्रकारसे उपयुक्त हो। अच्छेसे अच्छे ईमानदार आदमी जिनका लाखों रुपयोंका विश्वास किया जा सकता है, पाँच छः रुपये महीनेकी नौकरीमें जन्म विता देते हैं। अच्छेसे अच्छे पवित्र आचरणवाले लोगोंकी भी वही दशा होती है। इसका कारण यही है कि न तो वे कोई काम करनेके योग्य होते हैं और न कामके लिये अपना कोई स्वतन्त्र सिद्धान्त बना सकते हैं। इसलिये इस पुस्तकमें बतलाये हुए सब उपायोंका गौण और स्वतन्त्र तथा नवीन सिद्धान्त या विचारको ही सफलताके साध-नका प्रधान और आवश्यक अंग समझना चाहिये।

आजकल लोग नकल करना खूब जानते हैं। अगर किसीको पेटेन्ट दवाएँ बेचते और बनाते अथवा इसी प्रकारका और कोई काम करते तथा उससे लाभ उठाते देखते है तो स्वयं भी वही करने लग जाते हैं। केवल यही नहीं, बहुतसे लोग तो सब बातोंमें दूसरोंकी इतनी अधिक नकल करने लग जाते है कि दूसरे लोग उनपर हँसने और उन्हें तुच्छ समझने लगते है। ऐसा करना केवल मूर्खता ही नहीं, बल्कि नीचता भी है। इस प्रकारकी नकल आर्थिक दृष्टिसे भले ही थोड़ी बहुत लाभदायक हो, पर नैतिक दृष्टिसे अत्यन्त घृणित, दूषित और निन्दनीय है और अपने कर्ताकी तुच्छता, नीचता और अयोग्यता ही प्रकट करती है। हमें केवल दूसरोंके अच्छे अच्छे गुणोंको ग्रहण करके उन्हें अपना लेना चाहिये। बात बातमें दूसरोंकी नकल करना अपनी अयोग्यता प्रकट करना है। दूसरोंकी नकल करनेसे मनुष्य सुस्त और अकर्म्मण्य ही बनता है। कोई काम करके वही लोग दिखला सकते हैं जो अपने स्वतन्त्र विचारोंसे कोई नवीनता उत्पन्न कर सकते हों। अभी हालकी बात है कि काशीमें एक बंगालीने लोगोसे अपने टिकट बिकवाकर बदलेमें इनामके तौर पर कुछ रकम देनेकी प्रथा निकाली थी। इस काममें उसको अच्छी सफलता हुई और उसने थोड़े ही दिनोंमें लाखो रुपये पैदा कर लिये। उसकी देखादेखी कमसे कम पचास आदमियोने वही काम शुरू किया; पर घाटेके सिवा नफा किसीको न हुआ।

ईमानदार, परिश्रमी और योग्य मनुष्य अपने लिये सदा स्वतन्त्र मार्ग बनाते है। यदि तुम ग्रन्थकार हो तो बहुत न लिखकर थोड़ा लिखो; पर जो कुछ लिखो सब स्वतन्त्र हो। पचास पृष्ठके अनुवादकी अपेक्षा पाँच पृष्ठके स्वतन्त्र लेखका कहीं अधिक आदर होगा। पर हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि स्वतन्त्र लिखनेके लिये तुम्हें अधिक अध्ययनकी

आवश्यकता होगी। मधुमक्खी सब प्रकारके फूलोंसे थोड़ा थोड़ा रस लेती है; पर अपने तैयार किये हुए मधुमें वह किसी फूलकी गन्ध नहीं आने देती। जो लोग उत्तम लेखक बनना चाहते हों उन्हें भी सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि वे विचार तो सभी स्थानोंसे संग्रह करें पर उनका प्रकाशन स्वतन्त्ररूपसे करें। यही सिद्धान्त किसी न किसी सीमातक सभी अवसरों और कार्य्योंके लिये काममें आ सकता है। पुराना सिक्का चाहे कितनी ही शुद्ध धातुका क्यों न बना हो, पर जबतक वह नये सिरेसे ढाला न जाय, कभी चल नहीं सकता। जिस मनुष्यने जितनी नवीनता दिखलाई है उसने उतना ही आदर भी पाया है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रका इतना अधिक आदर इसी लिये है कि उन्होने हिन्दीको एक नया स्वरूप दिया। मनुष्य चाहे जूते सीए और चाहे टोपियाँ बनावे, चाहे कविता करे और चाहे वक्तृता दे, चाहे कारखाना खोले और चाहे कोठी चलावे, उसे पूरी सफलता तभी होगी जब वह अपने दिमागसे कोई नई बात निकालेगा। नवीन विचारोंके मनुष्यके लिये ही संसारमें सबसे अधिक आदर और स्थान है।

आप पूछ सकते हैं कि नवीनताका इतना महत्त्व और आदर क्यों है? बात यह है कि पुराने कामोंमें इस समय बहुतसे लोग लगे हुए हैं और सफलता जल्दी उसी काममे हो सकती है जिसमें चढ़ा-ऊपरी और लाग-डाँट कम हो। साधारणतः लोग ऐसे ही काम ढूँढ़ते हैं जिनमें लाभकी अधिक सम्भावना हो; फल यह होता है कि उनके ढूँढ़े हुए काममें अधिक लोग लग जाते है और उसमे होनेवाला लाभ दिनपर घटता जाता है। इस प्रकार एक एक करके सभी नये काम पुराने हो जाते है और उनका पुरस्कार कम हो जाता है। इस समय

जिस काममें लोग अच्छा लाभ उठा रहे हैं उसमें आगे चलकर सम्मलित होनेवालोंको लाभका बहुत ही थोड़ा अंश मिलेगा। यदि किसी काममें बहुत अधिक लाभ देखो तो समझ लो कि अब उसके दिन पूरे हो चले हैं। इस अवसरपर यह कह देना भी उपयुक्त जान पड़ता है कि जो काम इस समय प्रचलित है उनमें भी नवीनता उत्पन्न की जा सकती है और यही नवीनता उत्पन्न करनेवाले श्रेष्ठ कहलाते और सबसे आगे निकलते हैं।

लोग कह सकते हैं कि यदि हममें कोई नवीनता उत्पन्न करनेकी शक्ति ही न हो तो हम क्या करें? पर यह आपत्ति मानने योग्य नहीं है। यदि मनुष्यका शरीर और मस्तिष्क शुद्ध और ठीक है तो उसे ऐसी शिकायत करनेका अधिकार नहीं है। यदि अधिक योग्यतावाला मनुष्य दस मिनटमें कोई नई बात निकाल सकता है तो कोई कारण नहीं है कि साधारण योग्यतावाला मनुष्य दस महीने सोचनेके बाद भी कोई वैसी नई बात न निकाल सके। इसके लिये आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि मनुष्य कोई एक उत्तम विषय चुन ले, उसीका मनन करे, उसीपर विचार करे, उठते बैठते, चलते फिरते उसीका ध्यान रक्खे और यहाँ तक कि सोनेमें भी उसीका स्वप्न देखे। साहित्यसेवा, व्यापार नौकरी आदि सभीमें यह सिद्धान्त समान रूपसे प्रयुक्त हो सकता है और जो इसपर दृढ़ रहता है उसके लिये सफलता अवश्यम्भावी है।

उपसंहार।

इस पुस्तकमें सफलतासम्बन्धी सभी आवश्यक बातोंपर थोड़ा बहुत विचार किया जा चुका है। अब स्थूलरूपसे उनका कुछ

सार अंश यहाँ दे देना उचित जान पड़ता है। इस बातकी सत्यतामें कोई सन्देह नहीं है कि यदि मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाएँ साधारणतः ठीक और अच्छी हों—जैसी कि प्रायः सभी लोगोंकी हुआ करती हैं—तो उसके लिये संसारमें धन, यश, कीर्ति, प्रतिष्ठा अथवा और कोई इष्ट फल प्राप्त करना बहुत अधिक कठिन नहीं है। मनुष्यके कामोंमे भाग्यका महत्त्व उतना अधिक नहीं है जितना लोग समझते हैं। अपने भाग्यका बहुत बड़ा अंश मनुष्य अपने हाथसे ही बनाता है। अन्य अन्य शक्तियोंकी अपेक्षा मानसिक शक्तिके विकाशसे सफलमनोरथ होनेमें सबसे अधिक सहायता मिलती है। उपयुक्त शिक्षा और शुद्ध आचरण आदिसे उसका कार्य्य और भी सरल हो जाता है। यदि हमारी आकांक्षा परिमित, पवित्र और उपयुक्त हो तो हमारे लिए हतोत्साह या निराश होनेका कोई कारण नहीं है। बिना पूर्ण अध्यवसायके कोई काम नहीं हो सकता। विश्वास और आशाका कभी त्याग न करना चाहिये, क्योंकि जिसके हृदयमे ये दोनों रहते है वह सदा धीर और प्रसन्न रहता है। कठिनाइयों और विपत्तियोंका उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। आचरण और आत्मबल हमारी योग्यताके प्रधान अंग हैं। यदि इन दोनों गुणोंके साथ मानसिक शक्तियाँ भी प्रबल हों तो फिर पूछना ही क्या है?

सफलता प्राप्त करनेके बाद मनुष्यको सन्तुष्ट, शान्त और सुखी हो जाना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो वह सफलता किसी कामकी नहीं। पर फिर भी हम देखते है कि बहुतसे लोग अपनी मूर्खताके कारण सफलमनोरथ हो जानेपर भी असन्तुष्ट और दुःखित रहते है। बहुतसे लोगोंने ऐसे कंजूस देखे होंगे जिन्होंने अपने जीवनका बहुत

बड़ा भाग अनुचित और उचित सभी उपायोंसे, दूसरोंका धन अपनी थैलियोंमें भरनेमें ही बिता दिया है। पर अन्तिम समयमें ऐसे ही लोगोको सबसे अधिक क्लेश भी मिलता है। इसके सिवा ऐसे लोगोंकी सन्तान या तो खूब फिजूलखर्च होती है और या कंजूसीमें उनसे भी हाथ दो हाथ बढ़कर निकलती है। दोनों अवस्थाओंमें केवल उस मूलपुरुष कंजूसको ही नहीं बल्कि उसके परिवारके सभी लोगोको अनेक प्रकारके दारुण कष्ट सहने पड़ते है। जालसाजों, जुआरियो और व्यभिचारियोंकी भी प्रायः ऐसी ही घोर दुर्दशा होती है। धन और वैभव उनका असन्तोष और क्लेश दूर नहीं कर सकता। साधारण फूसकी झोपड़ीमें रह कर अपने बाल-बचोंसे प्रेमपूर्वक बातचीत करनेवाला दरिद्र भिखमँगा उनसे कहीं अधिक सुखी होता है। इसका मुख्य कारण यही है कि मनुष्यके दुष्कर्म्म उसका पीछा नहीं छोड़ते और सदा उसका कष्ट बढ़ाते रहते हैं। जीवन सात्त्विक रूपसे व्यतीत होना चाहिये और यदि विचारोंमें स्वतन्त्र सात्त्विकता न हो तो धर्म्मकी शरण लेनी चाहिये।

संसारमें धनको ही सर्वस्व न समझ लेना चाहिये, क्योंकि अनेक दुर्घटनाएँ ऐसी होती है जिनके बुरे परिणामसे हमें सारे विश्वका वैभव भी नहीं बचा सकता। लोगोंका, देखते देखते, जवान लड़का मर जाता है और सारी दौलत रखी रह जाती है। धन एक साधन मात्र है जिससे संसारके बहुतसे काम निकला करते है; वह किसीका ईश्वर नहीं हो सकता। स्वास्थ्यका धनसे कहीं अधिक मूल्य हो सकता है। सारांश यह कि मनुष्यको धन, बल, सन्तान, प्रतिष्ठा आदिको अपना लक्ष्य न बनाकर सुख पर दृष्टि रखनी चाहिये। क्योंकि कभी कभी धन, बल आदि मनुष्यको कष्ट पहुँचानेके भी कारण होते हैं। हमारा उद्देश्य सच्ची शान्ति और सुख होना चाहिए जिसके लिए सात्त्विकताकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

प्रकृतिने तुम्हें जिस उद्देश्यके लिये बनाया है वह उद्देश पूरा करो, तुम्हें सफलता होगी । कुछ बनना, बिलकुल कुछ न बननेसे लाख दरजे अच्छा है ।—सिडनी स्मिथ ।

खाली भले आदमी मत बनो, किसी कामके आदमी बनो ।—थोरो।

मै जिस कामको हाथमें लेता हूँ उसमें सूईकी तरह गड़ जाता हूँ ।—बेन जानसन ।

शहतूतकी मक्खी, समय और धैर्य्यकी सहायतासे रेशमी कपड़ा बन जाती है ।—डा० जानसन ।

प्रत्येक मनुष्यके लिये दो प्रकारकी शिक्षाएँ होती हैं; एक तो वह जो उसे दूसरोंसें मिलती है और दूसरी सर्वप्रधान वह जो अपने आपको दी जाती है ।—गिवन ।

रोजगार बड़ी लियाकतका खेल है जिसे हर एक आदमी नहीं खेल सकता ।—एमर्सन ।

जिस मनुष्यका हृदय प्रकाशमान और मस्तिष्क शुद्ध होता है वही नवीन और उत्तम विचार उत्पन्न कर सकता है ।—एफ० जाकव्स ।

अपने आनन्दमें दूसरोंको सम्मिलित करो और दूसरोंके दुःखमे तुम स्वयं सम्मिलित रहो—यही उत्तम और आदर्श जीवनका तत्त्व है ।

प्रत्येक मनुष्य यदि अपने कर्त्तव्योंका पालन करने लग जाय तो संसार बहुत शीघ्र आनन्दमय हो जाय ।

जिसके हृदयमें विश्वास नहीं है, उसके लिये सारा संसार अशान्ति-पूर्ण है ।

सबसे अच्छा दिन वही है जिस दिन तुमसे कोई अच्छा काम बन पड़े ।

ईश्वर और सुख तभी हमारे निकट आते हैं जब हम उन्हें बहुत दूर समझते हैं।

स्वयं मनुष्य वास्तवमें कभी बुरा नहीं होता। बुरे बननेके लिये उसे बड़ा परिश्रम करना और कष्ट सहना पड़ता है।

जीवनमें जो कुछ सोचा और कहा जाता है वह किये हुए कृत्योंकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।—सर आर्थर हेल्प्स।

जीवन व्यतीत करनेके लिये नहीं है, श्रेष्ठ बनानेके लिए है।—मारशल।

जिसकी आय उसके व्ययसे अधिक है वह अमीर और जिसका व्यय उसकी आयसे कम है वह गरीब है।—ब्रूयर।

प्रकृति जिसकी स्थितिके अनुकूल हो वह सुखी है, पर जो मनुष्य अपनी स्थितिके अनुकूल अपनी प्रकृति बना लेता है वह बुद्धिमान् है।—ह्यूम।

यदि ईश्वर और शासकके दण्डका भय न भी हो तो भी पाप कर्म न करना चाहिये; यही सच्चा सदाचरण है।—सेनिका।

छाया अरु सम्मान गति, एकहि सी दरसात।
अनचाहे पीछे लगत, चाहे दूर परात।
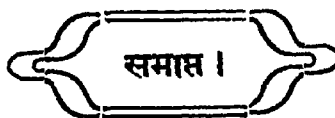
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज ।

हमारे यहाँसे इस नामकी एक ग्रन्थमाला प्रकाशित होती है । हिन्दी-संसारमें यह अपने ढंगकी अद्वितीय है । अभी इसमें जितने ग्रन्थ निकले हैं वे भाव, भाषा, छपाई, सौन्दर्य आदि सभी दृष्टियोंसे बेजोड़ हैं । प्रायः सभी साहित्य-सेवियोंने उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है । स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं । स्थायी ग्राहक होनेकी 'प्रवेश फी' आठ आने हैं । अभी तक नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं:—

१-२ **स्वाधीनता**—जान स्टुअर्ट मिलके 'लिबर्टी' नामक ग्रन्थका अनुवाद । अनुवादक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी । इसके प्रारंभमें मूल लेखकका लगभग ६० पृष्ठका जीवनचरित भी लगा दिया है । मूल्य दो रु० ।

३ **प्रतिभा**— प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत अविनाशचन्द्रदास एम. ए., बी.एल.के 'कुमारी' नामक शिक्षाप्रद और भावपूर्ण उपन्यासका अनुवाद । मूल्य एक रु० ।

४ **फूलोंका गुच्छा**—उच्च श्रेणीकी चुनी हुई 11 गल्पें । मू० ॥≈)

५. **आँखकी किरकिरी**—डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ टागोरके 'चोखेर बालि' नामक प्रसिद्ध उपन्यासका अनुवाद । मूल्य डेढ़ रु० ।

६ **चौबेका चिट्ठा**—वंगसाहित्यसम्राट् स्वर्गीय वंकिम बाबूके ज्ञान-विज्ञान-देशभक्तिपूर्ण हास्य-ग्रन्थका अनुवाद । मूल्य बारह आने ।

७ **मितव्ययता**— सेमुएल स्माइल्स साहबके 'थिरिफ्ट' नामक ग्रंथके आधारसे लिखित । मूल्य पन्द्रह आने ।

८ **स्वदेश**—डा० सर रवीन्द्रनाथ टागोरके चुने हुए स्वदेशसम्बन्धी निबंधोंका अनुवाद । मूल्य दश आने ।

९ **चरित्र-गठन और मनोबल** । राल्फ वाल्डो ट्राईनके 'कैरेक्टर बिल्डिंग थाट पावर' का अनुवाद । मू० तीन आने ।

१० **आत्मोद्धार**—प्रसिद्ध हबशी विद्वान् बुकर टी० वाशिंगटनका आत्म-चरित । स्वावलम्बनकी अपूर्व शिक्षा देनेवाला ग्रन्थ । मूल्य सवा रु० ।

११ **शांतिकुटीर**—श्रीयुत अविनाश बाबूके 'पलाशवन' नामक शिक्षाप्रद, और धार्मिक गार्हस्थ्य उपन्यासका अनुवाद । मूल्य चौदह आने ।

१२ सफलता और उसकी साधनाके उपाय—कई अँगरेजी पुस्तकोंके आधारसे लिखित शिक्षाप्रद ग्रन्थ। मू० बारह आने।

१३ अन्नपूर्णाका मन्दिर—अतिशय हृदयभेदी, करुणरसपूर्ण और शिक्षाप्रद उपन्यास। मूल्य बारह आने।

१४ स्वावलम्बन—सेमुएल स्माइल्सके 'सेल्फ-हेल्प' नामक ग्रन्थके आधारसे लिखा हुआ स्वतंत्रके समान उत्तम ग्रन्थ। मूल्य सवा रुपया।

१५ उपवास-चिकित्सा—उपवास या लंघनसे तमाम रोगोंके नष्ट करनेके उपाय बतलाये गये हैं। मूल्य बारह आने।

१६ सूमके घर धूम—सभ्य हास्यरसपूर्ण प्रहसन। मूल्य तीन आने।

१७ दुर्गादास—प्रसिद्ध स्वामिभक्त वीर दुर्गादासके ऐतिहासिक चरित्रको लेकर इस नाटककी रचना की गई है। मूल्य एक रुपया।

१८ बंकिम-निबंधावली—स्वर्गीय बंकिम बावूके चुने हुए निबंधोंका अनुवाद। मूल्य चौदह आने।

१९ छत्रसाल—बुंदेलखंडकेशरी महाराज छत्रसालके ऐतिहासिक चरित्रके आधार पर लिखा हुआ देशभक्तिपूर्ण उपन्यास। मूल्य ड्रेढ़ रुपया।

२० प्रायश्चित्त—बेलजियमके सर्वश्रेष्ठ कवि मेटरलिंकके एक भावपूर्ण नाटकका हिन्दी अनुवाद। मूल्य चार आने।

२१ अब्राहमलिंकन—अमेरिकाके प्रसिद्ध सभापतिका जीवनचरित। मू०।||≈)

२२ मेवाड-पतन और २३ शाहजहाँ—ये दोनों नाटक बंगलेखक द्विजेन्द्रलाल रायके अपूर्व नाटकोंके अनुवाद हैं। दोनों ऐतिहासिक है। मूल्य बारह और चौदह आने।

२४ मानवजीवन—अंगरेजी, गुजराती, बंगला और मराठीकी कई सदाचार सम्बन्धी पुस्तकोंके आधारसे लिखा हुआ उत्कृष्ट ग्रन्थ। मूल्य १।≈)

२५ उसपार—द्विजेन्द्रलाल रायके एक अतिशय हृदयद्रावक और शिक्षाप्रद सामाजिक नाटकका अनुवाद। मूल्य एक रुपया।

२६ ताराबाई—यह भी द्विजेन्द्रबावूके एक नाटकका अनुवाद है। यह पद्यमय है। हिन्दीमें यही सबसे पहला खड़ी बोलीका पद्य नाटक है। मूल्य १)

२७ देशदर्शन—लेखक श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दन सिंह बी०ए०, एफ. आर. ए. एस.। इसमें इस देशकी शोचनीय अवस्थाका रोमाञ्चकारी दर्शन कराया है। अँगरेजीके पचास ग्रन्थोंके आधारसे इसकी रचना हुई है। मूल्य तीन रु०।

२८ हृदयकी परख—हिन्दीमें स्वतंत्र और भावपूर्ण उपन्यास। इसके लेखक आयुर्वेदाचार्य प० चतुरसेन शास्त्री हैं। इस पुस्तकमें हमने एक नामी चित्रकारसे पाँच नवीन चित्र बनवाकर छपवाये हैं। जिससे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है। मूल्य चौदह आने।

२९ नवनिधि—इस ग्रन्थको उर्दूके प्रसिद्ध गल्पलेखक श्रीयुत प्रेमचन्द-जीने स्वयं अपनी कलमसे हिन्दीमें लिखा है। इसमें एकसे एक बढ़कर सुन्दर और भावपूर्ण नौ गल्पें हैं। इनके जोड़की गल्पें आपने शायद ही कभी पढी होंगी। मूल्य चौदह आने।

३० नूरजहाँ—स्वर्गीय द्विजेन्द्रलालरायके प्रसिद्ध नाटकका अनुवाद। इसके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। शाहजहाँ और नूरजहाँ उनके सर्वश्रेष्ठ नाटक गिने जाते हैं। मूल्य एक रु०।

३१ आयर्लैण्डका इतिहास—प्रसिद्ध राष्ट्रीय ग्रन्थ। मूल्य १।।।=)

३२ शिक्षा—डा० रवीन्द्रनाथ टागोरके शिक्षासम्बन्धी पाँच निबन्धोंका अनुवाद। मू० ।।-)

३३ भीष्म—स्वर्गीय द्विजेन्द्रलालरायके पौराणिक नाटकका अनुवाद। मू० १)

नोट—उपर्युक्त पुस्तकोंकी जो कीमत छपी है वह सादी जिल्दकी है। कपड़ेकी जिल्दवाली पुस्तकोंकी कीमत चार छह आने ज्यादे है।

हमारी अन्यान्य पुस्तकें

१ व्यापार-शिक्षा—व्यापारसम्बन्धी प्रारंभिक पुस्तक। मू० दस आने।

२ युवाओंको उपदेश—विलियम कावेटके "एडवाईस टू यंगमैन" के आधारसे लिखित। मूल्य बारह आने।

३ कनकरेखा—प्रसिद्ध गल्प लेखक श्रीयुत केशवचन्द्र गुप्त बी. ए. बी. एल. की बंगला गल्पोंका अनुवाद। मू० बारह आने।

४ शांति-वैभव—'मैजेस्टी आफ कामनेस'का अनुवाद। मूल्य पाँच आने।

५ लन्दनके पत्र—विलायतसे एक देशभक्त भारतवासीकी भेजी हुई देशभक्तिपूर्ण चिट्ठियोंका संग्रह। मू० तीन आने।

६ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा—मू० तीन आने।

७ **ब्याहीबहू**—जो लड़कियाँ ससुराल जानेवाली हैं या जा चुकी हैं, उनके लिए बहुत ही उपयोगी। मू० तीन आने।

८ **पिताके उपदेश**—एक सुशिक्षित पिताके अपने विद्यार्थी पुत्रके नाम भेजे हुए शिक्षाप्रद पत्रोंका संग्रह। मू० दो आने।

९ **सन्तान-कल्पद्रुम**—इसमें वीर, विद्वान् और सद्गुणी सन्तान उत्पन्न करनेके विषयमें वैज्ञानिक पद्धतिसे विचार किया गया है। मू० बारह आने।

१० **मणिभद्र**—एक जैन कथानकके आधारपर लिखा हुआ सुन्दर भावपूर्ण उपन्यास। मू० दश आने।

११ **कोलम्बस**—नई दुनियाका पता लगानेवाले प्रसिद्ध उद्योगी और साहसी नाविकका जीवनचरित। मू० बारह आने।

१२ **ठोक पीटकर वैद्यराज**—मौलियरके फ्रेंच नाटकका सुन्दर हिन्दी रूपान्तर। हँसते हँसते आप लोट-पोट हो जायँगे। मू० पांच आने।

१३ **बूढेका ब्याह**—खड़ी बोलीका सचित्र काव्य। मू० छह आने।

१४ **दियातले अँधेरा** (गल्प)—मू० डेढ आना।

१५ **भाग्यचक्र** (गल्प)—मू० एक आना।

१६ **विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य**—मू० एक आना।

१७ **सदाचारी बालक**—एक शिक्षाप्रद कहानी। मू० दो आने।

१८ **बच्चोंके सुधारनेका उपाय**—मू० आठ आने।

१९ **वीरोंकी कहानियाँ**—मू० छह आने।

२० **गिरना उठना और अपने पैरों खड़े होना** अथवा **अस्तोदय और स्वावलम्बन**—स्वावलम्बनकी शिक्षा देनेवाला एक उत्कृष्ट निबन्ध। मू० १≈)

२१ **अंजना-पवनंजय** (खड़ी बोलीका काव्य)—मू० ≡)

२२ **योग-चिकित्सा**—योगकी क्रियाओंसे तमाम रोगोंके अच्छे करनेके और निरोगी रहनेके उपाय। मू० ≈)

मिलनेका पता:—

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई।